

भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके अवसरपर प्रकाशित
ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक १३

महाकवि पुष्पदन्त विरचित
वीरजिणिंदचरित

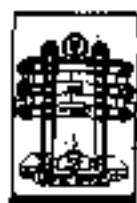
सम्पादन-अनुवाद

डॉ. हीरालाल जैन, एम. ए., एल-एल. बी., डी. लिट्.,

भूतपूर्व संस्कृत प्राध्यापक मध्यप्रान्त शिक्षा विभाग, संस्थापक-निदेशक : प्राकृत, जैनधर्म
और अहिंसा शोध-संस्थान, वैशाली (बिहार), प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष :

संस्कृत-पालि-प्राकृत विभाग, इंस्टीट्यूट ऑफ लैंग्वेजेज एंड रिसर्च,

जबलपुर विश्वविद्यालय (म. प्र.)



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर निर्वाण संवत् २५००, विक्रम संवत् २०३१, सन् १९७४ ईस्वी

प्रथम संस्करण-मूल्य : दस रुपये

प्रस्तावना

१. महावीरके तीर्थंकरत्वको पृष्ठभूमि

भगवान् महावीर जैनधर्मके तीर्थंकर थे । किन्तु जैन ऐतिहासिक परम्परा-मुसार न तो वे जैनधर्मके आदि प्रवर्तक थे और न सदैवके लिए अन्तिम तीर्थंकर ।

अनादि कालसे धर्मके तीर्थंकर होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे । उनके द्वारा उपदिष्ट धर्ममें अपने-अपने युगानुसार विशेषताएँ भी रहती हैं, और उनके मौलिक स्वरूपमें तालमेल भी बना रहता है । वर्तमान युगके आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ माने गये हैं जिनका उल्लेख न केवल समस्त जैन पुराणोंमें अनिवार्य रूपसे आता है, किन्तु भारतके प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थों, जैसे ऋग्वेद आदिमें भी नाना प्रसंगोंमें आया है ।^१ उनसे लेकर महावीर तक हुए चौबीस तीर्थंकरोंके अरिष्ट जैन पुराणोंमें विधिवत् वर्णित पाये जाते हैं^२ । धार्मिक, सैद्धांतिक व दार्शनिक आदि दृष्टियोंसे मानते-उनमें एकरूपता तथा एक ही आत्माकी व्याप्ति प्रकट करनेके लिए महावीरके पूर्व-जन्मकी परम्परा ऋषभदेवसे जोड़ी गयी है । ऋषभदेवके पुत्र हुए प्रथम चक्रवर्ती भरत जिनके नामसे इस देशका नाम भी भारतवर्ष पड़ा । यह बात समस्त वैदिक पुराणोंमें भी प्रायः एकमतसे स्वीकार की गयी है^३ । इन्हीं भरतके एक पुत्र थे मरीचि । यह मरीचि भी पूर्व-जन्मसे आये

१. ऋग्वेद १०, १०२, ६; १०, १३६; १०, १६६; २, ३३ । भाग. पुराण ५, ६ । विष्णु-पुराण ३, १८ आदि । इनमें धूम, केशी व वातरथान दिगम्बर मुनियों के उल्लेख ध्यान देने योग्य हैं ।

२. समवार्ताम सूत्र २४६ आदि । कल्पसूत्र । हेमचन्द्र-कृत त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित । तिलोप-पण्णत्ति—महाधिकार ४ । जिनसेन-कृत आदिपुराण । गुणभद्र-कृत उत्तरपुराण । पुण्डनव-कृत महापुराण (अपभ्रंश) ।

३. भागवत-पुराण ५, ४, ९; ११, २ । विष्णु-पुराण २, १, ३१ । वायु-पुराण ३३, ५२ । अथि-पुराण १०७, ११-१२ । ब्रह्माण्ड-पु. १४, ५, ६२ । लिङ्ग-पुराण १, ४७, २३ । स्कन्द-पुराण कौमार-खण्ड ३७, ५७ । मार्कण्डेय-पुराण ५०, ४१ । इनमें स्पष्टतः उल्लेख है कि ऋषभ-पुत्र भरतके नामसे ही इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा ।

हुए एक शबर का जीव था जिसने अपने सामान्य जीवनकी प्रवृत्ति प्राणि-हिंसाको त्यागकर अहिंसक रहने लगे। नरसिंहदेव भगवान् धर्मसंकेतके चरण-कमलोंमें दीक्षा ली थी। किन्तु उससे उन आदि तीर्थंकर द्वारा निषिद्ध कठोर मुनिव्रतोंका पालन न हो सका और वह मुनिपदसे भ्रष्ट हो गया। तथापि उसमें धार्मिक बीज पड़ चुका था और संस्कार भी उत्पन्न हो गये थे। अतएव देव और मनुष्य लोकमें अमण करते हुए अन्ततः उसने महावीर तीर्थंकर का जन्म धारण किया। इस प्रकार यह सहज ही देखा जा सकता है कि इन अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरकी अष्टमात्म-परम्परा आदि-तीर्थंकर ऋषभदेवसे जुड़ी हुई प्रतिष्ठित पायी जाती हैं^१।

किन्तु महावीरके साथ ही तीर्थंकर-परम्परा टूटती नहीं। उनके एक शिष्य थे उस समयके भारत-नरेश श्रेणिक-विम्बसार। उनमें भगवान् महावीर द्वारा धर्मका बीज आरोपित किया गया। यद्यपि वे अपने पूर्व दुष्कृत्योंके कारण नरक-गामी हुए, तथापि उनमें भी मरीचिके समान धार्मिक संस्कार प्रबलतासे स्थापित हो चुका है, जिसके फलस्वरूप वे अपने अगले जन्ममें एक नयी तीर्थंकर-परम्पराके आदि-प्रवर्तक होंगे। अर्थात् वे भावी चौबीस तीर्थंकरोंमें महापद्म नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे। इस प्रकार समय दृष्टिसे विचार किया जाये तो जैन परम्परामें यह बात दृढ़तासे स्थापित की गयी है कि जिस प्रकार महावीर पूर्व-भौराणिक परम्परामें ऐतिहासिक रूपसे अन्तिम तीर्थंकर हैं, उसी प्रकार वे एक नयी तीर्थंकर-परम्पराके जन्मदाता भी हैं^२।

२. महावीर-जीवन, जन्म व कुमारकाल

महावीर तीर्थंकरका जो चरित्र जैन साहित्यमें पाया जाता है वह संक्षेपमें इस प्रकार है। महावीरका जन्म एक क्षत्रिय राज-परिवारमें हुआ। उनके पिताका नाम सिद्धार्थ और माताका प्रियकारिणी अथवा त्रिशलादेवी था। सिद्धार्थका गोत्र काश्यप और त्रिशलाका पैत्रिक गोत्र वशिष्ठका भी उल्लेख पाया जाता है। त्रिशलादेवी उस समयके वैशालीनरेश चेटककी ज्येष्ठ पुत्री, अथवा मतान्तरसे चेटककी बहन थी। महावीरका शैशव व कुमारकाल उसी प्रकार लालन-पालन एवं शिक्षण में व्यतीत हुआ जैसा उस कालके राजभवनोंमें प्रचलित था। उनकी बालक्रीडाका एक यह आस्थान भी पाया जाता है कि उन्होंने एक भीषण सर्पका

१. महापुराण (संस्कृत) पर्व ७४। महापुराण (अभ्रंश) सन्धि ९५।

२. महापुराण (संस्कृत) ७६, ४७१-७७।

इसने किया था, और इसी वीरताके कारण देवने उन्हें महावीर व वीरनाथकी उपाधि प्रदान की। यह आख्यान हमें कृष्ण द्वारा कालियनागके दमनका स्मरण कराता है।

३. तप

अपनी तीस वर्षकी अवस्थामें महावीरने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उनकी प्रव्रज्याका स्वरूप यह था कि वे गृह त्यागकर कुण्डपुरके समीपवर्ती ज्ञातुषण्डवनमें चले गये और उन्होंने अपने समस्त भूषण-वस्त्र त्याग दिये। अपने हाथसे उन्होंने अपने केशोंको उखाड़ फेंका और वे तीन दिनका उपवास लेकर ध्यानस्थ हो गये। तत्पश्चात् वे बाहर देश-देशान्तरका भ्रमण करने लगे। वे निवास तो करते थे वनोपवनमें ही, किन्तु अपने व्रतों और उपवासोंके नियमानुसार दिनमें एक बार नगर या ग्राममें प्रवेश कर भिक्षा ग्रहण करते थे। वे ध्यान और आत्म-चिन्तन तथा समता-भावकी साधना या तो पद्मासन लगाकर करते थे अथवा खड़ासनसे खड़े हुए ही नासाग्र दृष्टि रखकर। लेशमात्र हिंसा नहीं करना, तुल्यभाव परायी वस्तुका अपहरण नहीं करना, लेशमात्र भी असत्य वचन नहीं बोलना, मैथुनकी कामनाको मनमें भी स्थान नहीं देना तथा किसी प्रकारकी धन-सम्पत्ति रूप परिग्रह नहीं रखना—ये ही पाँच उनके महाव्रत थे। इन निषेधात्मक व्रतों या व्रतोंके साथ-साथ वे उन शारीरिक और मानसिक पीड़ाओंको भी शान्ति और धैर्यपूर्वक सहन करनेका अभ्यास करते थे जो गृहहीन, निराश्रय, वस्त्रहीन व धनधातु-हीन त्यागीके लिए प्रकृतिः उत्पन्न होती है, जैसे भूख-प्यास, शीत-उष्ण, ठाँस-मच्छर आदिकी बाधाएँ जो परीपङ्क कहलाती हैं।

४. केवलज्ञान

इन तपस्याओंका अभ्यास करते हुए उन्होंने अपनी प्रव्रज्याके बारह वर्ष व्यतीत कर दिये। फिर एक दिन जब वे अजुकूला नदीके तीरपर जुम्भक ग्रामके समीप ध्यानमग्न थे तभी उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इस केवलज्ञानका स्वरूप यदि हम सरलतासे समझनेका प्रयत्न करें तो यह था कि जीवन और सृष्टिके सम्बन्धमें जो समस्याएँ व प्रश्न सामान्य जिज्ञासु चिन्तक के हृदयमें उठा करते हैं

१. महापुराण (सं.) ७४, २८८-९५। महापुराण (अपभ्रंश) ९९, १०, १००-१५।
भागवत-पुराण, दशम स्कन्ध।

उमका उन्हें सन्तोषजनक रीतिसे समाधान मिल गया । यह समाधान था वे छह द्रव्य तथा सात तत्त्व जिनके द्वारा त्रैलोक्य को समस्त वस्तुओं व घटनाओंका स्वरूप समझमें आ जाता है । वे छह द्रव्य इस प्रकार हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । और वे सात तत्त्व इस प्रकार हैं—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष । जीवनका मूलधार वह जीव या आत्मतत्त्व है जो जड़ पदार्थोंसे भिन्न है, आत्म-संवेदन तथा पर-पदार्थ-बोध रूप लक्षणोंसे युक्त है एवं अमूर्त और शाश्वत है । तथापि वह जड़ तत्त्वोंसे संगठित शरीरमें व्याप्त होकर नाना रूप-रूपान्तरों व जन्म-जन्मान्तरोंमें गमन करता है । जितने मूर्तिमान् इन्द्रियग्राह्य पदार्थ परमाणुसे लेकर महास्कन्ध तक हमें दिखाई पड़ते हैं वे सब अजीव पुद्गल द्रव्यके रूप-रूपान्तर हैं । धर्म और अधर्म ऐसे सूक्ष्म अदृश्य अमूर्त तत्त्व हैं जो लोकाकाशमें व्याप्त हैं और जो जीव व पुद्गल पदार्थोंको गमन करने अथवा स्थिर होनेके हेतु-भूत माध्यम हैं । आकाश वह तत्त्व है जो अन्य सब द्रव्योंको स्थान व अवकाश देता है, और काल द्रव्य वस्तुओंके बने रहने, परिवर्तित होने तथा पूर्व और पश्चात्की बुद्धि उत्पन्न करनेमें सहायक होता है । यह तो सृष्टिके तत्त्वों व तथ्यों की व्याख्या हुई । किन्तु जीवकी सुख-दुःखात्मक सांसारिक अवस्थाको समझने और उसकी ग्रन्थिको सुलझाकर आत्म-तत्त्वके शुद्ध-बुद्ध-प्रमुक्त स्वरूपके विकास हेतु अन्य सात तत्त्वोंको समझनेकी आवश्यकता है । जीव और अजीव तो सृष्टिके मूल तत्त्व हैं ही । इनका परस्पर सम्पर्क होना यही आस्रव है । इस सम्पर्क या आस्रवसे ऐसे बन्धका उत्पन्न होना जिससे आत्माका शुद्ध स्वरूप ढक जाये और उसके ज्ञान-दर्शनात्मक गुण कुण्ठित हो जायें, उसे बन्ध या कर्म-बन्ध कहते हैं । जिन संयमरूप क्रियाओं व साधनाओं द्वारा इस जीव व अजीवके सम्पर्कको रोका जाता है उसे संवर कहते हैं । तथा जिन व्रत और तपस्व क्रियाओं द्वारा संचित कर्म-बन्धको जर्जरित और विनष्ट किया जाता है उन्हें निर्जरा कहते हैं । जब यह कर्म-निर्जराकी प्रक्रिया पूर्ण रूपसे सम्पन्न हो जाती है तब जीव अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त कर लेता है, वह मुक्त हो जाता है, उसे निर्वाण मिल जाता है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उक्त जीव और अजीवकी पूर्ण व्याख्यामें सृष्टिका पदार्थ-विज्ञान या भौतिक-शास्त्र आ जाता है । आस्रव व बन्धमें मनोविज्ञानका विश्लेषण आ जाता है । संवर और निर्जरा तत्त्वोंके व्याख्यानमें समस्त नीति व आचार शास्त्रका समावेश हो जाता है, और मोक्षके स्वरूपमें जीवनके उच्चतम आदर्श ध्येय व विकासका प्रतिपादन हो जाता है । केवलज्ञानमें इसी समस्त बोध-प्रबोधका पूर्णतः व्यापक व सूक्ष्मतम स्वरूप समाविष्ट है ।

५. अर्धोपदेश

इस केवलज्ञानको प्राप्त कर भगवान् महावीर मगधकी राजधानी राजगृहमें आकर विपुलाचल पर्वतपर विराजमान हुए । उनके समवसरण व सभामण्डपकी रचना हुई, धर्म व्याख्यान सुननेके इच्छुक राजा व प्रजागण वहाँ एकत्र हुए और भगवान्ने उन्हें अपने पूर्वोक्त तत्त्वोंका स्वरूप समझाया, तथा जीवनके सुखमय आदर्श प्राप्त करने हेतु गृहस्थोंको अणुव्रतोंका एवं त्यागियोंको महाव्रतोंका उपदेश दिया ।

६. महावीर-वाणीपर आश्रित साहित्य

भगवान् महावीरके इन्द्रभूति, गोत्रम, सुवर्म, जम्बू आदि प्रवास ग्यारह शिष्य थे जिन्हें गणवर कहा जाता है । उन्होंने महावीरके समस्त उपदेशोंको बारह अंगोंमें प्रस्थारूढ़ किया जो इस प्रकार थे—

१. आचार्यंग—इसमें मुनियोंके निव्रमोपनियमोंका वर्णन किया गया । इसका स्थान वैसा ही समझना चाहिए जैसा बौद्ध धर्ममें विनय पिटकका है ।

२. सूत्ररत्नंग—इसमें जैन दर्शनके सिद्धान्तों तथा क्रियावाद, अक्रियावाद, नियतिवाद आदि उस समय प्रचलित मतमतान्तरोंका निरूपण व विवेचन किया ।

३. स्थानांग—इसमें संख्यानुसार क्रमशः वस्तुओंके भेदोपभेदोंका विवरण था । जैसे दशेन एक, चरित्र एक, समय एक, प्रदेश एक, परमाणु एक, आदि । क्रिया दो प्रकार की जैने—जीव-क्रिया और अजीव-क्रिया । जीव-क्रिया पुनः दो प्रकार की—सम्पत्क्रिया और मिथ्यात्व-क्रिया । इसी प्रकार अजीव-क्रिया भी दो प्रकार की ईर्ष्याद्वेष और साम्प्रदायिक इत्यादि ।

४. समवायंग—इसमें पदार्थोंका निरूपण उनके भेदोपभेदोंकी संख्याके अनुसार किया गया है जैसा कि स्थानांग में । किन्तु यहाँ वस्तुओंकी संख्या स्थानांग के समान दश तक ही सीमित नहीं रही, किन्तु शत तथा शत-सहस्र पर भी पहुँच गया है । इस प्रकार इन दो अंगों का स्वरूप त्रिपिटकके अंगोत्तर-निकायके समान है ।

५. व्याख्या प्रज्ञप्ते—इसमें प्रश्नोत्तर रूपासे जैन दर्शन व आचारविषयक बातोंका विवेचन था ।

६. नायधम्मकथा—इसका संस्कृत रूप सामान्यतः ज्ञातु-धर्म-कथा किया जाता है और उसका यह अभिप्राय बतलाया जाता है कि उसमें ज्ञातु-पुत्र महावीर के द्वारा उपदिष्ट धार्मिक कथाओंका समावेश था । किन्तु सम्भवतया ग्रन्थके उक्त

प्राकृत नाम का संस्कृत रूपान्तर न्यायधर्म-कथा रहा हो और उसमें न्यायों अर्थात् ज्ञान व नीतिसम्बन्धी संक्षिप्त कहावतोंको दृष्टान्त स्वरूप कथाओं द्वारा समझाने-का प्रयत्न किया गया हो तो आश्चर्य नहीं ।

७. उपासकाध्ययन—इसमें उपासकों अर्थात् धर्मानुयायी गृहस्थों व श्रावकों के व्रतोंको उनके पालनेवाले पुरुषोंके चारित्र्यकी कथाओं द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया था । इस प्रकार यह अंग मुनि आचारको प्रकट करनेवाले प्रथम ग्रन्थ आचारांग का परिपूरक कहा जा सकता है ।

८. अन्तकृच्छ्रदश—जैन परम्परामें उन मुनियोंको अन्तकृत् कहा गया है जिन्होंने उग्र तपस्या करके घोर उपसर्ग सहते हुए अपने जन्म-मरण रूपी संसारका अन्त करके निर्वाण प्राप्त किया । इस प्रकारके दश मुनियोंका इस अंगमें वर्णन किया गया प्रतीत होता है ।

९. अनुत्तरौपपातिकदश—अनुत्तर उन उच्च स्वर्गोंको कहा जाता है जिनमें बहुत पुण्यशाली जीव उत्पन्न होते हैं और वहाँसे च्युत होकर केवल एक बार पुनः समुप्य वीनिमें आते और अपनी धार्मिक वृत्ति द्वारा उसी भवसे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । इस अंगमें ऐसे ही दश महामुनियों व अनुत्तर-स्वर्गवासियोंके चारित्र्यका विवरण उपस्थित किया गया था ।

१०. प्रश्नव्याकरण—इसमें उसके नामानुसार मत-मतान्तरों व सिद्धान्तों सम्बन्धी प्रश्नोत्तरोंका समावेश था और इस प्रकार यह अंग व्याख्याप्रज्ञप्तिका परिपूरक रहा प्रतीत होता है ।

११. विपाकसूत्र—विपाकका अर्थ है कर्मफल । कर्मसिद्धान्तके अनुसार सत्-कर्मोंका फल सुख-भोग और दुष्कृत्योंका फल दुःख होता है । इसी बातको इस अंगमें दृष्टान्तों द्वारा समझाया गया ।

१२. दृष्टिवाद—इसके पाँच भेद थे—परिकर्म, भुत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका । परिकर्ममें गणितशास्त्रका तथा सूत्रमें मतों और सिद्धान्तोंका समावेश था । पूर्वगतके चौदह प्रभेद गिनाये गये हैं जिनके नाम हैं : १. उत्पादपूर्व, २. अग्रायणीय, ३. वीर्यानुवाद, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्म-प्रवाद, ८. कर्म-प्रवाद, ९. प्रत्यारूपान, १०. विश्वानुवाद, ११. कल्याण-वाद, १२. प्राणवाद, १३. क्रियाविशाल, और १४. लोकविन्दुसार । इनमें अपने-अपने नामानुसार सिद्धान्तों व तत्त्वोंका विवेचन किया गया था । इनमें आठवें पूर्व कर्मप्रवादका विशेष महत्त्व है क्योंकि वही जैनधर्मके प्राणभूत कर्म-सिद्धान्तका मूल स्रोत रहा पाया जाता है और उत्तरकालीन कर्म-सम्बन्धी समस्त रचनाएँ उसके ही आधारसे की गयी प्रतीत होती हैं । इन समस्त रचनाओंको पूर्वगत

कहनेका यही अर्थ सिद्ध होता है कि उनके विषयोंकी परम्परा महावीरसे भी पूर्वकालीन है। हाँ, उनमें महावीर द्वारा अपने सिद्धान्तानुसार संशोधन किया गया होगा।

दृष्टिवादके चौथे भेद अनुयोगका भी जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे प्रथमानुयोग भी कहा जाता है और समस्त पौराणिक वृत्तान्तों, धार्मिक चरित्रों एवं आख्यानत्मक कथाओं आदिको प्रथमानुयोगके अन्तर्गत ही माना जाता है। षट्खण्डागम सूत्र १, १, २ की षवला टीकाके अनुसार प्रथमानुयोगके अन्तर्गत पुराण के बारह भेद थे जिनमें क्रमशः अरहन्तों, चक्रवर्तियों, विशाखों, वामुदेवों, धारणों, प्रज्ञाश्रमणों तथा कुरु, हरि, इक्ष्वाकु, काश्यपों, आदियों एवं नाथ वंशोंका वर्णन था।

दृष्टिवादके पाँचवें भेद चूलिकाके पाँच प्रभेद गिनाये गये हैं—जलगत, स्थलगत, मायागत, स्वगत और आकाशगत। इन नामों परसे प्रतीत होता है कि उनमें जल-स्थल आदि विषयोंका भौगोलिक व तार्किक विवेचन किया गया होगा और सम्भवतः उनपर अधिकार प्राप्त करने की मान्त्रिक-तान्त्रिक ऋद्धि-सिद्धि साधनात्मक क्रियाओंका विधान रहा हो।

दिगम्बर परम्परानुसार उक्त समस्त अंगसाहित्य क्रमशः अपने मूल रूपमें विलुप्त हो गया। महावीर-निर्वाण के पश्चात् १६२ वर्षोंमें हुए आठ मुनियोंको ही इन अंगोंका सम्पूर्ण ज्ञान था। इनमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु कहे गये हैं। तत्पश्चात् क्रमशः सभी अंगों और पूर्वोंके ज्ञानमें उत्तरोत्तर ह्रास होता गया और निर्वाणसे सातवीं शतीमें ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गयी कि केवल कुछ महामुनियोंको ही इन अंगों व पूर्वोंका आंशिक ज्ञानमात्र शेष रहा जिसके आधारसे समस्त जैन शास्त्रों व पुराणों की स्वतन्त्र रूपसे नयी शैलीमें विभिन्न देश-कालानुसार प्रचलित प्राकृतदि भाषाओंमें रचना की गयी।

श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार वीर-निर्वाणकी दशवीं शती में मुनियोंकी एक महासभा गुजरात प्रान्तीय वल्लभी (आधुनिक वाला) नामक नगरमें की गयी और वहाँ क्षमाश्रमण देवद्वि गणि की अध्यक्षतामें उक्त अंगोंमें से ग्यारह अंगोंका संकलन किया गया जो अब भी उपलब्ध है। यद्यपि ये संकलन पूर्णतः अपने मौलिक रूपको सुरक्षित रखते हुए नहीं पाये जाते। विषयकी दृष्टिसे इनमें हीनाधिकता स्पष्ट दिखाई देती है। भाषा भी उनकी वह अर्द्धमागधी नहीं है जो महावीर भगवान्के समयमें प्रचलित थी। उसमें उनके काळसे एक सहस्र वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुई भाषात्मक विशेषताओंका समावेश भी पाया जाता है। तथापि सामान्यतया ये प्राचीनतम विषयों व प्रतिपादन-शैलीका बोध करानेके लिए पर्याप्त

हैं। उनका प्राचीनतम बौद्ध साहित्यसे भी मेल खाता है। जिस प्रकार बौद्ध साहित्य त्रिपिटक कहलाता है उसी प्रकार यह जैन साहित्य गणित्पिटकके नामसे उल्लिखित पाया जाता है।

यह समस्त साहित्य अंगप्रतिष्ठ कहा गया है। इसके अतिरिक्त मुनियोंके आचार व क्रियाकलापका विस्तारसे वर्णन अंगवाह्य नामक चौदह प्रकारकी रचनाओंमें पाया जाता है जो इस प्रकार हैं—

१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५. वैनायिक, ६. कृतिकर्म, ७. दशवैकालिक, ८. उत्तराध्ययन, ९. कल्पव्यवहार, १०. कल्पकल्प, ११. महाकल्प, १२. पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक, १४. निषिद्धिका।

इन नामोंसे ही स्पष्ट है कि इन रचनाओंका विषय धार्मिक साधनाओं और विशेषतः मुनियोंकी क्रियाओंसे सम्बन्ध रखता है। यद्यपि ये चौदह रचनाएँ अपने प्राचीन रूपमें अलग-अलग नहीं पायी जातीं, तथापि इनका नाना ग्रन्थोंमें समावेश है और वे मुनियों द्वारा अब भी उपयोगमें लायी जाती हैं।

वल्लभीपुरमें मुनिसंघ द्वारा जो साहित्य-संकलन किया गया उसमें उक्त प्रथम खण्ड जेनेके अतिरिक्त औपसत्तिक, सन्न-गतेणिया सन्दि १२ उपांग; निशोय, महानिशोय आदि ६ छेदसूत्र; उत्तराध्ययन, आवश्यक आदि ४ मूलसूत्र; चतुःशरण, आतुर-प्रत्याख्यान आदि दश प्रकीर्णक, तथा अनुयोगद्वार और नन्वी ये दो चूलिका-सूत्र भी सम्मिलित हो गये जिससे समस्त अर्द्धमागभी आगम-ग्रन्थोंकी संख्या ४५ हो गयी जिसे श्वेतान्तर सम्प्रदाय द्वारा धार्मिक मान्यता प्राप्त है। यह समस्त साहित्य अपनी भाषा व शैली तथा दार्शनिक व ऐतिहासिक सामग्रीके लिए पालि साहित्यके समान ही महत्त्वपूर्ण है।

७. महावीर-निर्वाण-काल

भगवान् महावीरका निर्वाण कब हुआ इसके सम्बन्ध में यह तो स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि यह घटना कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम चरणमें अर्थात् अमावस्याके प्रातःकालसे पूर्व घटित हुई और उनके निर्वाणोत्सवको देवों तथा मनुष्योंने दीपावलीके रूपमें मनाया। तदनुसार आजतक कार्तिककी दीपावली-

१. समवायंग सूत्र २११-२२७। षट्खण्डागम १, १, २; टीका भाग १, पृष्ठ २६ आदि।
विंटरनिट्ज : इंडियन लिटरेचर भाग २ जैन लिटरेचर। कापडिया : हिस्ट्री ऑफ दि जैन केतानिकल लिटरेचर। जगदीशचन्द्र : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३३ आदि।
हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ५५ आदि। नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १५७ आदि।

से उनका निर्वाण संवत् माना जाता है जिसका इस समय सन् १९७१-७२ में चौबीस सौ अठान्तरे (२४९८) वाँ वर्ष प्रचलित है तथा दो वर्ष पश्चात् पूरे पच्चीस सौ वर्ष होनेपर एक महामहोत्सव मनानेकी योजना चल रही है। किन्तु इस संवत्सरका प्रचलन अपेक्षाकृत बहुत प्राचीन नहीं और महावीरके समयमें तथा उसके दीर्घकाल पश्चात् तक किसी सन्-संवत्के उल्लेखका प्रचार नहीं था। पश्चात्कालीन ग्रन्थोंमें जो कालसम्बन्धी उल्लेख पाये जाते हैं उनमें कहीं-कहीं परस्पर कुछ विरोध पाया जाता है और कहीं अन्य साहित्यिक उल्लेखों तथा ऐतिहासिक घटनाओंसे मेल नहीं खाता। इससे निर्वाण कालके सम्बन्धमें आधुनिक विद्वानोंके बीच बहुत-सा मतभेद उत्पन्न हो गया है। एक ओर जर्मन विद्वान् डॉ. याकोबीने महावीर निर्वाण का समय ई. पू. चार सौ सत्तहत्तर (४७७) माना है। इसका आधार यह है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक ई. पू. ३२२ (तीन सौ बाईस) में हुआ और हेमचन्द्र-कृत परिशिष्ट पर्व (८-३३९) के अनुसार यह अभिषेक महावीरके निर्वाणसे १५५ (एक सौ पचपन) वर्ष पश्चात् हुआ था। इस प्रकार महावीर निर्वाण $३२२ + १५५ = ४७७$ वर्ष पूर्व सिद्ध हुआ। किन्तु दूसरी ओर डॉ. काशीप्रसाद जायसवालका मत है कि बौद्धोंकी सिंहल-देशीय परम्परामें बुद्धका निर्वाण ई. पू. ५४४ माना गया है। तथा मज्झिमनिकायके साम-गाम सूक्तमें व त्रिपिटकमें अन्यत्र भी इस बातका उल्लेख है कि भगवान् बुद्धको अपने एक अनुयायी द्वारा यह समाचार मिला था कि पावामें महावीरका निर्वाण हो गया। ऐसी भी धारणा रही है कि इसके दो वर्ष पश्चात् बुद्धका निर्वाण हुआ। अतएव यह सिद्ध हुआ कि महावीर-निर्वाणका काल ई. पू. ५४६ है। किन्तु शिवाय करनेसे ये दोनों अभिमत प्रमाणित नहीं होते। जैन साहित्यिक तथा ऐतिहासिक एक शुद्ध और प्राचीन परम्परा है जो वीर-निर्वाण को विक्रम संवत् से ४७० (चार सौ सत्तर) वर्ष पूर्व तथा शक संवत् से ६०५ (छह सौ पाँच) वर्ष पूर्व हुआ मानती है। इस परम्परा का ऐतिहासिक क्रम इस प्रकार है : जिस रात्रिको वीर भगवान्का निर्वाण हुआ उसी रात्रिको उज्जैनके पालक राजाका अभिषेक हुआ। पालकने ६० वर्ष राज्य किया। तत्पश्चात् नन्दवंशीय राजाओंने १५५ वर्ष, मौर्यवंशने १०८ वर्ष, पुष्यमित्रने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्रने ६० वर्ष, नहुषान (नहुवान नरवाहन या नहुसेन) ने ४० वर्ष, गर्दभिल्लने १३ वर्ष और एक राजाने ४ वर्ष राज्य किया, और तदपश्चात् विक्रम-काल प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार वीरनिर्वाणसे $६० + १५५ + १०८ + ३० + ६० + ४० + १३ + ४ = ४७०$ वर्ष विक्रम संवत्के प्रारम्भ तक सिद्ध हुए। डॉ. याकोबीने हेमचन्द्र आचार्यके जिस मतके आधारपर वीर-निर्वाण

और चन्द्रगुप्त मौर्यके बीच १५५ वर्षका अन्तर माना है वह वस्तुतः ठीक नहीं है। डॉ. याकोबीने हेमचन्द्रके परिशिष्ट पर्वका सम्पादन किया है और उन्होंने अपना यह मत भी प्रकट किया है कि उक्त कृति की रचनामें शीघ्रताके कारण अनेक भूलें रह गयी हैं। इन भूलोंमें एक यह भी है कि ईशानवर्ष और चन्द्रगुप्तका काल अंकित करते समय वे पालक राजाका ६० वर्षका काल भूल गये जिसे जोड़नेसे वह अन्तर १५५ वर्ष नहीं किन्तु २१५ वर्षका हो जाता है। इस भूलका प्रमाण स्वयं हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राजा कुमारपालके कालमें पाया जाता है। उनके द्वारा रचित त्रिवष्टि-शलका-पुरुष-चरित (पर्व १०, सर्ग १२, श्लोक ४५-४६) में कहा गया है कि वीर निर्वाणसे १६६९ वर्ष पश्चात् कुमारपाल राजा हुए। अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध है कि कुमारपालका राज्याभिषेक ११४२ ई. में हुआ था। अतएव इसके अनुसार वीर-निर्वाणका काल $१६६९ - ११४२ = ५२७$ ई. पू. सिद्ध हुआ।

डॉ. जायसवालने जो बुद्ध निर्वाणका काल सिंहलीय परम्पराके आधारसे ई. पू. ५४४ मान लिया है वह भी अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता। उससे अधिक प्राचीन सिंहलीय परम्पराके अनुसार मौर्य सम्राट् अशोकका राज्याभिषेक बुद्ध-निर्वाणसे २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था। अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुका है कि अशोकका अभिषेक ई. पू. २६९ वर्षमें अथवा उसके लगभग हुआ था। अतएव बुद्ध-निर्वाणका काल $२१८ + २६९ = ४८७$ ई. पू. सिद्ध हुआ। इसकी पुष्टि एक चीनी परम्परासे भी होती है। चीनके कैज़टन नामक नगरमें बुद्ध-निर्वाणके वर्षका स्मरण बिन्दुओं द्वारा सुरक्षित रखनेका प्रयत्न किया गया है। प्रति वर्ष एक बिन्दु जोड़ दिया जाता था। इन बिन्दुओंकी संख्या निरन्तर ई. सन् ४८९ तक चलती रही और तब तकके बिन्दुओंकी संख्या ९७५ पायी जाती है। इसके अनुसार बुद्ध-निर्वाणका काल $९७५ - ४८९ = ४८६$ ई. पू. सिद्ध हुआ। इस प्रकार सिंहल और चीनी परम्परामें पूरा सामञ्जस्य पाया जाता है। अतएव बुद्ध-निर्वाण का यही काल स्वीकार करने योग्य है।

स्वयं पालि त्रिपिटकमें इस बातके प्रचुर प्रमाण पाये जाते हैं कि महावीर आशुमें और तपस्यामें बुद्धसे ज्येष्ठ थे, और उनका निर्वाण भी बुद्धके जीवन-काल में ही हो गया था। दोषनिकायके धामप्य-फल-सुत्त, संयुत्त-निकायके दहर-सुत्त तथा सुत्त-निपातके सभिय-सुत्तमें बुद्धसे पूर्ववर्ती छह तीर्थकोंका उल्लेख आया है। उनके नाम हैं पूरण कश्यप, मक्खलिगोशाल, निगंठ नातपुत्त (महावीर), संजय वेलट्टिपुत्त, प्रबुद्ध कच्चायन और अजितकेश-कंबलि। इन सभीको बहुत लोगों द्वारा सम्मानित, अनुमयी, चिरप्रज्जित व यमोद्द कहा गया है, किन्तु बुद्धको ये

विशेषण नहीं लगाये गये । इसके विपरीत उन्हें उक्त छहकी अपेक्षा जन्मसे अल्प-वयस्क व प्रव्रज्यामें नया कहा गया है । इससे सिद्ध है कि महावीर बुद्धसे ज्येष्ठ थे और उनसे पहले ही प्रव्रजित हो चुके थे ।

मज्झिमनिकायके साम-नाम सुत्तमें वर्णन आया है कि जब भगवान् बुद्ध साम-नाममें विहार कर रहे थे तब उनके पास चुन्द नामक श्रमणोंदेश आया और उन्हें यह सन्देश दिया कि अभी-अभी पावामें निगंठ नातपुत्त (महावीर) की मृत्यु हुई है, और उनके अनुयायियोंमें कलह उत्पन्न हो गया है । बुद्धके पट्ट शिष्य आनन्दको इस समाचारसे सन्देह उत्पन्न हुआ कि कहीं बुद्ध भगवान् के पश्चात् उनके संघमें भी ऐसा ही विवाद उत्पन्न न हो जाये । अपने इस संदेहको चर्चा उन्होंने बुद्ध भगवान् से भी की । यही वृत्तान्त दीक्ष-निकायके पासादिक-सुत्तमें भी पाया जाता है । इसी तिकलके संगेति-विवाद-सुत्तमें भी बुद्धके संघमें महावीर-निर्वाणका वही समाचार पहुँचता है और उसपर बुद्धके शिष्य सारिपुत्तने भिक्षुओंको आमन्त्रित कर वह समाचार सुनाया तथा भगवान् बुद्धके निर्वाण होनेपर विवादकी स्थिति उत्पन्न न होने देनेके लिए उन्हें सतर्क किया । इसपर स्वयं बुद्धने कहा—साधु, साधु, सारिपुत्र, तुमने भिक्षुओंको अच्छा उपदेश दिया । ये प्रकरण निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित करते हैं कि महावीरका निर्वाण बुद्धके जीवन-कालमें ही हो गया था । यही नहीं, किन्तु इससे उनके अनुयायियोंमें कुछ विवाद भी उत्पन्न हुआ था जिसके समाचारसे बुद्धके संघमें कुछ चिन्ता भी उत्पन्न हुई थी, और उसके समाधान का भी प्रयत्न किया गया था । इस प्रकार बुद्धसे महावीरकी बरिष्ठता और पूर्व-निर्वाण निस्सन्देह रूपसे सिद्ध हो जाता है और उनका दोनोंकी उक्त परम्परागत निर्वाण-तिथियोंसे भी मेल बैठ जाता है ।

८. महावीर-जन्मस्थान

प्रस्तुत ग्रन्थ संधि १ कडवक ६-७ में कहा गया है कि जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें स्थित कुण्डपुरके राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके चौबीसवें जितेन्द्र महावीरका जन्म होगा । इस परसे इतना तो स्पष्ट हो गया कि भगवान् का जन्म-स्थान कुण्डपुर था । किन्तु वहाँ उसके भारतमें स्थित होनेके अतिरिक्त और अन्य

१. महावीर और बुद्धके निर्वाण कालतमन्वी उल्लेखों व कथाओंके लिए देखिए ब्रिटिशिन्ट्रज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर भाग २ अपेण्डिक्स १ बुद्ध-निर्वाण व अपेण्डिक्स ६ महावीर-निर्वाण । गुप्ति नगराज कृत आगम और ब्रिटिश : एक अनुशीलन, पृष्ठ ४७-१२८ ।

कोई प्रदेश आदिकी सूचना नहीं दी गयी। तथापि अन्य ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था। उदाहरणार्थ पूज्यपाद स्वामी कृत निर्वाण-भक्तिमें कहा गया है कि :—

“सिद्धार्थ-नृपति-तनयो भारतवास्ये विदेह-कुण्डपुरे ।” अर्थात् राजा सिद्धार्थ के पुत्र महावीरका जन्म भारतवर्षके विदेह प्रदेशमें स्थित कुण्डपुरमें हुआ। इसी प्रकार जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (सर्ग २ श्लोक १ से ५) में कहा गया है कि :

अथ देशोऽस्ति विस्तारो जम्बूद्वीपस्य भारते ।

विदेह इति विख्यातः स्वर्गसङ्घसमः धिया ॥

तत्राखण्डलनेत्रालीपथिनीखण्डमण्डनम् ।

सुखाम्भःकुण्डमाभाति नाम्ना कुण्डपुरं पुरम् ॥

अर्थात् जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विशाल, विख्यात व समृद्धिमें स्वर्गके समान जो विदेह देश है उसमें कुण्डपुर नामका नगर ऐसा शोभावमान दिखाई देता है जैसे मानो वह सुखरूपी जलका कुण्ड ही हो, तथा जो इन्द्र के सहस्र सेनोंकी पंक्तिरूपी कमलनी-खण्डसे मण्डित हो। गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (पर्व ७४ श्लोक २५१-२५२) में भी पाया जाता है कि :

भरतेऽस्मिन्विदेहाख्ये विषये भवताङ्गणे ।

राजाः कुण्डपुरेशस्य वसुधारापतत्पुत्रः ॥

अर्थात् इसी भरत क्षेत्रके विदेह नामक देशमें कुण्डपुर-नरेशके प्रासादके प्रांगणमें विशाल धनकी धारा बरसी ।

अर्द्धमहाभारत आगमके आचाराङ्ग सूत्र (२, १५) तथा कलासूत्र (११०) में भी कहा गया है कि :

समणे भगवं महावीरे णए णायपुत्ते णायकुलणिवत्ते विदेहे विदेहदित्ते विदेहजन्त्वे विदेहसुमाळे तीसं वासादं विदेहंसि कट्ठु अगारमज्जे वसित्ता.... ।

अर्थात् ज्ञातु, ज्ञानु-पुत्र, ज्ञातुकुलोत्पन्न, विदेह, विदेहदत्त, विदेहजाय, विदेहन सुकुमार, श्रमण भगवान् महावीर ३० वर्ष विदेहदेशके ही गृहमें निवास करके प्रव्रजित हुए ।

और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं, किन्तु इतने ही उल्लेखोंसे यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि भगवान् महावीरकी जन्मनगरीका नाम कुण्डपुर था, और वह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था। सीमाभ्यसे विदेहकी सीमाके सम्बन्धमें कहीं कोई विवाद नहीं है। प्राचीनतम काल से बिहार राज्यका गंगासे उत्तरका भाग विदेह और दक्षिणका भाग मगध नामसे प्रसिद्ध रहा है। इसी विदेह प्रदेशको तीरभुक्ति नामसे भी उल्लिखित किया गया है जिसका वर्तमान

रूप तिरहुत अब भी प्रचलित है । पुराणोंमें इसकी सीमाएँ इस प्रकार निर्दिष्ट की गयी हैं :

गङ्गा-हिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे ।
तीरभुक्तिरिति ह्यतो देशः परम-यावनः ॥
कौशिकी तु समारम्भ गण्डकीमधिगम्य वै ।
योजनानि षतुर्विंशद् व्यायामः परिकीर्तितः ॥
गङ्गा-प्रवाहमारम्भ यावद् हैमवतं वरम् ।
विस्तारः षोडशं प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दन ॥

इस प्रकार विदेह अर्थात् तीरभुक्ति (तिरहुत) प्रदेश की सीमाएँ सुनिश्चित हैं । उत्तरमें हिमालय पर्वत और दक्षिणमें गंगा नदी, पूर्वमें कौशिकी और पश्चिममें गण्डकी नामक नदियाँ । किन्तु विदेहकी ये सीमाएँ भी एक विशाल क्षेत्रको सूचित करती हैं और अब हमारे लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रदेशमें कुण्डपुरको कहाँ रखा जाये । इसके निर्णयके लिए हमारा ध्यान महावीरके जातु-कुलोत्पन्न, जातुपुत्र आदि विशेषणोंकी ओर आकृष्ट होता है । ये जातु क्षत्रियवंशी कहाँ रहते थे इसका संकेत हमें बौद्ध साहित्यके एक अतिप्राचीन ग्रन्थ महावस्तुमें प्राप्त होता है । वहाँ प्रसंग यह है कि बुद्ध भगवान् गंगाकी पार कर वैशालीकी ओर जा रहे हैं और उनके स्वागतके लिए वैशाली संघके लिच्छवी आदि अनेक क्षत्रियगण शोभायात्रा बनाकर उनके स्वागतार्थ आते हैं । इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि :

स्त्रीतानि राज्यानि प्रशास्यमाना ।

तस्यम् राज्यानि करोन्ति जातवः ॥

तथा इमे लेच्छवि-मध्ये सन्तो ।

देवेहि शास्ता उपमामकासि ॥

अर्थात् ये जो क्षत्रियगण भगवान्के स्वागतके लिए आ रहे हैं उनमें जो जातु नामक क्षत्रियगण हैं वे अपने विशाल राज्यका शासन भले प्रकारसे करते हैं और वे लिच्छवि गणके क्षत्रियोंके बीच ऐसे प्रतिष्ठित और शोभायमान दिखाई देते हैं कि स्वयं शास्ता अर्थात् स्वयं भगवान् बुद्धने उनकी उपमा देवोंसे की है । इस उल्लेखसे एक तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि जातुकुलके क्षत्रियोंका निवास-स्थान वैशाली ही था, और दूसरे वे लिच्छविगणमें विशेष सम्मानका स्थान रखते थे । इसका कारण भी स्पष्ट है । जातुओंके कुलकी प्रतिष्ठा इस कारण और भी बढ़ गयी प्रतीत होती है क्योंकि उनके गणनायक सिद्धार्थ वैशाली गणके नायक राजा चेटकके जामाता थे । चेटककी कन्या (भगिनी) प्रियकारिणी विशालका

विवाह जातुकुलश्रेष्ठ राजा सिद्धार्थसे हुआ था। भगवान् महावीरको वैशालीसे सम्बद्ध करनेवाला एक और पुष्ट प्रमाण उपलब्ध है। अर्द्धमागधी आगमोंमें (सूत्रकृतांग १, २; उत्तराध्ययन ६ आदि) अनेक स्थानोंपर भगवान् महावीरको वैशालीय—वैशालिक कहा गया है। यद्यपि कुछ टीकाकारोंने वैशालिकका विशाल-व्यक्तिवशील, विशालामाताके पुत्र आदि रूपसे विविध प्रकार अर्थ किये हैं तथापि वे संतोषजनक नहीं हैं। वैशालिकका यही स्पष्ट अर्थ समझमें आता है कि वैशाली नगरके नागरिक थे। आगम में अनेक स्थानोंपर वैशाली श्रावकोंका भी उल्लेख आता है। भगवान् ऋषभदेव कोशल देशके थे, अतएव उन्हें 'अरहा कोसलीये' अर्थात् कोशल देशके वरतुल्य ज्ञानकार भी सम्बोधित किया गया है (समवायांग सूत्र १४१, १६२)। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि महावीर वैशाली नगरमें ही उत्पन्न हुए थे और कुण्डपुर उसी विशाल नगरका एक भाग रहा होगा।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वैशालीकी स्थिति कहाँ थी? इसका स्पष्ट उत्तर वाल्मीकि कृत रामायण (१, ४५) में पाया जाता है। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र मुनिके साथ मिथिलामें राजा जनक द्वारा आयोजित धनुर्यज्ञमें जा रहे हैं। जब वे गंगा-तटपर पहुँचे तब मुनिने उन्हें गंगा-अवतरणका आख्यान सुनाया। तत्पश्चात् उन्होंने गंगा पार की ओर वे उसके उत्तरीय तटपर जा पहुँचे। वहाँसे उन्होंने विशालापुरीको देखा :

उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यषिगणं ततः ।

गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां द्रुशुः पुरीम् ॥९॥ (रामा. ४५, ९)

और वे शीघ्र ही उस रम्य, दिव्य तथा स्वर्गोपम नगरीमें जा पहुँचे।

ततो मुनिवरस्तूर्णं अगाम सहस्राधवः ।

विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥

(रामा. १, ४५, ९-१०)

यहाँ उन्होंने एक रात्रि निवास किया और दूसरे दिन वहाँसे चलकर वे जनकपुरी मिथिलामें पहुँचे।

‘उष्य तत्र निशामेको जम्भतुमिथिलां ततः ।’

बौद्ध ग्रन्थोंमें भी वैशालीके अनेक उल्लेख आये हैं और वहाँ भी स्पष्टतः कहा गया पाया जाता है कि बुद्ध भगवान् गंगाको पारकर उत्तरकी ओर वैशालीमें पहुँचे। वैशालीमें उस समय लिच्छवि संघका राज्य था तथा गंगाके दक्षिणमें मगधनरेश श्रेणिक बिम्बसार और उनके पश्चात् कुणिक अजातशत्रुका एकछत्र राज्य था। इन दोनों राज्यतन्त्रोंमें मौलिक भेद था और उनमें क्षत्रुता भी बढ़

गयी थी। बौद्ध ग्रन्थोंमें उल्लेख है (दीघनिकाय-महापरिणिब्बाण सुत्त) कि अजातशत्रुके मन्त्री वर्षकारने बुद्धसे पूछा था कि क्या वे वैशालीके लिच्छवि संघ-पर विजय प्राप्त कर सकते हैं ? इसके उत्तरमें बुद्धने उन्हें यह सूचित किया था कि जबतक लिच्छवि गणके लोग अपनी गणतन्त्रीय व्यवस्थाको सुसंगठित हो एकमतसे समर्थन दे रहे हैं, न्यायनीतिका पालन करते हैं और सदाचारके नियमों का उल्लंघन नहीं करते, तबतक उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। यह बात जानकर वर्षकार मन्त्रीने कूटनीतिसे लिच्छवियोंके बीच फूट डाली और उन्हें न्यायनीतिसे भ्रष्ट किया। इसका जो परिणाम हुआ उसका विशद वर्णन अर्द्धभागधी आगमके भगवती सूत्र, सप्तम शतक में पाया जाता है। इसके अनुसार अजात-शत्रुकी सेनाने वैशालीपर आक्रमण किया। युद्धमें महाशिलकंदक और रथमुसल नामक युद्ध-यन्त्रोंका उपयोग किया गया। अन्ततः वैशालीके प्राकारका भंग होकर अजातशत्रुकी विजय हो गयी। तात्पर्य यह है कि महावीरके कालमें वैशालीकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और उस नगरीका नागरिक होना एक गौरवकी बात मानी जाती थी। इसीलिए महावीरको वैशालीय कहकर भी सम्बोधित किया गया है। अनेक प्राचीन नगरोंके साथ इस वैशालीयका भी दीर्घकाल तक इतिहासज्ञोंको अता-पता नहीं था। किन्तु विगत एक शताब्दीमें जो पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज-खोज हुई है उससे प्राचीन भग्नावशेषों, मुद्राओं व शिलालेखों आदिके आधारसे प्राचीन वैशाली-की ठीक स्थिति अवगत हो गयी है और निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित हो गया है कि बिहार राज्यसे गंगाके उत्तरमें मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत बसाढ़ नामक ग्राम ही प्राचीन वैशाली है। स्थायीय खोज-खोजसे यह भी माना गया है कि वर्तमान बसाढ़के समीप ही जो वामुकुण्ड नामक ग्राम है वही प्राचीन कुण्डपुर होना चाहिए। वहाँ एक प्राचीन कुण्डके भी चिह्न पाये जाते हैं जो अत्रियकुण्ड कहलाता रहा होगा। उसीके समीप एक ऐसा भी भूमिखण्ड पाया गया जो 'अहल्य' माना जाता रहा है। उसपर कभी हल नहीं चलाया गया, तथा स्थानीय जनताकी धारणा रही है कि वह एक अतिप्राचीन महापुरुषका जन्मस्थान था। इसलिए उसे पवित्र मानकर लोग वहाँ दीपावलीको अर्थात् महावीरके निर्वाणके दिन दीपक जलाया करते हैं। इन सब बातोंपर समुचित विचार करके विद्वानोंने उसी स्थलको महावीरकी जन्मभूमि स्वीकार किया और बिहार सरकारने भी इसी आधारपर उस स्थलको अपने अधिकारमें लेकर उसका घेरा बना दिया है और वहाँ एक कमलाकार वेदिका बनाकर वहाँ एक संगमरमरका शिलापट्ट स्थापित कर दिया है। उसपर अर्द्धभागधी भाषामें आठ गाथाओंका लेख हिन्दी अनुवाद सहित भी अंकित कर दिया गया है जिसमें वर्णन है कि यह वह स्थल है

जहाँ भगवान् महावीरका जन्म हुआ था और जहाँसे वे अपने ३० वर्षके कुमार-कालको पूरा कर प्रव्रजित हुए थे । बिलालेखमें यह भी उल्लेख है कि भगवान् के जन्मसे २५५५ वर्ष व्यतीत होनेपर विक्रम संवत् २०१२ वर्षमें भारत के राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादने वहाँ आकर उस स्मारकका उद्घाटन किया ।

महावीर स्मारकके समीप ही तथा पूर्वोक्त प्राचीन क्षत्रिय कुण्डकी तटवर्ती भूमिपर साहू शान्तिप्रसादके दानसे एक भव्य भवनका निर्माण भी करा दिया गया है और वहाँ बिहार राज्य शासन द्वारा प्राकृत जैन शोध-संस्थान भी चलाया जा रहा है । यह संस्थान सन् १९५६ में मेरे (डा. हीरालाल जैन) निर्देशकत्वमें मुजफ्फरपुरमें प्रारम्भ किया गया था । उन्हींके द्वारा वैशालीमें महावीर स्मारक स्थापित कराया गया तथा शोध-संस्थानके भवनका निर्माण कार्य प्रारम्भ कराया गया ।

वैशालीकी स्थितिका यह जो निर्णय किया गया उसमें एक शंका रह जाती है । कुछ धर्म-ग्रन्थोंको यह बात खटकती है कि कहीं-कहीं वैशालीकी स्थिति विदेहमें नहीं, किन्तु सिन्धु देशमें कही गयी है । प्रस्तुत ग्रन्थ (५, ५) में भी कहा पाया जाता है कि 'सिन्धुविसद्वहसालोपुरवरि' तथा संस्कृत उत्तर पुराण (७५, ३) में भी कहा गया है :

सिन्धुवाख्यविषये भूमृद्वैशालीनगरेऽभवत् ।

चैटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः ॥

इन दोनों स्थानोंपर सिन्धु विषय व सिन्धुवाख्यविषयेका सात्पर्य सिन्धु देशसे लगाया जाना स्वाभाविक ही है । किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वर्तमान सिन्धुदेशमें न तो किसी वैशाली नामक नगरीका कहीं कोई उल्लेख पाया गया और न उसकी पूर्वोक्त समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों और घटनाओंसे सुसंगति बैठ सकती है । वैशालीकी स्थितिमें अब कहीं किसी विद्वान्को संशय नहीं रहा है । इस विषयपर मैंने जो विचार किया है उससे मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि उत्तर पुराणमें जो 'सिन्धुवाख्यविषये' पाठ है वह किसी लिपिकारके प्रमादका परिणाम है । यथार्थतः वह पाठ होना चाहिये 'सिन्धुवाख्य-विषये' जिसका अर्थ होगा वह प्रदेश जहाँ नदियोंका बाहुल्य है । तिरहुत प्रदेशका यह विशेषण पूर्णतः सार्थक है । इस प्रदेशका उल्लेख शंकरदिग्विजय नामक ग्रन्थमें भी आया है, और वहाँ उसे उदकदेश कहा गया है । तीरभुक्ति नामकी भी यही सार्थकता है कि समस्त प्रदेश प्रायः नदियों और उसके तटवर्ती क्षेत्रोंमें बटा हुआ है । ऊपर जो तीरभुक्ति सम्बन्धी एक उल्लेख उद्धृत किया गया है उसमें इस प्रदेशको 'नदी-पञ्चदशान्तरे' कहा गया है, अर्थात् पन्द्रह नदियोंमें बटा हुआ प्रदेश । वहाँ नदियोंकी बहुलता

तथा समय-समयपर पूरे प्रदेशका जल-जलावन आज भी देखा-सुना जाता है। अतः पूर्वोक्त दोनों उल्लेखोंसे किसी अन्य सिन्धु देशका नहीं, किन्तु इसी सिन्धुबहुल, उर्वकदेश या तीरभुक्तिसे ही अभिप्राय है।

अब इस विषयमें एक प्रश्न फिर भी शेष रह जाता है। इधर दीर्घकालसे महावीर स्वामीका जन्म-स्थान बिहारके पटना जिलेमें नालन्दाके समीप कुण्डलपुर माना जाता है। वहाँ एक विशाल मन्दिर भी है और वह भगवान्‌के जन्म-कल्याणक स्थानके रूपमें एक तीर्थ माना जाता है। इसी श्रद्धासे, वहाँ सहस्रों यात्री तीर्थयात्रा करते हैं। उसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा भगवान्‌का जन्म-स्थान मुंगेर जिलेके लच्छुआड़ नामक ग्रामके समीप क्षत्रिय-कुण्डको माना गया है। किन्तु ये दोनों स्थान गंगाके उत्तर विदेह देशमें न होकर गंगाके दक्षिणमें मगध देशके अन्तर्गत हैं और इस कारण दोनों ही सम्प्रदायोंके प्राचीनतम स्पष्ट ग्रन्थोल्लेखोंके विरुद्ध पड़ते हैं। यथार्थतः इस विषयमें सन्देह याकोबी आदि उन विदेशी विद्वानोंने प्रकट किया जिन्होंने इस विषयपर निष्पक्षतापूर्वक शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किया था, और उन्हींकी खोज-शोधां द्वारा वैशाली तथा कुण्डलपुरकी वास्तविक स्थितिका पता चला। ये जो दो स्थान वर्तमानमें जन्मस्थल माने जा रहे हैं उनकी परम्परा अस्तुतः बहुत प्राचीन नहीं हैं। विचार करनेसे ज्ञात होता है कि विदेह और मगध प्रदेशोंमें जैनधर्मके अनुयायियोंकी संख्या महावीरके कालसे लगभग बारह सौ वर्षतक तो बहुत रहीं। सातवीं शताब्दीमें हर्षवर्धनके कालमें जो चीनी यात्री ह्वेनत्सांग भारतमें आया था उसने समस्त बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेका प्रयत्न किया था। वह वैशाली भी गया था जिसके विषयमें उसने अपनी यात्राके वर्णनमें स्पष्ट लिखा है कि वहाँ बौद्ध धर्मानुयायियोंकी अपेक्षा निर्णयों अर्थात् जैनियोंकी संख्या अधिक है। किन्तु इसके पश्चात् स्थितिमें बड़ा अन्तर पड़ा प्रतीत होता है, और अनेक कारणोंसे यहाँ प्रायः जैनियोंका अभाव हो गया। इसके अनेक शताब्दी पश्चात् सम्भवतः मुगलकालमें व्यापारकी दृष्टिसे पुनः जैनी यहाँ आकर बसे और उन्होंने पुरातत्त्व व ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधारपर नहीं, किन्तु केवल नाम-साम्य तथा भ्रान्त जनधुतियोंके आधारसे कुण्डलपुर व लच्छुआड़में भगवान्‌के जन्मस्थानकी कल्पना कर ली। अब उक्त दोनों स्थान वहाँके मन्दिरोंके निर्माण, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तथा सैकड़ों वर्षोंसे जनताकी श्रद्धा एवं तीर्थयात्राके द्वारा तीर्थस्थल बन गये हैं और बने रहेंगे। किन्तु जब हमने यह ज्ञान लिया कि भगवान्‌का वास्तविक जन्म-स्थान वैशाली व कुण्डलपुर है उसे समस्त भारतीय व विदेशी विद्वानोंने एकमतसे स्वीकार किया है तथा बिहार शासन द्वारा भी उसे मान्यता प्रदान कर वहाँ महावीर स्मारक और

शोध-संस्थान की स्थापना भी पता है। उद सगस्त जैन धर्म के इस शोध की अपेक्षा नहीं करना चाहिए और अपना पूरा योगदान देकर उसे उसके ऐतिहासिक महत्व के अनुरूप गौरवशाली बनाना चाहिए ।

९. महावीर-तप-कल्याणक क्षेत्र

भगवान् ने तपश्चरण कहाँ प्रारम्भ किया था इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (१, ११) में इस प्रकार पाया जाता है :

चंदणह-सिवियहि पट्ट चडिण्णु ।
तहिँ णाह-संडवणि णवर दिण्णु ॥
सग्गसिर-कमण-दसमी-दिणंति ।
संजायइ तियसुच्छवि महंति ॥
वोलीणइ चरियावरण पंकि ।
हत्थुत्तरमज्झासिइ ससंकि ॥
छट्ठोदवासु किउ मलहरेण ।
तवचरणुलइउ परमेसरेण ॥

इसी प्रकार संस्कृत उत्तरपुराण (७५, ३०२-३०४) में भगवान् के तपश्चरणका उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है :

नाथः (नाथ-) पण्डवनं प्राप्य स्वयानादवरुह्य सः ।
श्रेष्ठः पण्डोपवासेन स्वप्रभापटलाकृते ॥३०२॥
निविश्योदङ्मुखो वीरो रुन्दरत्नशिलातले ।
दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायामशशिनि श्रिते ॥
हस्तोत्तरक्षयोर्मध्यं भागं चापास्तलक्ष्मणि ।
दिक्प्रसावसितौ धीरः संप्रभाभिमुखोऽभवत् ॥
सौधमर्दिः सुरैरेत्य कृताभिषेकपूजनः ॥

हरिवंशपुराण (२, ५०-५३) के अनुसार :

आरुह्य शिविकां दिव्यामुह्यमाना सुरैस्वरैः ॥
उत्तराफाल्गुनीष्वेव वर्तमाने निशाकरे ।
कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशम्यामममद् वनम् ॥

१. हार्नले : उपवासक-दशा, प्रस्तावना व टिप्पण , कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ १४० ।
भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० २२ आदि ।

अपनीय तनोः सर्वं वस्त्रमाल्यविभूषणम् ।

पञ्चमुष्टिभिरुद्धृत्य मूर्धजानभवन्मुनिः ॥

इन तीनों उल्लेखोंका अभिप्राय यह है कि नाथ, नाथ, नाथ अथवा ज्ञातृ वंशीय भगवान् महावीर ने मार्गशीर्ष कृष्ण १०वीं के दिन षण्डवनमें जाकर तपश्चरण प्रारम्भ किया और वे मुनि हो गये । यथार्थतः अर्द्धभागधी ग्रन्थों, जैसे कल्पसूत्रादिमें इसे 'गाय-संढवन' अर्थात् ज्ञातृ क्षत्रियोंके हिरसेका वन कहा गया है और मेरे मतानुसार उत्तरपुराणमें भी मूलतः पाठ नाथ-षण्डवन व अपभ्रंशमें गाहसंढवन रहा है जिसे अज्ञानवश लिपिकारोंने अपनी दृष्टिसे सुधार दिया है । अतः भगवान्की तपोभूमि ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंके निवास वैशाली व कुण्डपुरका समीपवर्ती उपवन ही सिद्ध होता है ।

१०. भगवान् का केवलज्ञान-क्षेत्र

भगवान्को केवलज्ञान कहाँ उत्पन्न हुआ इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (२, ५) में निम्नप्रकार पाया जाता है ।

बारह-संवच्छर-तव-चरणु ।

किञ्च सम्महणा दुक्किय-हरणु ॥

पोसंतु अहिस खंति ससहि ।

भयवंतु संतु विहरंतु महि ॥

यत्त जिम्हिय-गामहु अइ-णियडि ।

सुविडलि रिजुकूला-गइहि तडि ॥

यत्ता—मोर-कीर-सारस-सरि उज्जाणम्मि मणोहरि ॥

साल-मूलि रिसि-राणउ रयण-सिलहि आसीणउ ॥५॥

छट्ठेणुववासं हयदुरिएँ ।

परिपालिय-तेरह-विह-चरिएँ ॥

वइसाह-मासि सिय-दसमि दिणि ।

अवरण्हइ जायइ हिम-किरणि ॥

हत्युत्तर-मज्झ-समासियइ ।

पहु वडिदण्णउ केवल-सियइ ॥

अर्थात् भगवान् महावीरने बारह वर्ष तक तपस्या की, तथा अपनी स्वसा चन्दनाके अहिंसा और क्षमा भावका पोषण किया, एवं विहार करते हुए वे

जुम्भिक ग्रामके अतिनिकट ऋजुकूला नदीके तटवर्ती वनमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने एक साल वृक्षके नीचे शिलापर ध्यानारूढ़ हो दो दिन उपवासकर वैशाख शुक्ल दशमीके दिन अपराह्न कालमें जब चन्द्र उत्तराषाढ़ और हस्त नक्षत्रोंके मध्यमें था तब केवलज्ञान प्राप्त किया । यही बात उत्तरपुराण (७४, ३, ४९ आदि) में इस प्रकार कही गयी है :

भगवान्वर्धमानोऽपि नीत्वा द्वादशवत्सरान् ।
 छासस्थं जम्बूकधुर्जुम्भिकग्राम-संनिधौ ॥
 ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनान्तरे ।
 महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसन् ॥
 स्थित्वा पष्ठोपवासेन सोऽधस्तात्सालभूछहः ।
 वैशाखे मासि सज्योत्सन्दशम्यामपराह्णके ॥
 हस्तोत्तरान्तरं यात्रे शशिग्यारूढ-शुद्धिकः ।
 क्षापकव्येणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः ॥
 घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानन्तचतुष्टयम् ।
 परमात्मपदं प्रापत्परमेष्ठी स सन्मतिः ॥

यही बात हरिवंशपुराण (२, ५६-५९) में इस प्रकार कही गयी है :

मनःपर्ययपर्यन्त-चतुर्ज्ञानमहेक्षणः ।
 तपो द्वादशवर्षाणि चकार द्वादशात्मकम् ॥
 विहरन्नथ नाथोऽसौ गुणग्राम-परिग्रहः ।
 ऋजुकूलापगाकूले जम्भिक-ग्राममीयिवान् ॥
 तत्रातापनयोगस्थः सालाभ्यासशिलातले ।
 वैशाख-शुक्लपक्षस्य दशम्यां पष्ठमाश्रितः ॥
 उत्तराफाल्गुनीप्राप्ते शुक्लध्यानी निशाकरे ।
 निहत्य घातिसंघातं केवलज्ञानमाप्तवान् ॥

इस प्रकार भगवान् महावीरका केवलज्ञान-प्राप्ति रूप कल्याणक जुम्भिक ग्रामके समीप ऋजुकूला नदीके तटपर सम्पन्न हुआ । इस ग्रामका नाम आचार्यगण सूत्र व कल्पसूत्रमें जम्भिय तथा नदीका नाम ऋजुवालुका पाया जाता है ।

यद्यपि अभी तक इस ग्राम और नदीकी स्थितिका निर्णय नहीं हुआ, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं दिखाई देता कि उक्त नदी वही है जो अब भी बिहारमें कुयेल या कुएल—कूला नामसे प्रसिद्ध है और उसके तट पर इसी नामका एक बड़ा रेलवे जंक्शन भी है । उसीके समीप जम्हुई नामक नगर भी है । अतः यही

स्थान भगवान्का ज्ञान-प्राप्ति क्षेत्र स्वीकार करके वहाँ समुचित स्मारक बनाया जाना चाहिए ।

११. महावीरदेशना-स्थल

केवलज्ञान प्राप्त करके भगवान् राजगृह पहुँचे, और उस नगरके समीप विपुलाचल पर्वतपर उनका समवसरण बनाया गया । वहाँ उनकी दिव्यध्वनि हुई जिसका समय श्रावण कृष्ण प्रतिपदा कहा गया है । इसके अनुसार भगवान्का प्रथम उपदेश केवलज्ञान-प्राप्तिसे ६६ दिन पश्चात् हुआ । यह बात हरिवंशपुराण (२, ६१ आदि) में निम्न प्रकार पायी जाती है :

पट्षष्टिदिवसान् भूयो मोनेन विहरन् विभुः ।
आजगाम जगत् स्थातं जिनो राजगृहं पुरम् ॥
आहरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियम् ।
प्रबोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा ॥
श्रावणस्यामिते पक्षे तक्षत्रेऽभिजिति प्रथः ।
प्रतिपद्य हि पूर्वाह्णे शासनार्थमुदाहरत् ॥

इस प्रकार विहार राज्यके अन्तर्गत राजगृह नगरके समीप विपुलाचलगिरि ही वह पवित्र और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जहाँ भगवान् महावीरका दिव्य शासन प्रारम्भ हुआ । इस पर्वतपर पहलेसे ही अनेक जैन-मन्दिर हैं, और कोई २५-३० वर्ष-पूर्व यहाँ वीर-शासन स्मारक भी स्थापित किया गया था । तबसे वीर-शासन-जयन्ती भी श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको मनायी जाती है । तथापि उक्त स्मारक और पवित्र दिनकी अभीतक वह देशव्यापी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई जो उनके ऐतिहासिक महत्त्वके अनुरूप हो । इस हेतु प्रयास किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि यही वह स्थल है जहाँ न केवल भगवान्का धर्म-शासन प्रारम्भ हुआ था, किन्तु उस समयके सुप्रसिद्ध वेद-विज्ञाता इन्द्रभूति गौतमने आकर भगवान्का नायकत्व स्वीकार किया और वे भगवान्के प्रथम गणघर बने । यहीं उन्होंने भगवान्की दिव्यध्वनिको अंगों और पूर्वोंके रूपमें विभाजित कर उन्हें ग्रन्थारूढ़ किया । यहीं मगधनरेश श्रेणिक विम्बसारने भगवान्का उपदेश सुना और गौतम गणघरसे धर्म-वर्षा करके जैन-पुराणों और कथानकोंकी रचनाकी नींव डाली । यहीं श्रेणिकने ऐसा पुण्यवन्ध किया जिससे उनका अगले मानव जन्ममें महापद्म नामक तीर्थंकर बनना निश्चित हो गया ।

१२. महावीरनिर्वाण-क्षेत्र

महुकुला नदीके तटपर केवलज्ञान प्राप्त कर तथा विपुलाचलपर अपनी दिव्यध्वनि द्वारा जैन-धर्मका उपदेश देकर भगवान् महावीरने ३० वर्ष तक देश-के विविध भागोंमें विहार करते हुए धर्मप्रचार किया । तत्पश्चात् वे पावापुरमें आये और वहाँ अनेक सरोवरोंसे युक्त वनमें एक विशुद्ध शिलापर विराजमान हुए । दो दिन तक उन्होंने विहार नहीं किया, और शुक्लध्यानमें तल्लीन रहकर कार्तिक कृष्ण पक्षपूर्वशीकी रात्रिके अन्तिम भागमें जब चन्द्र स्वाति नक्षत्रमें था तब उन्होंने शरीर परित्याग कर सिद्ध-पद प्राप्त किया । प्रस्तुत भग्न (३,१) में यह बात इस प्रकार कही गयी है :

अंत-तित्थणाहु वि महि विहरिवि ।
 जण-दुरियाई दुलंघई पहरिवि ॥
 पावापुरवरु पत्तउ मणहरि ।
 पाव-तह-पल्लवि वणि बहु-सरवरि ॥
 संठिउ पविमल-रयण-सिलायलि ।
 रायहंसु पावह पंकय-दलि ॥
 दोणि दियहँ पविहास मुएप्पिणु ।
 णिव्वत्तिइ कत्तिइ तम-कसणि पवस चउहंसि-वासरि ।
 सुवक-ज्ञाणु तिज्जउ ज्ञाएप्पिणु ॥
 थिइ ससहरि दुहहरि साइवइ पच्छिमरयणिहि अन्नसरि ।

रिसिसहसेण समउ रयच्छिदणु ॥

सिद्धउ जिणु सिद्धत्थहु णंदणु ।

ठीक यही वृत्तान्त उत्तरपुराण (६७,५०८ से ५१२) में इस प्रकार पाया जाता है :

इहान्त्य-तीर्थनाथोऽपि विहृत्य विषमान् बहून् ॥
 क्रमात्यावापुरं प्राप्य मनोहर-वनाम्तरे ।
 बहूनां सरसां मध्ये महामणि-शिलातले ॥
 स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः ।
 कृष्ण-कार्तिक-पक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥
 स्वातियोगे तृतीयेऽह-शुक्लध्यानपरायणः ।
 कृतत्रियोग-सरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः ॥

हताघातिक्षतुष्कः सप्तशरीरो गुणात्मकः ।

गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम् ॥

इन उल्लेखोंपर-से स्पष्ट है कि भगवान् महावीरका निर्वाण पावापुरके समीप ऐसे वनमें हुआ था जिसमें आस-पास अनेक सरोवर थे । वर्तमानमें भगवान्का निर्वाण-क्षेत्र पटना जिलेके अन्तर्गत बिहार-शरीफके समीप वह स्थल माना जाता है जहाँ अब एक विशाल सरोवरके बीच भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है, और इस तीर्थक्षेत्रकी व्यापक मान्यता है । दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय एकमतसे इसी स्थलको भगवान्की निर्वाण-भूमि स्वीकार करते हैं ।

किन्तु इतिहासज्ञ विद्वान् इस स्थानको वास्तविक निर्वाण-भूमि स्वीकार करनेमें अनेक आपत्तियाँ देखते हैं । कल्पसूत्र तथा परिशिष्ट पर्वके अनुसार जिस पावामें भगवान्का निर्वाण हुआ था वह मल्ल नामक क्षत्रियों की राजधानी थी । ये मल्ल वैशालीके वज्जि व लिच्छवि संधमें प्रविष्ट थे, और मगधके एक सत्तात्मक राज्यसे उनका वैर था । अतएव गंगाके दक्षिणवर्ती प्रदेश जहाँ वर्तमान पावापुरी क्षेत्र है वहाँ उनके राज्य होने की कोई सम्भावना नहीं है । इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थों जैसे—दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय आदिसे सिद्ध होता है कि पावाकी स्थिति शाक्य प्रदेशमें थी और वह वैशालीसे पश्चिमकी ओर कुशीनगरसे केवल दश-बारह मीलकी दूरी पर था । शाक्यप्रदेशके साम-ग्राम में जब भगवान् बुढ़का निवास था तभी उनके पास सन्देश पहुँचा था कि अभी अर्थात् एक ही दिन के भीतर पावामें भगवान् महावीरका निर्वाण हुआ है ।

इस सम्बन्धके जो अनेक उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें आये हैं उनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है । इन सब बातोंपर विचार कर इतिहासज्ञ इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि जिस पावापुरीके समीप भगवान्का निर्वाण हुआ था वह यथार्थतः उत्तर-प्रदेश के देवरिया जिलेमें व कुशीनगर के समीप वह पावा नामक ग्राम है जो आजकल सठियाँव (फाजिलनगर) कहलाता है और जहाँ बहुत-से प्राचीन खण्डहर व भग्नावशेष पाये जाते हैं । अतएव ऐतिहासिक दृष्टिसे इस स्थानको स्वीकार कर उसे भगवान् महावीरकी निर्वाण भूमिके योग्य तीर्थक्षेत्र बनाना चाहिए ।

१. निर्वाण भूमि-सम्बन्धी विस्तार पूर्वक विवेचन के लिए देखिए श्री कन्हैयालाल इत 'पावा समीक्षा' (प्रकाशक—अशोक प्रकाशन, कटरा बाजार, छपरा, बिहार १९७२) । हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपिल, खण्ड २ । दि पन ऑफ इम्प्रायल यूनिटी, पृ. ७ मल्ल ।

१३. महावीर समकालीन ऐतिहासिक पुरुष

(क) वैशाली-नरेश चेटक

प्रस्तुत ग्रन्थकी सन्धि पाँचमें तथा संस्कृत उत्तरपुराण (पर्व ७५) में वैशाली के राजा चेटकका वृत्तान्त आया है। चेटकके विषयमें कहा गया है कि वे अति विख्यात, विनीत और परम आर्हंत अर्थात् जिनधर्मावलम्बी थे। उनकी रानीका नाम सुभद्रादेवी था। उनके दस पुत्र हुए—धनवत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, कुम्भोज, अकम्पन, पर्वगत, प्रभञ्जन और प्रभास। इसके सिवाय इनके सात पुत्रियाँ भी थीं। सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियकारिणी था जिसका विवाह कुण्डपुर नरेश सिद्धार्थ से हुआ था और उन्हें ही भगवान् महावीरके माता-पिता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। दूसरी पुत्री थी मृगावती जिसका विवाह वत्सदेशकी राजधानी कौशम्बीके नन्दवंशी राजा हस्तनीके साथ हुआ। तीसरी पुत्री सुप्रभा दशार्ण देश (बिदिशा जिला) की राजधानी हेमकक्षके राजा दशरथको व्याही गयी। चौथी पुत्री प्रभावती कच्छ देशकी रोहका नामक नगरीके राजा उदयनकी रानी हुई। यह अत्यन्त शीलव्रता होनेके कारण शीलवतीके नामसे भी प्रसिद्ध हुई। चेटककी पाँचवीं पुत्रीका नाम ज्येष्ठा था। उसकी याचना गन्धर्व देशके महीपुर नगरवर्ती राजा सात्यकिने की। किन्तु चेटक राजाने किसी कारण यह विवाह-सम्बन्ध उचित नहीं समझा। इसपर क्रुद्ध होकर राजा सात्यकिने चेटक राज्यपर आक्रमण किया। किन्तु वह युद्धमें हार गया और लज्जित होकर उसने दमवर नामक मुनिसे मुनिदीक्षा धारण कर ली। ज्येष्ठा और छठी पुत्री चेलनाका चित्रपट देखकर मगधराज श्रेणिक उनपर मोहित हो गये, और उनकी याचना उन्होंने चेटक नरेशसे की। किन्तु श्रेणिक इस समय आयुमें अधिक हो चुके थे, इस कारण चेटकने उनसे अपनी पुत्रियोंका विवाह स्वीकार नहीं किया। इससे राजा श्रेणिकको बहुत दुःख हुआ। इसकी खर्चा उनके मन्त्रियोंने ज्येष्ठ राजकुमार अभयकुमारसे की। अभयकुमारने एक व्यापारीका बंध वारण कर वैशालीके राजभवनमें प्रवेश किया, और उक्त दोनों कुमारियोंको राजा श्रेणिकका चित्रपट दिखाकर उनपर मोहित कर लिया। उसने सुरंग मार्गसे दोनोंका अपहरण करनेका प्रयत्न किया। चेलमाने आभूषण लानेके बहाने ज्येष्ठाको तो अपने निवास स्थानकी ओर भेज दिया और स्वयं अभयकुमारके साथ निकलकर राजगृह आ गयी, तथा उसका श्रेणिक राजा से विवाह हो गया। उधर जब ज्येष्ठाने देखा कि उसकी बहन उसे घोखा देकर छोड़ गयी तो उसे बड़ी विरक्ति हुई और उसने एक आश्रिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। चेटककी सातवीं पुत्रीका नाम चन्दना

था। एक बार जब वह अपने परिजनोंके साथ उपवनमें फीड़ा कर रही थी तब मनोवेग नामक एक विद्याधरने उसे देखा और वह उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया। उसने छिपकर चन्दनाका अपहरण कर लिया। किन्तु अपनी पत्नी मनोवेगाके कोपसे भयभीत होकर उसने चन्दनाको हरावती नदीके दक्षिण तटवर्ती भूतरमण नामक वनमें छोड़ दिया। वहाँ उसकी भेंट एक ख्यामांक नामक भीलसे हुई। वह उसे सम्मानपूर्वक अपने सिंह नामक भीलराजके पास ले गया। भीलराजने उसे कौशाम्बीके एक धनी व्यापारी सेठ ऋषभसेनके कर्मचारी मिश्रवीरको सौंप दी, और वह उसे अपने सेठके पास ले आया। सेठकी पत्नी भद्राने ईर्ष्यावश अपनी चन्दनी दासी बनाकर रखा। इसी अवस्थामें एक दिन जब उस नगरमें भगवान् महावीरका आगमन हुआ, तब चन्दनाने बड़ी भक्तिसे उन्हें आहार कराया। इस प्रसंगसे कौशाम्बी नगरमें चन्दनाकी ख्याति हुई, और उसके विषयमें उसकी बड़ी बहम रानी भूगावतीको भी खबर लगी। वह अपने पुत्र राजकुमार उदयनके साथ सेठके घर आयी, और चन्दनाको अपने साथ ले गयी। फिर चन्दनाने वैराग्य भावसे महावीर भगवान्की शरणमें जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली, और अन्ततः वही भगवान्के आर्यिका-संघकी अग्रणी हुई।

वैशालीनरेश चेटक तथा उनके गृह-परिवार व सम्पत्तिका इतना वर्णन जैन-पुराणोंमें पाया जाता है। इरासे स्पष्ट हो जाता है कि वैशालीके नरेश चेटक महावीरके नाना थे, मगधनरेश श्रेणिक तथा कौशाम्बीके राजा शतानीक उनके मातृ-स्वसा-पति (मौसिया) थे, एवं कौशाम्बीनरेश शतानीकके पुत्र उनके मातृ-स्वसापुत्र (मौसयाते भाई) थे।

(ख) मगध-नरेश श्रेणिक-बिम्बिसार

मगध देशके राजा श्रेणिकका भगवान् महावीरसे दीर्घकालीन और धनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। बहुत-सी जैन पौराणिक परम्परा तो श्रेणिकके प्रश्न और महावीर अथवा उनके प्रमुख गणधर इन्द्रभूतिके उत्तरसे ही प्रारम्भ होती है। उनका बहुत-सा वृत्तान्त प्रस्तुत ग्रन्थ की सन्धि छहसे ग्यारह तक पाया जायेगा। इस नरेशकी ऐतिहासिकतामें कहीं कोई सन्देह नहीं है। जैन ग्रन्थोंके अतिरिक्त बौद्ध साहित्यमें एवं वैदिक परम्पराके पुराणोंमें भी इनका वृत्तान्त व उल्लेख पाया जाता है। दिगम्बर जैन परम्परामें तो उनका उल्लेख केवल श्रेणिक नामसे पाया जाता है, किन्तु उन्हें भिम्मा अर्थात् भेरी बजानेकी भी अभिरुचि थी (देखिए सन्धि ७, २) और इस कारण उनका नाम भिम्भसार अथवा भम्भसार भी प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें अधिकतर इसी नामसे इनका उल्लेख

किया गया है। इसी शब्दका अपभ्रंश रूप बिम्बिसार या बिम्बसार प्रतीत होता है, और बौद्ध परम्परामें श्रेणिकके साथ-साथ अथवा पूषक् रूपमें यही नाम उल्लिखित हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ उदान अट्ठकथा १०४ के अनुसार बिम्बि सुवर्णका पुत्र नाम है, यौत राजाका भती १८ के साथ-साथ इन्हींके कारण उसका बिम्बिसार नाम पड़ा। एक सिद्धतीय परम्परा ऐसी भी है कि इस राजाकी माताका नाम बिम्बि था और इसी कारण उसका नाम बिम्बिसार पड़ा। किन्तु जान पड़ता है कि ये व्युत्पत्तियाँ उक्त नामपर-से कल्पित की गयी हैं। श्रेणिक नामकी भी अनेक प्रकारसे व्युत्पत्ति की गयी है। हेमचन्द्र कृत अभिधान-चिन्तामणिमें 'श्रेणोः कारयति श्रेणिको ममधेश्वरः' इस प्रकार जो श्रेणियोंकी स्थापना करे वह श्रेणिक, यह व्युत्पत्ति बतलायी गयी है। बौद्ध परम्पराके एक विनय पिटककी प्रतिमें यह भी कहा पाया जाता है कि चूँकि बिम्बिसारको उसके पिताने अठारह श्रेणियोंमें अवतरित किया था, अर्थात् इनका स्वामी बनाया था, इस कारणसे उसकी श्रेणिक नामसे प्रसिद्धि हुई। अर्द्धमागधी जम्बूद्वीप पण्णत्तिमें ९ नाह और ९ कारु ऐसी अठारह श्रेणियोंके नाम भी गिनाये गये हैं। ती नाह है—कुम्हार, पटवा, स्वर्णकार, सूतकार, गन्धर्व (संगीतकार), कासवम्भ, मालाकार, कच्छकार और सम्भूलि। तथा नौ कारु हैं—चर्मकार, यन्त्रपीडक, गच्छियाँ, छिम्पी, कंसार, सेवक, खाल, भिल्ल और धीवर। वह भी सम्भव है कि प्राकृत ग्रन्थोंमें इनका नाम जो 'सेनीय' पाया जाता है उसका अभिप्राय सैनिक या सेनापतिसे रहा हो और उसका संस्कृत रूपान्तर भ्रमवश श्रेणिक हो गया हो।

प्रस्तुत ग्रन्थके अनुसार मगध देश राजगृह नगरके राजा प्रश्रेणिक या उप-श्रेणिककी एक रानी चिलातदेवी (किरातदेवी) से चिलातपुत्र या किरातपुत्र नामक कुमार उत्पन्न हुआ। उसने उज्जैनीके राजा प्रद्योतको छलसे बन्दी बनाकर अपने पिताके सम्मुख उपस्थित कर दिया। इससे पूर्व उद्योतके विरुद्ध राजाने जो औद्ययनको भेजा था उसे उद्योतने परास्त कर अपना बन्दी बना लिया था। चिलातपुत्रकी सफलतासे उसके पिताको बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर उसका राज्याभिषेक कर दिया। किन्तु वह राज्य-कार्यमें सफल नहीं हुआ और अनीतिपर चलने लगा। अतः मन्त्रियों और सामन्तों-ने निर्वासित राजकुमार श्रेणिकको कांचीपुरसे बुलवाया। श्रेणिकने आकर किरातपुत्रको पराजित कर राज्यसे निकाल दिया। चिलातपुत्र बनमें बल गया और वहाँ ठगों और लुटेरोंका नाथक बन गया। तब पुनः एक बार श्रेणिकने उसे

परास्त किया। अन्ततः चिलातपुत्रने विरक्त होकर मुनि-दीक्षा धारण कर ली। इसी अवस्थामें वह एक श्रृगालोका भक्ष्य बनकर स्वर्गवासी हुआ।

श्रेणिकका जन्म उपश्रेणिककी दूसरी पत्नी सुप्रभादेवीसे हुआ था। वह बहुत विलक्षण-बुद्धि था। पिता द्वारा जो राज्यकी योग्यता जानने हेतु राजकुमारोंकी परीक्षा की गयी उसमें श्रेणिक ही सफल हुआ। तथापि राजकुमारोंमें वैर उत्पन्न होनेके भयसे उसने श्रेणिकको राज्यसे निर्वासित कर दिया। पहले तो श्रेणिक मन्दग्राममें पहुँचा, और फिर वहाँसे भी परिभ्रमण करता हुआ तथा अपनी बुद्धि और साहसका चमत्कार दिखाता हुआ कांचीपुरमें पहुँच गया। मगधमें राजा चिलातपुत्रके अन्यायसे त्रस्त होकर मन्त्रियोंने श्रेणिकको आमन्त्रित किया और उसे मगधका राजा बनाया।

एक दिन राजा अपनी राजधानीके निकट वनमें आखेटके लिए गया। वहाँ उसने एक मुनिको ध्यानारुद्ध देखकर उसे एक अपशकुन समझा और क्रुद्ध होकर उनपर अपने शिकारी कुत्तोंको छोड़ दिया। किन्तु वे कुत्ते भी मुनिके प्रभावसे शान्त हो गये और राजाके बाण भी उन्हें पुष्पके समान कोमल होकर लगे। तब राजाने अपना क्रोध निकालनेके लिए एक मृत्त रूप मुनिके गलेमें डाल दिया। इस घोर पापसे श्रेणिकको सप्तम नरकका आयु-बन्ध हो गया। किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा इतने उपसर्ग किये जानेपर भी उन मुनिराजके लेशमात्र भी राग-द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ, तब उनके मनोगत भावोंमें परिवर्तन हो गया। जब मुनिने देखा कि राजाका मन शान्त हो गया है, तब उन्होंने अपनी मधुर वाणीसे उन्हें आशीर्वाद दिया और धर्मोपदेश भी प्रदान किया। वस, यहीं राजा श्रेणिकका मिथ्यात्व भाव दूर हो गया और उन्हें श्रायिक सम्बन्धत्वकी प्राप्ति हो गयी। वह मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रसन्नतासे घर लौटे।

एक दिन राजा श्रेणिकको समाचार मिला कि विपुलाचल पर्वतपर भगवान् महावीरका आगमन हुआ है। इसपर राजा भक्तिपूर्वक वहाँ गया और उसने भगवान्की वन्दना-स्तुति की। इस धर्म-भावनाके प्रभावसे उनके सम्बन्धत्वकी परिपूर्ण होकर सप्तम नरककी आयु बटकर प्रथम नरककी शेष रही, और उसे तीर्थकर नामकर्मका बन्ध भी हो गया। इस अवसरपर राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन्, यद्यपि मेरे मनमें जैन मतके प्रति इतनी महान् श्रद्धा हो गयी है, तथापि व्रत-ग्रहण करनेकी मेरी प्रवृत्ति क्यों नहीं होती? इसका गणधरने उत्तर दिया कि पहले तुम्हारी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति रही है व गाढ़ मिथ्यात्वका उदय रहा है। तुमने दुश्चरित्र भी किया है और महान् आरम्भ भी। इससे जो तीव्र पाप उत्पन्न हुआ उससे तुम्हारी नरककी आयु बंध चुकी है।

देवायुको छोड़कर अन्य किसी भी गतिकी आयु जिसने बाँध ली है उसमें व्रत-ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रहती । किन्तु ऐसा जीव सम्यग्दर्शन धारण कर सकता है । यही कारण है कि तुम सम्यक्त्वही तो हो गये, किन्तु व्रत-ग्रहण नहीं कर पा रहे ।

सर्वं निधाय तन्वित्ते श्रद्धाभून्महती मते ।
जैने कुतस्तथापि स्यान्न मे व्रत-परिग्रहः ॥
इत्यनुश्रेणिकप्रवनादवादीद् गणनायकः ।
भोग-संजननाद्वाढ-मिथ्यात्वानुभवोदयात् ॥
दुश्चरित्रान्महारम्भात्संचित्यैर्ना निकाचितम् ।
नारकं बद्धवानामुस्त्वं प्रागेवात्र जन्मनि ॥
बद्धदेवामुषोऽन्यायुर्नाङ्गी स्वीकुरुते व्रतम् ।
श्रद्धानं तु समाधत्ते तस्मात्त्वं नाग्रहीव्रतम् ॥

(उत्तरपुराण ७४, ४२३-२३)

इसी समय गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को यह भी बतला दिया कि भगवान् महावीर के निर्वाण होने पर जब चतुर्थकाल की अवधि केवल तीन वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रह जायेगी तभी उसकी मृत्यु होगी । श्रेणिक इतना दृढ़ सम्यक्त्वही हो गया था कि सुरेन्द्रने भी उसकी प्रशंसा की । किन्तु इसपर एक देवको विश्वास नहीं हुआ और वह राजाकी परीक्षा करने आया । जब राजा एक मार्गसे कहीं जा रहा था तब उस देवने मुनिका भेष बनाया और वह जाल हाथमें लेकर मछलियाँ पकड़ने लगा । राजाने आकर मुनिकी वन्दना की, और प्रार्थना की कि मैं आपका दास उपस्थित हूँ तब आप क्यों यह अघर्म-कार्य कर रहे हैं । यदि मछलियोंकी आवश्यकता ही है तो मैं मछलियाँ पकड़ देता हूँ । देवने कहा, नहीं-नहीं, अब मुझे इससे अधिक मछलियोंकी आवश्यकता नहीं । यह वृत्तान्त नगरमें फैल गया, और लोग जैन-धर्मकी निन्दा करने लगे । तब राजा श्रेणिकने एक दुष्टान्त उपस्थित किया । उन्होंने अपनी सभाके राजपुत्रों-को जीवनवृत्ति सम्बन्धी लेख अपनी मुद्रासे मुद्रित कर और उसे मलावलित कर प्रदान किया । उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से इस लेखको अपने मस्तकपर चढ़ाकर स्वीकार किया । तब राजाने उनसे पूछा कि इन मलिन लेखों को तुमने अपने मस्तकपर क्यों चढ़ाया ? उन्होंने उत्तर दिया कि जिस प्रकार सचेतन जीव मलिन शरीरसे लिस होते हुए भी वन्दनीय है, उसी प्रकार आपका यह लेख मलिन होते हुए भी हमारे लिए पूज्य है । तब राजाने हँसकर उन्हें बतलाया कि

इसी प्रकार धर्म-मुद्राके धारक मुनियों में यदि कोई दोष भी हो, तो उनसे घृणा नहीं, किन्तु उनकी विनय ही करना चाहिए, और विनम्रतासे उन्हें दोषोंसे मुक्त कराना चाहिए। राजाकी ऐसी धर्म-श्रद्धाको प्रत्यक्ष देखकर वह देव बहुत प्रसन्न हुआ और राजाको एक उत्तम हार देकर स्वर्गलोकको चला गया। यह कथानक इस बातका प्रमाण है कि जबसे श्रेणिकने जैन-धर्म स्वीकार किया तबसे उनकी धार्मिक श्रद्धा उत्तरोत्तर दृढ़ होती गयी और वे उससे कभी विचलित नहीं हुए।

(ग) श्रेणिक-सुत अभयकुमार

श्रेणिक जब राजकुमार ही थे और राज्यसे निर्वासित होकर चिलातपुत्रके राज्यकालमें कांचीपुरमें निवास कर रहे थे तब उनका विवाह वहाँके एक द्विजकी कन्या अभयमतीसे हो गया था। उससे उनके अभयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जो अत्यन्त विलक्षण-बुद्धि था। उसने ही उपाय करके अपने पिताका विवाह उनको इच्छानुसार चेलनादेवीसे कराया। वह भी श्रेणिकके साथ-साथ भगवान् महावीरके समवसरणमें गया था, और न केवल दृढ़-सम्यक्त्वो, किन्तु धर्मका अच्छा ज्ञाता बन गया था। यहाँतक कि स्वयं राजा श्रेणिकने उससे भी धर्मका स्वरूप समझनेका प्रयत्न किया था। अन्ततः अभयकुमारने भी मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली, और वे मोक्षगामी हुए। (उत्तरपुराण ७४, ५२६-२७ आदि)

(घ) श्रेणिक-सुत वारिषेण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राजा श्रेणिकका चेलनादेवीसे विवाह उनकी ढलती हुई अवस्थामें उनके ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमारके प्रयत्नसे ही हुआ था। चेलनाने वारिषेण नामक पुत्रको जन्म दिया। वह बाल्यावस्था में ही धार्मिक प्रकृति का था, और उत्तम धातुओंके नियमानुसार श्मशानमें जाकर प्रतिमायोग किया करता था। एक बार शिशुचंदर नामक अंजनसिद्ध चोरने अपनी प्रेयसी गणिकामुन्दरीको प्रसन्न करनेके लिए राजभवनमें प्रविष्ट होकर चेलनादेवीके हारका अपहरण किया। किन्तु उसे वह अपनी प्रियाके पास तक नहीं ले जा सका। राजपुरुष उस चन्द्रहास हारकी चमकको देखते हुए उसका पीछा करने लगे। यह बात उस चोरने जान ली, और वह श्मशानमें ध्यानावस्थ में वारिषेण कुमारके चरणोंमें उस हारको फेंककर भाग गया। राज-सेवकोंने इसकी सूचना राजाको दी। राजाने वारिषेणकी ही खोज जानकर क्रोधवश उसे मार डालनेकी आज्ञा दे दी। किन्तु वारिषेणके धर्म-प्रभावसे उसपर राजपुरुषोंके अस्त्र-शस्त्र नहीं चले। उसका वह दिव्य प्रभाव देखकर राजाने उन्हें मनाकर राज-

महलमें लानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे नहीं आये और महाव्रती मुनि हो गये। उन्होंने पलासखेड़ नामक ग्राममें भिक्षा-निमित्त जाकर अपने एक बालसखाका भी सम्बोधन किया और उसे भी मुनि बना लिया। एक बार उसका मन पुनः अपनी पत्नीकी ओर चलायमान हुआ। किन्तु बारिषेणने उसे अपनी माता खेलनाके महलमें ले जाकर अपनी निरासक्ति भावनाके द्वारा पुनः मुनिव्रतमें दुड़ कर दिया।

(ड) श्रेणिक-सुत गजकुमार

राजा श्रेणिककी एक अन्य पत्नी धनश्री नामक थी। उसे जब पाँच मासका गर्भ था तब उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि आकाश मेघाच्छादित हो, मन्द-मन्द वृष्टि हो रही हो, तथा वह अपने पतिके साथ हाथीपर बैठकर परिजनोंके सहित महोत्सवके साथ वनमें जाकर क्रीडा करे। उस समय वर्षाकाल न होते हुए भी अभयकुमारने अपने एक विद्याधर मित्रकी सहायतासे अपनी विमाताका यह दोहला सम्पन्न कराया। यथासमय रानी धनश्रीने गजकुमार नामक पुत्रको जन्म दिया। जब वह युवक हुआ तब एक दिन उसने भगवान् महावीर की शरणमें जाकर धर्मोपदेश सुना और दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार गजकुमार मुनि कलिंग देशमें जा पहुँचे और वहाँकी राजधानी दन्तीपुरकी पश्चिम दिशामें एक शिलापर विराजमान होकर आत्मापन योग करने लगे। वहाँके राजाको ऐसे योगका कोई ज्ञान नहीं था। अतः उसने अपने मन्त्रीसे पूछा कि यह पुरुष ऐसा आताप क्यों सह रहा है? उनका मन्त्री बुद्धदास जैन-धर्म-विरोधी था। अतः उसने राजाको सुझाया कि इस पुरुषको बात रोग हो गया है और वह अपने शरीरमें गरमी लानेके लिए ऐसा कर रहा है। राजाने कष्टाभावसे पूछा, इसको इस व्याधिको कैसे दूर किया जाये? मन्त्रीने उपाय बताया कि जब यह अनाप पुरुष नगरमें भिक्षा माँगने जाये, तब उसके बैठनेकी शिलाको अग्निसे खूब तपा दिया जाये जिससे उसके ताप द्वारा उसपर बैठनेवालेकी प्रमंजन वायु उपशान्त हो जायेगी। राजाकी आज्ञासे वैसा ही किया गया। परिणाम यह हुआ कि जब गजकुमार मुनि भिक्षासे लौटकर उस शिलापर विराजमान हुए तब वे उसकी तीव्र तापके उपसर्गको सहकर भोक्षगामी हो गये। पश्चात् वहाँ देवोंका आगमन हुआ और वह मन्त्री, राजा तथा अन्य सहस्रों जन धर्ममें दीक्षित हुए।

(च) कौशाम्बीनरेश शतानीक व उदयन तथा

उज्जैनीनृप चण्डप्रद्योत

चन्दवाके वृत्तान्तोंमें आया है कि वैशालीनरेश चेटककी सात पुत्रियोंमेंसे एक मृगावती कौशाम्बीके सौमवंशी नरेश शतानीकसे ब्याही गयी थी। यह

राजधानी इलाहाबादसे कोई ३५ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर वहीं थी जहाँ अब कोसम नामका ग्राम है। जब महावीर कौशाम्बी आये और चन्दनाने उन्हें आहार दिया, तब रानी मृगावतीने भी आकर अपनी उस कनिष्ठ भगिनीका अभिनन्दन किया। शतानोक के पुत्र वे उदयन थे जिनका विवाह उज्जैनीनरेश चण्डप्रद्योतकी पुत्री वासवदत्तासे हुआ था। बौद्ध साहित्यिक परम्परानुसार उदयनका और बुद्धका जन्म एक ही दिन हुआ था। तथा एक सुदृढ़ जैन परम्परा यह है कि जिस रात्रि प्रद्योतके मरणके पश्चात् उनके पुत्र पालकका राज्याभिषेक हुआ उसी रात्रि महावीरका निर्वाण हुआ था। इस प्रकार ये उल्लेख उक्त दोनों महापुरुषोंके समसामयिकत्व तथा तात्कालिक राजनैतिक स्थितियोंपर उपयोगी प्रकाश डालते हैं।

१४. महावीर-जीवनचरित्र विषयक साहित्य का विकास

(छ) प्राकृतमें महावीर-साहित्य

भगवान् महावीरका निर्वाण ई. सन् ५२७ वर्ष पूर्व हुआ और उसी समयसे उनके जीवन-चरित्र सम्बन्धी जानकारी संगृहीत करना आरम्भ हो गया। भगवान्के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम थे जो धवलके रचयिता वीरसेनके अनुसार चारों वेदों और छहों अंगोंके ज्ञाता शीलवान् उत्तम ब्राह्मण थे। ऐसे विद्वान् शिष्यके लिए स्वाभाविक था कि वे अपने गुरुके जीवन और उपदेशोंको सुव्यवस्थित रूपसे संगृहीत करें। उन्होंने यह सब सामग्री बारह अंगोंमें संकलित की जिसे द्वादश गणि-पिटक भी कहा गया है। इनके बारहवें अंग दृष्टिवादमें एक अधिकार प्रथमानुयोग भी था जिसमें समस्त तीर्थंकरों व चक्रवर्तियों आदि महापुरुषोंकी वंशवलिओंका पौराणिक विवरण संग्रह किया गया जिसमें तीर्थंकर महावीर और उनके नाथ या ज्ञातृवंशका इतिहास भी सम्मिलित था।

दुर्भाग्यतः इन्द्रभूति गौतम द्वारा संगृहीत वह साहित्य अब अप्राप्य है। किन्तु उसका संक्षिप्त विवरण समस्त उपलब्ध अद्वैतागधी साहित्यमें बिखरा हुआ पाया जाता है। समव्यास नामक चतुर्थ अंगमें चौबीसों तीर्थंकरोंके माता-पिता, जन्म-स्थान, प्रव्रज्या-स्थान, शिष्य-वर्ग, आहार-दाताओं आदिका परिचय कराया गया है। प्रथम श्रुतांग आचारांगमें महावीरकी तपस्याका बहुत मार्मिक वर्णन पाया जाता है। पाँचवें श्रुतांग व्याख्या-प्रज्ञप्तिमें जो सहस्रों प्रश्नोत्तर महावीर और गौतमके बीच हुए प्रथित हैं उनमें उनके जीवन व तात्कालिक अन्य घटनाओंकी अनेक झलकें मिलती हैं। उनके समयमें पार्श्वपत्यों अर्थात् पार्श्वनाथके अनुयायियोंका बाहुल्य था तथा आजीवक संप्रदायके संस्थापक मंखलि-गोशाल उनके

सम-सामयिक थे। उसी कालमें मगध और वैशालीके राज्योंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ था जिसमें महाशिला-कंटक वे रघु-मुसल नामक यन्त्र-चालित शस्त्रोंका उपयोग किया गया इत्यादि। सातवें अंग उपासकाध्ययनमें महावीरके जीवनसे सम्बद्ध वैशाली ज्ञातु-खण्डवन कोल्लाग सन्निवेश, कर्मरग्राम, बाणिज्यग्राम आदि स्थानोंके ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे उनके स्थान-निर्णयमें सहायता मिलती है। नवें श्रुतांग अनुत्तरौपपातिकमें तीर्थकरके सम-सामयिक मगध-नरेश श्रेणिककी चेलना, धारिणी व नन्दा नामक रानियों तथा उनके तेवीस राजकुमारोंके दीक्षित होनेके उल्लेख हैं। मूलसूत्र उत्तराध्ययन व दशवैकालिकमें महावीरके मूल दार्शनिक, नैतिक व आचारसम्बन्धी विचारोंका विस्तारसे परिचय प्राप्त होता है। कल्पसूत्रमें महावीरका व्यवस्थित रीतिसे जीवन-चरित्र मिलता है। यह समस्त साहित्य उत्तरकालीन अर्द्धमागधी भाषामें है।

शीरसेनी प्राकृतमें चतुर्वृषभ कृत तिलोय-पण्णत्ति (त्रिलोक-प्रज्ञप्ति) ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें प्राकृत गाथाओंमें हमें तीर्थकरों व अन्य शालाका-पुरुषोंके चरित्र नामावली-निबद्ध प्राप्त होते हैं। इसमें महावीरके जीवन-विषयक प्रायः समस्त बातोंकी जानकारी संक्षेपमें स्मरण रखने योग्य रीतिसे मिल जाती है। (सोलापुर, १९५२)

इसी नामावली-निबद्ध सामग्रीके आधारपर महाराष्ट्री प्राकृतके आदि महा-काव्य पउम-चरियमें महावीरका संक्षिप्त जीवन-चरित्र, रामचरित्रकी प्रस्तावनाके रूपमें प्रस्तुत किया गया है (भावनगर, १९१४)। संघदास और धर्मदास गणी कृत असुदेव-हिण्डी (४-५वीं शती) प्राकृत कथा साहित्यका बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें भी अनेक तीर्थकरोंके जीवन-चरित्र प्रसंगवश आये हैं जिनमें वर्धमान स्वामीका भी है (भावनगर, १९३०-३१)। शीर्लाक कृत चउपन्न-महा-पुरिस-चरियं (वि. सं. ९२५) में भी महावीरका जीवन-चरित्र प्राकृत गद्यमें वर्णित है (वाराणसी १९६१)।

मद्रेश्वर कृत कहावलि (१२वीं शती) में सभी त्रेसठ शालाकापुरुषोंके चरित्र सरल प्राकृत गद्यमें वर्णित हैं (मा. ओ. सी.)। पूर्णतः स्वतन्त्र प्रबन्ध रूपसे महावीरका चरित्र गुणचन्द्र सूरि द्वारा महावीर-चरियमें वर्णित है (वि. सं. ११३९)। इसमें आठ प्रस्ताव हैं जिनमें प्रथम चारमें महावीरके मरीचि आदि पूर्व भवोंका विस्तारसे वर्णन है (बम्बई १९२९)। गुणचन्द्रके ही सम-सामयिक देवेन्द्र अपरनाम नेमिचन्द्र सूरिने भी पूर्णतः प्राकृत पद्यबद्ध महावीर-चरियकी रचना की (वि. सं. ११४१)। इसमें मरीचिसे लेकर महावीर तक छब्बीस भवोंका वर्णन है जिसकी कुल पद्य-संख्या लगभग २४०० है (भावनगर, वि. सं.

११७३)। इनसे कुछ ही समय पश्चात् (वि. सं. ११६८ के लगभग) देवभद्र मणीने भी महावीर-चरित्रकी रचना की (अहमदाबाद, १९४५)।

(ज) संस्कृतमें महावीर-साहित्य

सत्त्वार्थसूत्र-जैसी सैद्धान्तिक रचनाओंको छोड़ जैन साहित्य सृजनमें संस्कृत भाषाका उपयोग अपेक्षाकृत बहुत पीछे किया गया। (हम जानते हैं कि सिद्धसेन विशाकरने अपनी पाँच स्तुतिपदाँ भगवान् महावीरको ही उद्देशित करके लिखी हैं। आरम्भकालीन काव्यशैलीमें लिखित जटिल या जटाचार्यके 'वराणचरित' तथा रविशेणके 'पद्मपुराण' (द. स. ६७६) की ओर संस्कृत जैन साहित्यमें हम निर्देश कर सकते हैं। ये दोनों 'कुशल्यमाला' (ईसाके ७७९) से भी पूर्व-कालीन हैं।) तीर्थंकरोंके जीवन-चरित्र पर महापुराण नामक सर्वांग-सम्पूर्ण रचना जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र द्वारा शक सं. ८२० के लगभग समाप्त की गयी थी। इसके प्रथम ४७ पर्व आदिपुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरतका जीवन-चरित्र वर्णित है। ४८ से ७६ तकके पर्व उत्तरपुराण कहलाता है जिसकी पूरी रचना गुणभद्र-कृत है। और उसमें शेष तेवीस तीर्थंकरों व अन्य शालाकापुरुषोंके जीवनवृत्त हैं। इनमें तीर्थंकर महावीरका चरित्र अन्तिम तीन सर्गोंमें (७४ से ७६ तक) सुन्दर पद्योंमें है जिसकी कुल पद्य-संख्या ५४९ + ६९१ + ५७८ = १८१८ है (वाराणसी, १९५४)। लगभग पौने तीन सौ वर्ष पश्चात् ऐसे ही एक विशाल त्रिषष्टि-शालाका-पुरुष-चरितकी रचना हेमचन्द्राचार्यने १० पर्वोंमें की जिसका अन्तिम पर्व महावीर-चरित्रविषयक है (भावनगर, १९१३)। एक महापुरुष-चरित स्वोपज्ञ टीका सहित मेरुतुंग द्वारा रचा गया जिसके पाँच सर्गोंमें क्रमशः ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीरके चरित्र वर्णित हैं। यह रचना लगभग १३०० ई. की है। काव्यकी दृष्टिसे शक सं. ९१० में असग द्वारा १८ सर्गों में रचा गया वर्धमान चरित है (सोलापुर १९३१)। किन्तु यहाँ भी प्रथम सोलह सर्गोंमें महावीरके पूर्व भवोंका वर्णन है और उनका जीवन-वृत्त अन्तिम दो सर्गोंमें। सकलकीर्ति-कृत वर्धमान पुराणमें १९ सर्ग हैं और उसकी रचना वि. सं. १५१८ में हुई। पद्मनन्दि, केशव और वाणीवत्सल द्वारा भी संस्कृतमें महावीर चरित्र लिखे जानेके उल्लेख पाये जाते हैं।

(झ) महावीर-जीवनपर अपभ्रंश साहित्य

समस्त तीर्थंकरों व अन्य शालाकापुरुषोंके चरित्र पर अपभ्रंशमें विशाल और ध्रुव तथा सर्व काव्य-गुणोंसे सम्पन्न रचना पुष्पदन्त कृत महापुराण है (शक सं०

हैं। उनका प्राचीनतम बौद्ध साहित्यसे भी मेल खाता है। जिस प्रकार बौद्ध साहित्य त्रिपिटक कहलाता है उसी प्रकार यह जैन साहित्य गणिपिटकके नामसे उल्लिखित पाया जाता है।

यह समस्त साहित्य अंगप्रविष्ट कहा गया है। इसके अतिरिक्त मुनियोंके आचार व क्रियाकलापका विस्तारसे वर्णन अंगबाह्य नामक चौदह प्रकारकी रचनाओंमें पाया जाता है जो इस प्रकार हैं—

१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. अन्तर्या ४. प्रतिक्रमण, ५. वैतथिक, ६. कृतिकर्म, ७. दशवैकालिक, ८. उत्तराध्ययन, ९. कल्पव्यवहार, १०. कल्पाकल्प, ११. महाकल्प, १२. पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक, १४. निषिद्धिका।

इन नामोंसे ही स्पष्ट है कि इन रचनाओंका विषय धार्मिक साधनाओं और विशेषतः मुनियोंकी क्रियाओंसे सम्बन्ध रखता है। यद्यपि ये चौदह रचनाएँ अपने प्राचीन रूपमें अलग-अलग नहीं पायी जातीं, तथापि इनका नामाना ग्रन्थोंमें समावेश है और वे मुनियों द्वारा अब भी उपयोगमें लायी जाती हैं।

वल्लभीपुरमें मुनि-संघ द्वारा जो साहित्य-संकलन किया गया उसमें उक्त प्रथम ग्यारह अंगोंके अतिरिक्त औपपातिक, राघ-पसेणिय आदि १२ उपांग; निशीय, महानिशीय आदि ६ छेदसूत्र; उत्तराध्ययन, आवश्यक आदि ४ मूलसूत्र; चतुःशरण, आशुर-प्रत्याख्यान आदि दश प्रकीर्णक, तथा अनुयोगद्वार और नन्दी ये दो जूलिका-सूत्र भी सम्मिलित हो गये जिससे समस्त अर्द्धमागधी आगम-ग्रन्थोंकी संख्या ४५ हो गयी जिसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा धार्मिक मान्यता प्राप्त है। यह समस्त साहित्य अपनी भाषा व शैली तथा दार्शनिक व ऐतिहासिक सामग्रिके लिए पालि साहित्यके समान ही महत्त्वपूर्ण है।

७. महावीर-निर्वाण-काल

भगवान् महावीरका निर्वाण कब हुआ इसके सम्बन्ध में यह तो स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि यह घटना कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम चरणमें अर्थात् अमावस्याके प्रातःकालसे पूर्व घटित हुई और उनके निर्वाणोत्सवकी देवी तथा मनुष्योंने दीपावलीके रूपमें मनाया। तदनुसार आजतक कार्तिककी दीपावली-

१. सनवायांग सूत्र २११-२२७। पट्खण्डागम १, १, २; टीका भाग १, पृष्ठ ९६ आदि।
विंटरनिद्वज : इंडियन लिटरेचर भाग २ जैन लिटरेचर। कापड़िया : हिस्ट्री ऑफ दि जैन केनानिकल लिटरेचर। जगदीशचन्द्र : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३३ आदि।
होरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ५५ आदि। नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १५७ आदि।

से उनका निर्वाण संवत् माना जाता है जिसका इस समय सन् १९७१-७२ में चौबीस सौ अठान्नवे (२४९८) वाँ वर्ष प्रचलित है तथा दो वर्ष पश्चात् पूरे पच्चीस सौ वर्ष होनेपर एक महामहोत्सव मनानेकी योजना चल रही है । किन्तु इस संवत्सरका प्रचलन अपेक्षाकृत बहुत प्राचीन नहीं और महावीरके समयमें तथा उसके दीर्घकाल पश्चात् तथा धर्मोत्पत्ति के उल्लेखका प्रचार नहीं था । पश्चात्कालीन ग्रन्थोंमें जो कालसम्बन्धी उल्लेख पाये जाते हैं उनमें कहीं-कहीं परस्पर कुछ विरोध पाया जाता है और कहीं अन्य साहित्यिक उल्लेखों तथा ऐतिहासिक घटनाओंसे मेल नहीं खाता । इससे निर्वाण कालके सम्बन्धमें आधुनिक विद्वानोंके बीच बहुत-सा मतभेद उत्पन्न हो गया है । एक ओर जर्मन विद्वान् डॉ. याकोबीने महावीर निर्वाण का समय ई. पू. चार सौ सत्तहत्तर (४७७) माना है । इसका आधार यह है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक ई. पू. ३२२ (तीन सौ बाईस) में हुआ और हेमचन्द्र-कृत परिशिष्ट पर्व (८-३३९) के अनुसार यह अभिषेक महावीरके निर्वाणसे १५५ (एक सौ पचपन) वर्ष पश्चात् हुआ था । इस प्रकार महावीर निर्वाण $३२२ + १५५ = ४७७$ वर्ष पूर्व सिद्ध हुआ । किन्तु दूसरी ओर डॉ. काशीप्रसाद जायसवालका मत है कि बौद्धोंकी सिंहल-देशीय परम्परामें बुद्धका निर्वाण ई. पू. ५४४ माना गया है । तथा मज्झिमनिकायके साम-गाम सूत्रमें व त्रिपिटकमें अन्यत्र भी इस बातका उल्लेख है कि भगवान् बुद्धको अपने एक अनुयायी द्वारा यह समाचार मिला था कि पात्रामें महावीरका निर्वाण हो गया । ऐसी भी धारणा रही है कि इसके दो वर्ष पश्चात् बुद्धका निर्वाण हुआ । अतएव यह सिद्ध हुआ कि महावीर-निर्वाणका काल ई. पू. ५४६ है । किन्तु विचार करनेसे ये दोनों अभिमत प्रमाणित नहीं होते । जैन साहित्यिक तथा ऐतिहासिक एक बुद्ध और प्राचीन परम्परा है जो वीर-निर्वाण को विक्रम संवत् से ४७० (चार सौ सत्तर) वर्ष पूर्व तथा शक संवत् से ६०५ (छह सौ पाँच) वर्ष पूर्व हुआ मानती है । इस परम्परा का ऐतिहासिक क्रम इस प्रकार है : जिस रात्रिको वीर भगवान्का निर्वाण हुआ उसी रात्रिको उज्जैनके पालक राजाका अभिषेक हुआ । पालकने ६० वर्ष राज्य किया । तत्पश्चात् तन्दवंशीय राजाओंने १५५ वर्ष, मौर्यवंशने १०८ वर्ष, पुष्यमित्रने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्रने ६० वर्ष, नहुषान (नहुषान नरबाहुन या नहुसेन) ने ४० वर्ष, गर्दभिल्लने १३ वर्ष और एक राजाने ४ वर्ष राज्य किया, और तत्पश्चात् विक्रम-काल प्रारम्भ हुआ । इस प्रकार वीरनिर्वाणसे $६० + १५५ + १०८ + ३० + ६० + ४० + १३ + ४ = ४७०$ वर्ष विक्रम संवत्के प्रारम्भ तक सिद्ध हुए । डॉ. याकोबीने हेमचन्द्र आचार्यके जिस मतके आधारपर वीर-निर्वाण

और चन्द्रगुप्त मौर्यके बीच १५५ वर्षका अन्तर माना है वह वस्तुतः सही नहीं है ! डॉ. पाकोबीने हेमचन्द्रके परिशिष्ट पर्वका सम्पादन किया है और उन्होंने अपना यह मत भी प्रकट किया है कि उक्त कृति की रचनामें शीघ्रताके कारण अनेक भूलें रह गयी हैं। इन भूलोंमें एक यह भी है कि वीर-निर्वाण और चन्द्रगुप्तका काल अंकित करते समय वे पालक राजाका ६० वर्षका काल भूल गये जिसे जोड़नेसे वह अन्तर १५५ वर्ष नहीं किन्तु २१५ वर्षका हो जाता है। इस भूलका प्रमाण स्वयं हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राजा कुमारपालके कालमें पाया जाता है। उनके द्वारा रचित त्रिषष्टि-शलाका-गुह्य-चरित (पर्व १०, सर्ग १२, श्लोक ४५-४६) में कहा गया है कि वीर-निर्वाणसे १६६९ वर्ष पश्चात् कुमारपाल राजा हुए। अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध है कि कुमारपालका राज्याभिषेक ११४२ ई. में हुआ था। अतएव इसके अनुसार वीर-निर्वाणका काल $१६६९ - ११४२ = ५२७$ ई. पू. सिद्ध हुआ।

डॉ. जायसवालने जो बुद्ध-निर्वाणका काल सिंहलीय परम्पराके आधारसे ई. पू. ५४४ मान लिया है वह भी अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता। उससे अधिक प्राचीन सिंहलीय परम्पराके अनुसार मौर्य सम्राट् अशोकका राज्याभिषेक बुद्ध-निर्वाणसे २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था। अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुका है कि अशोकका अभिषेक ई. पू. २६९ वर्षमें अथवा उसके लगभग हुआ था। अतएव बुद्ध-निर्वाणका काल $२१८ + २६९ = ४८७$ ई. पू. सिद्ध हुआ। इसकी पुष्टि एक चीनी परम्परासे भी होती है। चीनके क्सेन्टन नामक नगरमें बुद्ध-निर्वाणके वर्षका स्मरण बिन्दुओं द्वारा सुरक्षित रखनेका प्रयत्न किया गया है। प्रति वर्ष एक बिन्दु जोड़ दिया जाता था। इन बिन्दुओंकी संख्या निरन्तर ई. सन् ४८९ तक चलती रही और तब तकके बिन्दुओंकी संख्या ९७५ पायी जाती है। इसके अनुसार बुद्ध-निर्वाणका काल $९७५ - ४८९ = ४८६$ ई. पू. सिद्ध हुआ। इस प्रकार सिंहल और चीनी परम्परामें पूरा सामञ्जस्य पाया जाता है। अतएव बुद्ध-निर्वाण का यही काल स्वीकार करने योग्य है।

स्वयं पालि त्रिपिटकमें इस बातके प्रचुर प्रमाण पाये जाते हैं कि महावीर आयुमें और तपस्यामें बुद्धसे ज्येष्ठ थे, और उनका निर्वाण भी बुद्धके जीवन-काल में ही हो गया था। दोधनिकायके श्रामण्य-फल-सुत्त, संयुत्त-निकायके दहर-सुत्त तथा सुत्त-निपात्तके सभिय-सुत्तमें बुद्धसे पूर्ववर्ती छह तीर्थकोंका उल्लेख आया है। उनके नाम हैं पूरण कश्यप, मकखलिगोशाल, निगंठ नातपुत्त (महावीर), संजय बेलट्टिपुत्त, प्रबुद्ध कच्चायन और अजितकेश-कंबलि। इन सभीको बहुत लोगों द्वारा सम्मानित, अनुभवी, चिरप्रभ्रजित व वयोवृद्ध कहा गया है, किन्तु बुद्धको ये

विशेषण नहीं लगाये गये । इसके विपरीत उन्हें उक्त छहकी अपेक्षा जन्मसे अल्प-वयस्क व प्रव्रज्यामें नया कहा गया है । इससे सिद्ध है कि महावीर बुद्धसे ज्येष्ठ थे और उनसे पहले ही प्रव्रजित हो चुके थे ।

मज्झिमनिकायके साम-गाम सुत्तमें वर्णित आया है कि जब भगवान् बुद्ध साम-गाममें विहार कर रहे थे तब उनके पास खुन्द नामक श्रमणोद्देश आया और उन्हें यह सन्देश दिया कि अभी-अभी पावामें निगंठ नातपुत्त (महावीर) की मृत्यु हुई है, और उनके अनुयायियोंमें कलह उत्पन्न हो गया है । बुद्धके पट्ट शिष्य आनन्दको इस समाचारसे सन्देश उत्पन्न हुआ कि कहीं बुद्ध भगवान् के पश्चात् उनके संघमें भी ऐसा ही विवाद उत्पन्न न हो जाये । अपने इस संदेशकी चर्चा उन्होंने बुद्ध भगवान् से भी की । यही वृत्तान्त दीघ-निकायके पासादिक-सुत्तमें भी पाया जाता है । इसी निकायके संगीतिगरियाय-सुत्तमें भी बुद्धके संघमें महावीर-निर्वाणका वही समाचार पहुँचता है और उसपर बुद्धके शिष्य सारिपुत्तने भिक्षुओंको आमन्त्रित कर वह समाचार सुनाया तथा भगवान् बुद्धके निर्वाण होनेपर विवादकी स्थिति उत्पन्न न होने देनेके लिए उन्हें सतर्क किया । इसपर स्वयं बुद्धने कहा—साधु, साधु, सारिपुत्र, तुमने भिक्षुओंको अच्छा उपदेश दिया । ये प्रकरण निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित करते हैं कि महावीरका निर्वाण बुद्धके जीवन-कालमें ही हो गया था । यही नहीं, किन्तु इससे उनके अनुयायियोंमें कुछ विवाद भी उत्पन्न हुआ था जिसके समाचारसे बुद्धके संघमें कुछ चिन्ता भी उत्पन्न हुई थी, और उसके समाधान का भी प्रयत्न किया गया था । इस प्रकार बुद्धसे महावीरकी वरिष्ठता और पूर्व-निर्वाण निस्सन्देह रूपसे सिद्ध हो जाता है और उनका दोनोंकी उक्त परम्परागत निर्वाण-तिथियोंसे भी मेल बैठ जाता है ।^१

८. महावीर-जन्मस्थान

प्रस्तुत ग्रन्थ संधि १ कडवक ६-७ में कहा गया है कि जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें स्थित कुण्डपुरके राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके चौबीसवें जिनम्ह महावीरका जन्म होगा । इस परसे इतना तो स्पष्ट हो गया कि भगवान् का जन्म-स्थान कुण्डपुर था । किन्तु वहाँ उसके भारतमें स्थित होनेके अतिरिक्त और अन्य

१. महावीर और बुद्धके निर्वाण कालप्रश्नकी उल्लेखों व उद्घाटनके लिए देखिए विदरनिट्ठ : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर भाग २ अपेण्डिक्स १ बुद्ध-निर्वाण व अपेण्डिक्स ६ महावीर-निर्वाण । मुनि नगराज कृत आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृष्ठ ४७-१२८ ।

कोई प्रदेश आदिकी सूचना नहीं दी गयी । तथापि अन्य ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था । उदाहरणार्थ पूज्यपाद स्वामी कृत निवर्णि-भक्तिमें कहा गया है कि :—

“सिद्धार्थ-नुवृत्ति-जनयो भारतवास्ये, विदेह-कुण्डपुरे ।” अर्थात् राजा सिद्धार्थ के पुत्र महावीरका जन्म भारतवर्षके विदेह प्रदेशमें स्थित कुण्डपुरमें हुआ । इसी प्रकार जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (सर्ग २ श्लोक १ से ५) में कहा गया है कि :

अथ देशोऽस्ति विस्तारो जम्बूद्वीपस्य भारते ।

विदेह इति विख्यातः स्वर्गखण्डसमः भिया ॥

तत्राखण्डलनेत्रालीपद्मिनीखण्डमण्डनम् ।

सुखाम्भःकुण्डमाभाति नाम्ना कुण्डपुरं पुरम् ॥

अर्थात् जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विशाल, विख्यात व समृद्धिमें स्वर्गके समान जो विदेह देश है उसमें कुण्डपुर नामका नगर ऐसा शोभायमान दिखाई देता है जैसे मानो वह सुस्तरूपी जलका कुण्ड ही हो, तथा जो इन्द्रके सहस्र नेत्रोंकी पंक्तिद्वारा कमल-पत्रोंसे अलंकृत है । गुप्तभद्रकृत उत्तरपुराण (पर्व ७४ श्लोक २५१-२५२) में भी बताया जाता है कि :

भरतेऽस्मिन्विदेहाख्ये विषये भवनाङ्गणे ।

राजः कुण्डपुरेशस्य वसुधारापतत्पृथुः ॥

अर्थात् इसी भरत क्षेत्रके विदेह नामक देशमें कुण्डपुर-नरेशके प्रासादके प्रांगणमें विशाल धनकी धारा बरसी ।

अर्द्धमगधो आगमके आचाराङ्ग सूत्र (२, १५) तथा कलासूत्र (११०) में भी कहा गया है कि :

समणे भगवं महावीरे णाए णायपुत्ते णायकुलणिअत्ते विदेहे विदेहदित्ते विदेहजण्वे विदेहसूमाळे तोसं वासाइं विदेहंसि कट्ठु अगारमण्जे वसित्ता.... ।

अर्थात् ज्ञातु, ज्ञातु-पुत्र, ज्ञातुकुलोत्पन्न, विदेह, विदेहदत्त, विदेहजात्य, विदेह सुकुमार, अमण भगवान् महावीर २० वर्ष विदेहदेशके ही गृहमें निवास करके प्रव्रजित हुए ।

और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं, किन्तु इतने ही उल्लेखोंसे यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि भगवान् महावीरकी जन्मनगरीका नाम कुण्डपुर था, और वह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था । सीमांशसे विदेहकी सीमाके सम्बन्धमें कहीं कोई विवाद नहीं है । प्राचीनतम काल से बिहार राज्यका गंगासे उत्तरका भाग विदेह और दक्षिणका भाग मगध नामसे प्रसिद्ध रहा है । इसी विदेह प्रदेशको तोरभुक्ति नामसे भी उल्लिखित किया गया है जिसका वर्तमान

रूप तिरहुत अब भी प्रचलित है । पुराणोंमें इसकी सीमाएँ इस प्रकार निर्दिष्ट की गयी हैं :

गङ्गा-हिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे ।
तीरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परम-भावनः ॥
कौशिकीं तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै ।
योजनानि चतुर्विंशद् व्यायामः परिकीर्तितः ॥
गङ्गा-प्रवाहमारभ्य यावद् हिमवतं वरम् ।
विस्तारः शतैश्च शतैश्चो देशस्य पुलकितः ॥

इस प्रकार विदेह अर्थात् तीरभुक्ति (तिरहुत) प्रदेश की सीमाएँ सुनिश्चित हैं । उत्तरमें हिमालय पर्वत और दक्षिणमें गंगा नदी, पूर्वमें कौशिकी और पश्चिममें गण्डकी नामक नदियाँ । किन्तु विदेहकी ये सीमाएँ भी एक विशाल क्षेत्रको सूचित करती हैं और अब हमारे लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रदेशमें कुण्डपुरको कहाँ रखा जाये । इसके निर्णयके लिए हमारा ध्यान महावीरके जातु-कुलोत्पन्न, जातुपुत्र आदि विशेषणोंकी ओर आकृष्ट होता है । ये जातु क्षत्रियवंशी कहाँ रहते थे इसका संकेत हमें बौद्ध साहित्यके एक अतिप्राचीन ग्रन्थ महावस्तुमें प्राप्त होता है । वहाँ प्रसंग यह है कि बुद्ध भगवान् गंगाको पार कर वैशालीकी ओर जा रहे हैं और उनके स्वागतके लिए वैशाली संघके लिच्छवी आदि अनेक क्षत्रियगण शोभायान्ना बनाकर उनके स्वागतार्थ आते हैं । इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि :

स्कीतानि राज्यानि प्रशास्यमाना ।
सम्पन् राज्यानि करोन्ति जातयः ॥
तथा इमे लिच्छवि-मध्ये सन्तो ।
देवेहि शास्ता उपमासकासि ॥

अर्थात् ये जो क्षत्रियगण भगवान्के स्वागतके लिए आ रहे हैं उनमें जो जातु नामक क्षत्रियगण हैं वे अपने विशाल राज्यका शासन भले प्रकारसे करते हैं और वे लिच्छवि गणके क्षत्रियोंके बीच ऐसे प्रतिष्ठित और शोभायमान दिखाई देते हैं कि स्वयं शास्ता अर्थात् स्वयं भगवान् बुद्धने उनकी उपमा देवोंसे की है । इस उल्लेखसे एक तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि जातुकुलके क्षत्रियोंका निवास-स्थान वैशाली ही था, और दूसरे वे लिच्छविगणमें विशेष सम्मानका स्थान रखते थे । इसका कारण भी स्पष्ट है । जातुकोके कुलकी प्रतिष्ठा इस कारण और भी बढ़ गयी प्रतीत होती है क्योंकि उनके गणनायक सिद्धार्थ वैशाली गणके नायक राजा चेटकके जामाता थे । चेटककी कन्या (भगिनी) प्रियकारिणी विशालाका

विवाह ज्ञातृकुल-श्रेष्ठ राजा सिद्धार्थसे हुआ था। भगवान् महावीरको वैशालीसे सम्बद्ध करनेवाला एक और पुष्ट प्रमाण उपलब्ध है। अर्द्धमागधी आगमोंमें (सूत्रकृतांग १, २; उत्तराध्ययन ६ आदि) अनेक स्थानोंपर भगवान् महावीरको वैशालीय—वैशालिक कहा गया है। यद्यपि कुछ टीकाकारोंने वैशालिकका विशाल-व्यक्तिवशील, विशालामाताके पुत्र आदि रूपसे विविध प्रकार अर्थ किये हैं तथापि वे संतोषजनक नहीं हैं। वैशालिकका यही स्पष्ट अर्थ समझमें आता है कि वैशाली नगरके नागरिक थे। आगम में अनेक स्थानोंपर वैशाली धावकोंका भी उल्लेख आता है। भगवान् ऋषभदेव कौशल देशके थे, अतएव उन्हें 'अरहा कोसलीये' अर्थात् कौशल देशके अरहन्त कहकर भी सम्बोधित किया गया है (समवायांग सूत्र १४१, १६२)। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि महावीर वैशाली नगरमें ही उत्पन्न हुए थे और कुण्डपुर उसी विशाल नगरका एक भाग रहा होगा।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वैशालीकी स्थिति कहाँ थी? इसका स्पष्ट उत्तर वाल्मीकि कृत रामायण (१, ४५) में पाया जाता है। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र मुनिके साथ मिथिलामें राजा जनक द्वारा आयोजित धनुर्यज्ञमें जा रहे हैं। जब वे गंगा-तटपर पहुँचे तब मुनिने उन्हें गंगा-अवतरणका आख्यान सुनाया। तत्पश्चात् उन्होंने गंगा पार की और वे उसके उत्तरीय तटपर जा पहुँचे। वहाँसे उन्होंने विशालापुरीको देखा :

उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यविगणं ततः ।

गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम् ॥९॥ (रामा. ४५, ९)

और वे शीघ्र ही उस रम्य, दिव्य तथा स्वर्गोपम नगरीमें जा पहुँचे।

ततो मुनिवरस्तूर्णं जगाम सहाराधकः ।

विशालां नगरीं रम्यां दिश्यां स्वर्गोपमां तदा ॥

(रामा. १, ४५, ९-१०)

यहाँ उन्होंने एक रात्रि निवास किया और दूसरे दिन वहाँसे चलकर वे जनक-पुरी मिथिलामें पहुँचे।

‘उध्य तत्र निशामेकां जग्मतुमिथिलां ततः ।’

बौद्ध ग्रन्थोंमें भी वैशालीके अनेक उल्लेख आये हैं और वहाँ भी स्पष्टतः कहा गया पाया जाता है कि बुद्ध भगवान् गंगाकी पारकर उत्तरकी ओर वैशालीमें पहुँचे। वैशालीमें उस समय लिच्छवि संवका राज्य था तथा गंगाके दक्षिणमें मगधनरेश श्रेणिक बिम्बसार और उनके पश्चात् कुणिक अजातशत्रुका एकछत्र राज्य था। इन दोनों राज्यतन्त्रोंमें मौलिक भेद था और उनमें शत्रुता भी बढ़

गयी थी। बौद्ध ग्रन्थोंमें उल्लेख है (दीघनिकाय-महापरिणिब्बान सुत्त) कि अजातशत्रुके मन्त्री वर्षकारने बुद्धसे पूछा था कि क्या वे वैशालीके लिच्छवि संघ-पर विजय प्राप्त कर सकते हैं? इसके उत्तरमें बुद्धने उन्हें यह सूचित किया था कि जबतक लिच्छवि गणके लोग अपनी गणतन्त्रीय व्यवस्थाको सुसंगठित हो एकमतसे समर्थन दे रहे हैं, न्यायनीतिका पालन करते हैं और सदाचारके नियमों का उल्लंघन नहीं करते, तबतक उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। यह बात जानकर वर्षकार मन्त्रीने कूटनीतिसे लिच्छवियोंके बीच फूट डाली और उन्हें न्यायनीतिसे अष्ट किया। इसका जो परिणाम हुआ उसका विशद वर्णन अर्द्धमागधी आगमके भगवती सूत्र, सप्तम अतक में पाया जाता है। इसके अनुसार अजात-शत्रुकी सेनाने वैशालीपर आक्रमण किया। युद्धमें महाशिल्कटक और रक्षमुसल नामक युद्ध-यन्त्रोंका उपयोग किया गया। अन्ततः वैशालीके प्राकारका भंग होकर अजातशत्रुकी विजय हो गयी। तात्पर्य यह है कि महावीरके कालमें वैशालीकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और उस नगरीका नागरिक होना एक गौरवकी बात मानी जाती थी। इसीलिए महावीरको वैशालीय कहकर भी सम्बोधित किया गया है। अनेक प्राचीन नगरोंके साथ इस वैशालीयका भी दीर्घकाल तक इतिहासज्ञोंको अता-पता नहीं था। किन्तु विगत एक शताब्दीमें जो पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज-खोध हुई है उससे प्राचीन भग्नावशेषों, मुद्राओं व शिलालेखों आदिके आधारसे प्राचीन वैशाली-की ठीक स्थिति अवगत हो गयी है और निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित हो गया है कि बिहार राज्यसे गंगाके उत्तरमें मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत बसाढ़ नामक ग्राम ही प्राचीन वैशाली है। स्थानीय खोज-खोधसे यह भी माना गया है कि वर्तमान बसाढ़के समीप ही जो वासुकुण्ड नामक ग्राम है वही प्राचीन कुण्डपुर होना चाहिए। वहाँ एक प्राचीन कुण्डके भी चिह्न पाये जाते हैं जो क्षत्रियकुण्ड कहलाता रहा होगा। उसीके समीप एक ऐसा भी भूमिक्षण्ड पाया गया जो 'अहल्य' माना जाता रहा है। उसपर कभी हल नहीं चलाया गया, तथा स्थानीय जनताकी धारणा रही है कि वह एक अतिप्राचीन महापुरुषका जन्मस्थान था। इसलिए उसे पवित्र मानकर लोग वहाँ दीपावलीकी अर्थात् महावीरके निर्वाणके दिन दीपक जलाया करते हैं। इन सब बातोंपर समुचित विचार करके विद्वानोंने उसी स्थलको महावीरकी जन्मभूमि स्वीकार किया और बिहार सरकारने भी इसी आधारपर उस स्थलको अपने अधिकारमें लेकर उसका बेश बना दिया है और वहाँ एक कमलाकार वेदिका बनाकर वहाँ एक संगमरमरका शिलापट्ट स्थापित कर दिया है। उसपर अर्द्धमागधी भाषामें आठ गाथाओंका लेख हिन्दी अनुवाद सहित भी अंकित कर दिया गया है जिसमें वर्णन है कि यह वह स्थल है

जहाँ भगवान् महावीरका जन्म हुआ था और जहाँसे वे अपने ३० वर्षके कुमार-कालको पूरा कर प्रव्रजित हुए थे । शिलालेखमें यह भी उल्लेख है कि भगवान्‌के जन्मसे २५५५ वर्ष व्यतीत होनेपर विक्रम संवत् २०१२ वर्षमें भारत के राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादने वहाँ आकर उस स्मारकका उद्घाटन किया ।

महावीर स्मारकके समीप ही तथा पूर्वोक्त प्राचीन क्षत्रिय कुण्डकी तटवर्ती भूमिपर साहू शान्तिप्रसादके दानसे एक भव्य भवनका निर्माण भी करा दिया गया है और वहाँ बिहार राज्य शासन द्वारा प्राकृत जैन शोध-संस्थान भी चलाया जा रहा है । यह संस्थान सन् १९५६ में मेरे (डा. हीरालाल जैन) निर्देशकत्वमें मुजफ्फरपुरमें प्रारम्भ किया गया था । उन्हींके द्वारा वैशालीमें महावीर स्मारक स्थापित कराया गया तथा शोध-संस्थानके भवनका निर्माण कार्य प्रारम्भ कराया गया ।

वैशालीकी स्थितिका यह जो निर्णय किया गया उसमें एक शंका रह जाती है । कुछ धर्म-अन्धुओंको यह बात खटकती है कि कहीं-कहीं वैशालीकी स्थिति विदेहमें नहीं, किन्तु सिन्धु देशमें कही गयी है । प्रस्तुत ग्रन्थ (५, ५) में भी कहा पाया जाता है कि 'सिन्धुविसह वइशालीपुरवरि' तथा संस्कृत उत्तर पुराण (७५, ३) में भी कहा गया है :

सिन्ध्वाख्यविषये भूभृद्वैशालीनगरेऽभवत् ।

षेडकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः ॥

इन दोनों स्थानोंपर सिन्धु विषय व सिन्ध्वाख्यविषयेका तात्पर्य सिन्धु देशसे लगाया जाना स्वाभाविक ही है । किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वर्तमान सिन्धुदेशमें न तो किसी वैशाली नामक नगरीका कहीं कोई उल्लेख पाया गया और न उसकी पूर्वोक्त समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों और घटनाओंसे सुसंगति बैठ सकती है । वैशालीकी स्थितिमें अब कहीं किसी विद्वान्‌को संशय नहीं रहा है । इस विषयपर मैंने जो विचार किया है उससे मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि उत्तर पुराणमें जो 'सिन्ध्वाख्यविषये' पाठ है वह किसी लिपिकारके प्रमादका परिणाम है । यथार्थतः वह पाठ होना चाहिये 'सिन्ध्वाख्य-विषये' जिसका अर्थ होगा वह प्रदेश जहाँ नदियोंका बाहुल्य है । तिरहुत प्रदेशका यह विशेषण पूर्णतः सार्थक है । इस प्रदेशका उल्लेख शंकरदिग्विजय नामक ग्रन्थमें भी आया है, और वहाँ उसे उदकदेश कहा गया है । तीरभुक्ति नामकी भी यही सार्थकता है कि समस्त प्रदेश प्रायः नदियों और उसके तटवर्ती क्षेत्रोंमें बटा हुआ है । ऊपर जो तीरभुक्ति सम्बन्धी एक उल्लेख उद्धृत किया गया है उसमें इस प्रदेशकी 'नदी-पञ्चदशान्तरे' कहा गया है, अर्थात् पन्द्रह नदियोंमें बटा हुआ प्रदेश । वहाँ नदियोंकी बहुलता

तथा समय-समयपर पूरे प्रदेशका जल-प्लावन आज भी देखा-सुना जाता है । अतः पूर्वोक्त दोनों उल्लेखोंसे किसी अन्य सिन्धु देशका नहीं, किन्तु इसी सिन्धुबहुल, उदकदेश या तीरभुक्तिसे ही अभिप्राय है ।

अब इस विषयमें एक प्रश्न फिर भी खो रहा जाता है । इधर दीर्घकालसे महावीर स्वामीका जन्म-स्थान बिहारके पटना जिलेमें नालन्दाके समीप कुण्डलपुर माना जाता है । वहाँ एक विशाल मन्दिर भी है और वह भगवान्‌के जन्म-कल्याणक स्थानके रूपमें एक तीर्थ माना जाता है । इसी श्रद्धासे, वहाँ सहस्रों यात्री तीर्थयात्रा करते हैं । उसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा भगवान्‌का जन्म-स्थान मुंगेर जिलेके लच्छुआड़ नामक ग्रामके समीप क्षत्रिय-कुण्डको माना गया है । किन्तु ये दोनों स्थान गंगाके उत्तर विदेह देशमें न होकर गंगाके दक्षिणमें मगध देशके अन्तर्गत हैं और इस कारण दोनों ही सम्प्रदायोंके प्राचीनतम स्पष्ट ग्रन्थोल्लेखोंके विरुद्ध पड़ते हैं । यथार्थतः इस विषयमें सन्देह याकोबी आदि उन विदेशी विद्वानोंने प्रकट किया जिन्होंने इस विषयपर निष्पक्षतापूर्वक शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किया था, और उन्हींकी खोज-शोधों द्वारा वैशाली तथा कुण्डपुरकी वास्तविक स्थितिका पता चला । ये जो दो स्थान वर्तमानमें जन्मस्थल माने जा रहे हैं उनकी परम्परा अस्तुतः बहुत प्राचीन नहीं है । विचार करनेसे ज्ञात होता है कि विदेह और मगध प्रदेशोंमें जैनधर्मके अनुयायियोंकी संख्या महावीरके कालसे लगभग बारह सौ वर्षतक तो बहुत रही । सातवीं शताब्दीमें हर्षवर्धनके कालमें जो चीनी यात्री ह्वेनत्सांग भारतमें आया था उसने समस्त बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेका प्रयत्न किया था । वह वैशाली भी गया था जिसके विषयमें उसने अपनी यात्राके वर्णनमें स्पष्ट लिखा है कि वहाँ बौद्ध धर्मानुयायियोंकी अपेक्षा निर्ग्रन्थों अर्थात् जैनियोंकी संख्या अधिक है । किन्तु इसके पश्चात् स्थितिमें बड़ा अन्तर पड़ा प्रतीत होता है, और अनेक कारणोंसे यहाँ प्रायः जैनियोंका अभाव हो गया । इसके अनेक शताब्दी पश्चात् सम्भवतः मुगलकालमें व्यापारकी दृष्टिसे पुनः जैनो यहाँ आकर बसे और उन्हींने पुरातत्त्व व ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधारपर नहीं, किन्तु केवल नाम-साम्य तथा भ्रान्त जनश्रुतियोंके आधारसे कुण्डलपुर व लच्छुआड़में भगवान्‌के जन्मस्थानकी कल्पना कर ली । अब उक्त दोनों स्थान वहाँके मन्दिरोंके निर्माण, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तथा सैकड़ों वर्षोंसे जनताकी श्रद्धा एवं तीर्थयात्राके द्वारा तीर्थस्थल बन गये हैं और बने रहेंगे । किन्तु जब हमने यह जान लिया कि भगवान्‌का वास्तविक जन्म-स्थान वैशाली व कुण्डपुर है उसे समस्त भारतीय व विदेशी विद्वानोंने एकमतसे स्वीकार किया है तथा बिहार शासन द्वारा भी उसे मान्यता प्रदान कर वहाँ महावीर स्मारक और

शोध-संस्थान की स्थापना भी की है तब समस्त जैन समाजको इस स्थानकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए और अपना पूरा योगदान देकर उसे उसके ऐतिहासिक महत्त्वके अनुरूप गौरवशाली बनाना चाहिए ।

९. महावीर-तप-कल्याणक क्षेत्र

भगवान्ने तपश्चरण कहाँ प्रारम्भ किया था इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (१, ११) में इस प्रकार पाया जाता है :

चंदप्पह-सिवियहि पट्टु चडिण्णु ।
तहिं णाह-संखवणि णवर दिण्णु ॥
मग्गसिर-कसण-असमी-दिणंति ।
संजामइ तियमुच्छवि महंसि ॥
बोलीणइ चरियावरण पंकि ।
हत्युत्तरमञ्जासिइ ससंकि ॥
छट्ठोववासु किउ मलहरेण ।
तवचरणुलइउ परमेसरेण ॥

इसी प्रकार संस्कृत उत्तरपुराण (७५, ३०२-३०४) में भगवान्के तपश्चरणका उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है :

नाथः (नाथ-) षष्ठद्वनं प्राप्य स्वयानादवरुह्य सः ।
श्रेष्ठः षष्ठीपवासेन स्वप्रभापटलावृते ॥३०२॥
निविश्योदङ्मुखो वीरो रुन्दरत्नशिलातले ।
दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शशिनि श्रिते ॥
हस्तोत्तरर्क्षयोर्मध्यं मार्गं जग्मास्तलधमणि ।
दिवमावसितौ धीरः संयमाभिमुखोऽभवत् ॥
सौवर्माद्यैः सुरैरेतम् कृताभिषेकपूजनः ॥

हरिवंशपुराण (२, ५०-५२) के अनुसार :

आरुह्य शिविकां दिव्यामुह्यमानां सुरेश्वरैः ॥
उत्तराफाल्गुनीष्वेव वर्तमाने निशाकरे ।
कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशम्यामममद् वनम् ॥

१. हार्नले : अपासक-दशा, प्रस्तावना व टिप्पण । केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ १४० ।
भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० २२ आदि ।

अपनीय तनोः सर्वं वस्त्रमाल्यविभूषणम् ।

पञ्चमुष्टिभिरुद्धृत्य मूर्धजानभवन्मुनिः ॥

इन तीनों उल्लेखोंका अभिप्राय यह है कि नाथ, नाथ, नाथ अथवा ज्ञातृ वंशीय भगवान् महावीर ने मार्गशीर्ष कृष्णा १०वीं के दिन पण्डवनमें जाकर तपश्चरण प्रारम्भ किया और वे पुति हो गये । गद्यार्थका अर्थानुगामी पन्नों, जैसे कल्पसूत्रादिमें इसे 'नाथ-संभव' अर्थात् ज्ञातृ क्षत्रियोंके हिस्सेका वन कहा गया है और मेरे मतानुसार उत्तरपुराणमें भी मूलतः पाठ नाथ-पण्डवन व अपभ्रंशमें नाथसंभवण रहा है जिसे अज्ञानवश लिपिकारोंने अपनी दृष्टिसे सुधार दिया है । अतः भगवान्की तपोभूमि ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंके निवास वैशाली व कुण्डपुरका समीपवर्ती उपवन ही सिद्ध होता है ।

१०. भगवान् का केवलज्ञान-क्षेत्र

भगवान्को केवलज्ञान कहाँ उत्पन्न हुआ इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (२, ५) में निम्नप्रकार पाया जाता है ।

बारह-संवच्छर-तव-चरणु ।
किञ्च सम्मद्विषा दुविक्रय-हरणु ॥
पोसंतु अहिंस खति ससहि ।
भयवंतु संतु विहरंतु सहि ॥
गत जिम्हिय-नामहु अइ-णियहि ।
सुविउलि रिजुकूला-णइहि तडि ॥

धत्ता—मोर-कीर-सारस-सरि उज्जाणमि मणोहरि ॥

साल-मूलि रिसि-राणउ रयण-सिलहि आरीणउ ॥५॥

छट्टेणुववासैं हयदुरिएँ ।
परिपालिय-तेरह-विह-चरिएँ ॥
वइसाह-मासि सिय-दसमि दिणि ।
अवरणहुइ जायइ हिम-किरणि ॥
हत्युत्तर-मज्झ-समासियइ ।
पहु बडिबण्णउ केवल-सियइ ॥

अर्थात् भगवान् महावीरने बारह वर्ष तक तपस्या की, तथा अपनी स्वसा चन्दनाके अहिंसा और क्षमा भावका पोषण किया, एवं विहार करते हुए वे

जृम्भिक ग्रामके अतिनिकट ऋजुकूला नदीके तटवर्ती वनमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने एक साल वृक्षके नीचे शिलापर ध्यानारूढ़ हो दो दिन उपवासकर वैशाख शुक्ल दशमीके दिन अपराह्न कालमें जब चन्द्र उत्तराषाढ़ और हस्त नक्षत्रोंके मध्यमें था तब केवलज्ञान प्राप्त किया । यही बात उत्तरपुराण (७४, २, ४९ आदि) में इस प्रकार कही गयी है :

भगवान्वैर्धमानोऽपि नीत्वा द्वादशवत्सरान् ।
 छात्रस्थेन जगद्वन्वृजृम्भिक-ग्राम-सन्तिधी ॥
 ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनान्तरे ।
 महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसन् ॥
 स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोऽधस्तात्सालमूरुहः ।
 वैशाखे मासि सज्योत्स्तदशम्यामपराह्णके ॥
 हस्तोत्तरान्तरं याते शशिन्यारूढ-शुद्धिकः ।
 क्षापकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः ॥
 घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानन्तचतुष्टयम् ।
 परमात्मपदं प्रापत्परमेष्ठी स सन्मतिः ॥

यही बात हरिवंशपुराण (२, ५६-५९) में इस प्रकार कही गयी है :

मनःपर्ययपर्यन्त-चतुर्ज्ञानमहेक्षणः ।
 तपो द्वादशवर्षाणि चकार द्वादशात्मकम् ॥
 त्रिहरत्रय नाथोऽसौ गुणग्राम-परिग्रहः ।
 ऋजुकूलापगाकूले जृम्भिक-ग्राममीयिवान् ॥
 तत्रातापनयोगस्थः सालाभ्यासशिलातले ।
 वैशाख-शुक्लपक्षस्य दशम्यां षष्ठमाश्रितः ॥
 उत्तराफाल्गुनीप्राप्ते शुक्लध्यानी निशाकरे ।
 निहत्य घातिसंघातं केवलज्ञानमाप्तवान् ॥

इस प्रकार भगवान् महावीरका केवलज्ञान-प्राप्ति रूप कल्याणक जृम्भिक ग्रामके समीप ऋजुकूला नदीके तटपर सम्पन्न हुआ । इस ग्रामका नाम आचारंग सूत्र व कल्पसूत्रमें जंभिय तथा नदीका नाम ऋजुवालुका पाया जाता है ।

यद्यपि अभी तक इस ग्राम और नदीकी स्थितिका निर्णय नहीं हुआ, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं दिखाई देता कि उक्त नदी वही है जो अब भी बिहारमें कुपेल या कुएल—कूला नामसे प्रसिद्ध है और उसके तट पर इसी नामका एक बड़ा रेलवे जंक्शन भी है । उसीके समीप जम्हुई नामक नगर भी है । अतः वही

स्थान भगवान्का ज्ञान-प्राप्ति क्षेत्र स्वीकार करके वहाँ समुचित स्मारक बनाया जाना चाहिए ।

११. महावीरवेशना-स्थल

केवलज्ञान प्राप्त करके भगवान् राजगृह पहुँचे, और उस नगरके समीप त्रिपुलाचल पर्वतपर उनका समवसरण बनाया गया । वहाँ उनकी दिव्यध्वनि हुई जिसका समय श्रावण कृष्ण प्रतिपदा कहा गया है । इसके अनुसार भगवान्का प्रथम उपदेश केवलज्ञान-प्राप्तिसे ६६ दिन पश्चात् हुआ । यह बात हरिवंशपुराण (२, ६१ आदि) में निम्न प्रकार पायी जाती है :

पदषष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन् विभुः ।
आजगाम जगत् ख्याते जिनो राजगृहं पुरम् ॥
आरुरोह गिरिं तत्र त्रिपुलं त्रिपुलश्रियम् ।
प्रशोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा ॥
श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः ।
प्रतिपद्य हि पूर्वाह्णे शासनार्थमुदाहरत् ॥

इस प्रकार विहार राज्यके अन्तर्गत राजगृह नगरके समीप त्रिपुलाचलगिरि ही वह पवित्र और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जहाँ भगवान् महावीरका दिव्य शासन प्रारम्भ हुआ । इस पर्वतपर पहलेसे ही अनेक जैन-मन्दिर हैं, और कोई २५-३० वर्ष पूर्व यहाँ वीर-शासन स्मारक भी स्थापित किया गया था । सबसे वीर-शासन-जयन्ती भी श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको मनायी जाती है । तथापि उक्त स्मारक और पवित्र दिनको अभीतक वह देशव्यापी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई जो उनके ऐतिहासिक महत्त्वके अनुरूप हो । इस हेतु प्रयास किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि यही वह स्थल है जहाँ न केवल भगवान्का धर्म-शासन प्रारम्भ हुआ था, किन्तु उस समयके सुप्रसिद्ध वेद-विज्ञाता इन्द्रभूति गौतमने आकर भगवान्का नायकत्व स्वीकार किया और वे भगवान्के प्रथम गणघर बने । यहीं उन्होंने भगवान्की दिव्यध्वनिको अंगों और पूर्वोंके रूपमें विभाजित कर उन्हें ग्रन्थारूप किया । यहीं महाधनरेश श्रेणिक बिम्बसारने भगवान्का उपदेश सुना और गौतम गणघरसे धर्म-वर्चा करके जैन-पुराणों और कथानकोंकी रचनाकी नींव डाली । यहीं श्रेणिकने ऐसा पुण्यबन्ध किया जिससे उनका अगले मानव जन्ममें महापद्म नामक तीर्थंकर बनना निश्चित हो गया ।

१२. महावीरनिर्वाण-क्षेत्र

ऋजुकूला नदीके तटपर केवलज्ञान प्राप्त कर तथा विपुलाचलपर अपनी दिव्यध्वनि द्वारा जैन-धर्मका उपदेश देकर भगवान् महावीरने ३० वर्ष तक देश-के विविध भागोंमें विहार करते हुए धर्मप्रचार किया । तत्पश्चात् वे पावापुरमें आये और वहाँ अनेक सरोवरोंसे युक्त वनमें एक विशुद्ध शिलापर विराजमान हुए । दो दिन तक उन्होंने विहार नहीं किया, और शुक्लध्यानमें तल्लीन रहकर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम भागमें जब चन्द्र स्वाति नक्षत्रमें था तब उन्होंने शरीर परित्याग कर सिद्ध-पद प्राप्त किया । प्रस्तुत ग्रन्थ (३,१) में यह बात इस प्रकार कही गयी है :

अंत-तित्थणाहु वि महि विहरिवि ।
जण-दुरियाहें दुलंबहैं पह्रिवि ॥
पावापुरवस पत्तउ मणहरि ।
णव-तरु-पल्लवि वणि बहु-सरवरि ॥
संठिउ पैविमल-रयण-सिलायलि ।
रायहंसु णावइ पंकय-दलि ॥
दोण्णि दियहें पविहारा मुएण्णिणु ।
णिब्बत्तिइ कत्तिइ तम-कसणि पक्ख चउदसि-वासरि ।
सुक्क-झाणु तिउजउ झाएण्णिणु ॥
थिइ ससहरि दुहहरि साइवइ पच्छिमरयणिहि अवसरि ।

रिसिसहसेण समउ रयछिदणु ॥

सिद्धउ जिणु सिद्धत्थहु णंदणु ।

ठीक यही वृत्तान्त उत्तरपुराण (६७,५०८ से ५१२) में इस प्रकार पाया जाता है :

इहान्त्य-तीर्थनाथोऽपि विहृत्य त्रिपयान् बहून् ॥
क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहर-वनान्तरे ।
बहूनां सरसां मध्ये महामणि-शिलातले ॥
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः ।
कृष्ण-कार्तिक-पक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यथे ॥
स्वातियोगे तृतीयेऽह्ने-शुक्लध्यानपरायणः ।
कृतश्रियोग-संरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः ॥

हतावातिचतुष्कः सन्नशरीरो भुणात्मकः ।

गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम् ॥

इन उल्लेखोंपर-से स्पष्ट है कि भगवान् महावीरका निर्वाण पावापुरके समीप ऐसे वनमें हुआ था जिसमें आस-पास अनेक सरोवर थे । वर्तमानमें भगवान्का निर्वाण-क्षेत्र पटना जिलेके अन्तर्गत बिहार-शरीफके समीप वह स्थल माना जाता है जहाँ अब एक विशाल सरोवरके बीच भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है, और इस तीर्थक्षेत्रकी व्यापक मान्यता है । दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय एकमतसे इसी स्थलको भगवान्की निर्वाण-भूमि स्वीकार करते हैं ।

किन्तु इतिहासज्ञ विद्वान् इस स्थानको वास्तविक निर्वाण-भूमि स्वीकार करनेमें अनेक आपत्तियाँ देखते हैं । कल्पसूत्र तथा परिशिष्ट पर्वके अनुसार जिस पावामें भगवान्का निर्वाण हुआ था वह मल्ल नामक क्षत्रियों की राजधानी थी । ये मल्ल वैशालीके वज्जि व लिच्छवि संघमें प्रविष्ट थे, और मगधके एक सत्तात्मक राज्यसे उनका वैर था । अतएव गंगाके दक्षिणवर्ती प्रदेश जहाँ वर्तमान पावापुरी क्षेत्र है वहाँ उनके राज्य होने की कोई सम्भावना नहीं है । इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थों जैसे—दीघ-निपाय, सङ्ख्खम-निकाय आदिसे सिद्ध होता है कि पावाकी स्थिति शाक्य प्रदेशमें थी और वह वैशालीसे पश्चिमकी ओर कुशीनगरसे केवल दश-बारह मीलकी दूरी पर था । शाक्यप्रदेशके साम-गाम में जब भगवान् बुद्धका निवास था तभी उनके पास सन्देश पहुँचा था कि अभी अर्थात् एक ही दिन के भीतर पावामें भगवान् महावीरका निर्वाण हुआ है ।

इस सम्बन्धके जो अनेक उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें आये हैं उनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है । इन सब बातोंपर विचार कर इतिहासज्ञ इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि जिस पावापुरीके समीप भगवान्का निर्वाण हुआ था वह यथार्थतः उत्तर-प्रदेश के देवरिया जिलेमें व कुशीनगर के समीप वह पावा नामक ग्राम है जो आजकल सठियाँव (फाजिलनगर) कहलाता है और जहाँ बहुत-से प्राचीन खण्डहर व भग्नावशेष पाये जाते हैं । अतएव ऐतिहासिक दृष्टिसे इस स्थानको स्वीकार कर उसे भगवान् महावीरकी निर्वाण भूमिके योग्य तीर्थक्षेत्र बनाना चाहिए ।

१. निर्वाण भूमि-सम्बन्धी विस्तार पूर्वक विवेचन के लिए देखिए श्री कन्हैयालाल कृत 'पावा समीक्षा' (प्रकाशक—अशोक प्रकाशन, कादरा बाजार, लखनऊ, बिहार १९७२) ।
हिन्दी एण्ड कल्चर ऑफ द इण्डियन प्रीप्रेस, खण्ड २ । दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ७ गल्ल ।

१३. महावीर समकालीन ऐतिहासिक पुरुष

(क) वैशाली-नरेश चेटक

संस्कृत ग्रन्थों में पाँचमं तथा संस्कृत उत्तरपुराण (पर्व ७५) में वैशाली के राजा चेटकका वृत्तान्त आया है। चेटकके विषयमें कहा गया है कि वे अति विख्यात, विनीत और परम आर्हत अर्थात् जिनधर्मावलम्बी थे। उनकी रानीका नाम सुभद्रादेवी था। उनके दश पुत्र हुए—धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंह-भद्र, कुम्भोज, अकम्पन, पतंगत, प्रभञ्जन और प्रभास। इसके सिवाय इनके सात पुत्रियाँ भी थीं। सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियकारिणी था जिसका विवाह कुण्ड-पुर नरेश सिद्धार्थ से हुआ था और उन्हें ही भगवान् महावीरके माता-पिता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। दूसरी पुत्री थी मृगावती जिसका विवाह वत्सदेशकी राजधानी कौशाम्बीके चन्द्रवंशी राजा शतानीकके साथ हुआ। तीसरी पुत्री सुप्रभा दमार्ण देश (बिदिशा जिला) की राजधानी हेमकक्षके राजा दशरथको व्याही गयी। चौथी पुत्री प्रभावती कच्छ देशकी रौरका नामक नगरीके राजा उदयनकी रानी हुई। यह अत्यन्त शीलव्रता होनेके कारण शीलवतीके नामसे भी प्रसिद्ध हुई। चेटककी पाँचवीं पुत्रीका नाम ज्येष्ठा था। उसकी याचना मन्धर्व देशके महीपुर नगरवर्ती राजा सात्यकिने की। किन्तु चेटक राजाने किसी कारण यह विवाह-सम्बन्ध उचित नहीं समझा। इसपर क्रुद्ध होकर राजा सात्यकिने चेटक राज्यपर आक्रमण किया। किन्तु वह युद्धमें हार गया और लज्जित होकर उसने दमवर नामक मुनिसे मुनिदीक्षा धारण कर ली। ज्येष्ठा और छठी पुत्री चेलनाका चित्रपट देखकर मगधराज श्रेणिक उत्तपर मोहित हो गये, और उनकी याचना उन्होंने चेटक नरेशसे की। किन्तु श्रेणिक इस समय आयुमें अधिक हो चुके थे, इस कारण चेटकने उनसे अपनी पुत्रियोंका विवाह स्वीकार नहीं किया। इससे राजा श्रेणिकको बहुत दुःख हुआ। इसकी चर्चा उनके मन्त्रियोंने ज्येष्ठ राजकुमार अभयकुमारसे की। अभयकुमारने एक व्यापारीका वेष धारण कर वैशालीके राज-भवनमें प्रवेश किया, और उक्त दोनों कुमारियोंको राजा श्रेणिकका चित्रपट दिखाकर उनपर मोहित कर लिया। उसने सुरंग मार्गसे दोनोंका अपहरण करनेका प्रयत्न किया। चेलनाने आभूषण लानेके बहाने ज्येष्ठाको तो अपने निवास स्थानकी ओर भेज दिया और स्वयं अभयकुमारके साथ निकलकर राजगृह आ गयी, तथा उसका श्रेणिक राजा से विवाह हो गया। उधर जब ज्येष्ठाने देखा कि उसकी बहन उसे धोखा देकर छोड़ गयी तो उसे बड़ी विरक्ति हुई और उसने एक आर्थिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। चेटककी सातवीं पुत्रीका नाम चन्दना

था। एक बार जब वह अपने परिजनोंके साथ उपवनमें क्रीड़ा कर रही थी तब मनोवेग नामक एक विद्याधरने उसे देखा और वह उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया। उसने छिपकर चन्दनाका अपहरण कर लिया। किन्तु अपनी पत्नी मनोवेगाके कोपसे भयभीत होकर उसने चन्दनाको हरावती नदीके दक्षिण तटवर्ती भूतरमण नामक वनमें छोड़ दिया। वहाँ उसकी भेंट एक श्यामांक नामक भीलसे हुई। वह उसे सम्मानपूर्वक अपने सिंह नामक भीलराजके पास ले गया। भीलराजने उसे कौशाम्बीके एक धनी व्यापारी सेठ ऋषभसेनके कर्मचारी मित्रवीरको सौंप दी, और वह उसे अपने सेठके पास ले आया। सेठकी पत्नी भद्राने ईर्ष्यावश अपनी बन्दिनी दासी बनाकर रखा। इसी अवस्थामें एक दिन जब उस नगरमें भगवान् महावीरका आगमन हुआ, तब चन्दनाने बड़ी भक्तिसे उन्हें आहार कराया। इस प्रसंगसे कौशाम्बी नगरमें चन्दनाकी ख्याति हुई, और उसके विषयमें उसकी बड़ी बहन रानी मृगावतीको भी खबर लगी। वह अपने पुत्र राजकुमार उदयनके साथ सेठके घर आयी, और चन्दनाको अपने साथ ले गयी। फिर चन्दनाने वैराग्य भावसे महावीर भगवान्को शरणमें जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली, और अन्ततः वही भगवान्के आर्यिका-संघकी अग्रणी हुई।

वैशालीनरेश चेटक तथा उनके गृह-परिवार व सम्पत्तिका इतना वर्णन जैन-पुराणोंमें पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैशालीके नरेश चेटक महावीरके नाना थे, मगधनरेश श्रेणिक तथा कौशाम्बीके राजा शतानीक उनके मातृ-स्वस्रा-पति (मौसिया) थे, एवं कौशाम्बीनरेश शतानीकके पुत्र उनके मातृ-स्वस्रापुत्र (मौसयाते भाई) थे।

(ख) मगध-नरेश श्रेणिक-बिम्बिसार

मगध देशके राजा श्रेणिकका भगवान् महावीरसे दीर्घकालीन और घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। बहुत-सी जैन पौराणिक परम्परा तो श्रेणिकके प्रदत्त और महावीर अथवा उनके प्रमुख गणधर इन्द्रभूतिके उत्तरसे ही प्रारम्भ होती हैं। उनका बहुत-सा वृत्तान्त प्रस्तुत ग्रन्थ की सन्धि छहसे ग्यारह तक पाया जायेगा। इस नरेशकी ऐतिहासिकतामें कहीं कोई सन्देह नहीं है। जैन ग्रन्थोंके अतिरिक्त बौद्ध साहित्यमें एवं वैदिक परम्पराके पुराणोंमें भी इनका वृत्तान्त व उल्लेख पाया जाता है। दिगम्बर जैन परम्परामें तो उनका उल्लेख केवल श्रेणिक नामसे पाया जाता है, किन्तु उन्हें बिम्भा अर्थात् मेरी बजानेकी भी अभिरुचि थी (देखिए सन्धि ७,२) और इस कारण उनका नाम बिम्भसार अथवा भम्भसार भी प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है। द्वेताम्बर ग्रन्थोंमें अधिकतर इसी नामसे इनका उल्लेख

किया गया है। इसी शब्दका अपभ्रंश रूप बिम्बिसार या बिम्बलार प्रतीत होता है, और बौद्ध परम्परामें श्रेणिकके साथ-साथ अथवा पृथक् रूपसे यही नाम उल्लिखित हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ उदान अट्ठकथा १०४ के अनुसार बिम्बि सुवर्णका एक नाम है, और राजाका शरीर स्वर्णके समान-वर्ण होनेके कारण उसका बिम्बिसार नाम पड़ा। गण तिब्बतीय परम्परा ऐसी भी है कि इस राजाकी माताका नाम बिम्बि था और इसी कारण उसका नाम बिम्बिसार पड़ा। किन्तु जान पड़ता है कि ये व्युत्पत्तियाँ उक्त नामपर-से कल्पित की गयी हैं। श्रेणिक नामकी भी अनेक प्रकारसे व्युत्पत्ति की गयी है। हेमचन्द्र कृत अभिधात-चिन्तामणिमें 'श्रेणीः कारयति श्रेणिको मगधेश्वरः' इस प्रकार जो श्रेणियोंकी स्थापना करे वह श्रेणिक, यह व्युत्पत्ति बतलायी गयी है। बौद्ध परम्पराके एक विनय पिटककी प्रतिमें यह भी कहा पाया जाता है कि चूँकि बिम्बिसारको उसके पिताने अठारह श्रेणियोंमें अवतरित किया था, अर्थात् इनका स्वामी बनाया था, इस कारणसे उसकी श्रेणिक नामसे प्रसिद्धि हुई। अर्द्धमागधी जम्बूद्वीप पण्यतिमें ९ तारु और ९ कारु ऐसी अठारह श्रेणियोंके नाम भी गिनाये गये हैं। नौ तारु हैं—कुम्हार, पटवा, स्वर्णकार, सूतकार, गन्धर्व (संगीतकार), कासवग, मालाकार, कच्छकार और तम्बूलि। तथा नौ कारु हैं—चर्मकार, यन्त्रपीडक, गंछियाँ, छिम्पी, कंसार, सेवक, खाल, भिल्ल और धीवर। यह भी सम्भव है कि प्राकृत ग्रन्थोंमें इनका नाम जो 'सेनीय' पाया जाता है उसका अभिप्राय सैनिक या सेनापतिसे रहा हो और उसका संस्कृत रूपान्तर अवशः श्रेणिक हो गया हो।

प्रस्तुत ग्रन्थके अनुसार मगध देश राजगृह नगरके राजा प्रश्रेणिक या उप-श्रेणिककी एक रानी चिलातदेवी (किरातदेवी) से चिलातपुत्र या किरातपुत्र नामक कुमार उत्पन्न हुआ। उसने उज्जैनीके राजा प्रद्योतको छलसे बन्दी बनाकर अपने पिताके सम्मुख उपस्थित कर दिया। इससे पूर्व उद्योतके विरुद्ध राजाने जो औदायनको भेजा था उसे उद्योतने परास्त कर अपना बन्दी बना लिया था। चिलातपुत्रकी सफलतासे उसके पिताको बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर उसका राज्याभिषेक कर दिया। किन्तु वह राज्य-कार्यमें सफल नहीं हुआ और अनीतिपर चलने लगा। अतः मन्त्रियों और सामन्तों-ने निर्वासित राजकुमार श्रेणिकको कांचीपुरसे बुलवाया। श्रेणिकने आकर किरातपुत्रको पराजित कर राज्यसे निकाल दिया। चिलातपुत्र वनमें चला गया और वहाँ ढगों और लुटेरोंका नामक बन गया। तब पुनः एक बार श्रेणिकने उसे

परास्त किया। अन्ततः चिलतपुत्रने विरक्त होकर मुनि-दीक्षा धारण कर ली। इसी अवस्थामें वह एक श्रृंगालोका भक्ष्य बनकर स्वर्गवासी हुआ।

श्रेणिकका जन्म उपश्रेणिककी दूसरी पत्नी सुप्रभादेवीसे हुआ था। वह बहुत विलक्षण-बुद्धि था। पिता द्वारा जो राज्यकी योग्यता जानने हेतु राजकुमारोंकी परीक्षा की गयी उसमें श्रेणिक ही सफल हुआ। तथापि राजकुमारोंमें वैर उत्पन्न होनेके भयसे उसने श्रेणिकको राज्यसे निर्वासित कर दिया। पहले तो श्रेणिक मन्दग्राममें पहुँचा, और फिर वहाँसे भी परिभ्रमण करता हुआ तथा अपनी बुद्धि और साहसका प्रदर्शन करता हुआ जाँकीपुष्पों पहुँच गया। मगधमें राजा चिलतपुत्रके अन्वयसे वस्तु होकर मन्त्रियोंने श्रेणिकको आमन्त्रित किया और उसे मगधका राजा बनाया।

एक दिन राजा अपनी राजधानीके निकट वनमें आखेटके लिए गया। वहाँ उसने एक मुनिको ध्यानारूढ़ देखकर उसे एक अपशकुन समझा और क्रुद्ध होकर उनपर अपने शिकारी कुत्तोंको छोड़ दिया। किन्तु वे कुत्ते भी मुनिके प्रभावसे शान्त हो गये और राजाके बाण भी उन्हें पुण्यके समान कोमल होकर लगे। तब राजाने अपना क्रोध निकालनेके लिए एक मृत सर्प मुनिके गलेमें डाल दिया। इस घोर पापसे श्रेणिकको सप्तम नरकका आयु-बन्ध हो गया। किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा इतने उपसर्ग किये जानेपर भी उन मुनिराजके लेशमात्र भी राग-द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ, तब उनके मनोगत भावोंमें परिवर्तन हो गया। जब मुनिने देखा कि राजाका मन शान्त हो गया है, तब उन्होंने अपनी मधुर वाणीसे उन्हें आशीर्वाद दिया और धर्मोपदेश भी प्रदान किया। वस, यही राजा श्रेणिकका मिथ्यात्व भाव दूर हो गया और उन्हें आधिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गयी। वह मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रसन्नतासे घर लौटे।

एक दिन राजा श्रेणिकको समाचार मिला कि त्रिपुलाचल पर्वतपर भगवान् महावीरका आप्मन हुआ है। इसपर राजा भक्तिपूर्वक वहाँ गया और उसने भगवान्की वन्दना-स्तुति की। इस धर्म-भावनाके प्रभावसे उनके सम्यक्त्वकी परिपुष्टि होकर सप्तम नरककी आयु चटकर प्रथम नरककी शेष रही, और उसे तीर्थकर नामकर्मका बन्ध भी हो गया। इस अवसरपर राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन्, यद्यपि मेरे मनमें जैन मतके प्रति इतनी महान् श्रद्धा हो गयी है, तथापि व्रत-ग्रहण करनेकी मेरी प्रवृत्ति क्यों नहीं होती? इसका गणधरने उत्तर दिया कि पहले तुम्हारी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति रही है व गाढ़ मिथ्यात्वका उदय रहा है। तुमने दुश्चरित्र भी किया है और महान् आरम्भ भी। इससे जो तीव्र पाप उत्पन्न हुआ उससे तुम्हारी नरककी आयु बंध चुकी है।

देघायुको छोड़कर अन्य किसी भी गतिकी आयु जिसने बाँध ली है उसमें व्रत-ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रहती । किन्तु ऐसा जीव सम्यग्दर्शन धारण कर सकता है । यही कारण है कि तुम सम्यक्त्वी तो हो गये, किन्तु व्रत-ग्रहण नहीं कर पा रहे ।

सर्वं निधाय तच्चित्ते श्रद्धाभूममहती मते ।
जैने कुतस्तथापि स्यान्न मे व्रत-परिग्रहः ॥
हरयनुश्रेणिकप्रस्तादवासीद् गणनायकः ।
भोग-संजननाद्वाढ-मित्थत्त्वानुभवोदयात् ॥
दुश्चरित्रान्महारम्भात्संचित्तैतां निकाचितम् ।
नारकं बद्धवानायुस्त्वं प्रागेवात्र जन्मति ॥
बद्धदेवायुषोऽय्यायुर्नाङ्गी स्वीकुरुते व्रतम् ।
श्रद्धानं तु समाधत्ते तस्मात्त्वं नाग्रहीर्व्रतम् ॥

(उत्तरपुराण ७४, ४३३-३३)

इसी समय गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को यह भी बतला दिया कि भगवान् महावीर के निर्वाण होने पर जब चतुर्थकाल की अवधि केवल तीन वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रह जायेगी तभी उसकी मृत्यु होगी । श्रेणिक छतना दृढ़ सम्यक्त्वी हो गया था कि सुरेन्द्रने भी उसकी प्रशंसा की । किन्तु इसपर एक देवको विश्वास नहीं हुआ और वह राजाको परीक्षा करने आया । अब राजा एक मार्गसे कहीं जा रहा था तब उस देवने मुनिका भेष बनाया और वह जाल हाथमें लेकर मछलियाँ पकड़ने लगा । राजाने आकर मुनिकी वन्दना की, और प्रार्थना की कि मैं आपका दास उपस्थित हूँ तब आप क्यों यह अधर्म-कार्य कर रहे हैं । यदि मछलियोंकी आवश्यकता ही है तो मैं मछलियाँ पकड़ देता हूँ । देवने कहा, नहीं-नहीं, अब मुझे इससे अधिक मछलियोंकी आवश्यकता नहीं । यह वृत्तान्त नगरमें फैल गया, और लोग जैन-धर्मकी निन्दा करने लगे । तब राजा श्रेणिकने एक दृष्टान्त उपस्थित किया । उन्होंने अपनी सभाके राजपुत्रों-को जीवनवृत्ति सम्बन्धी लेख अपनी मुद्रासे मुद्रित कर और उसे मलाबलित कर प्रदान किया । उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से इस लेखको अपने मस्तकपर चढ़ाकर स्वीकार किया । तब राजाने उनसे पूछा कि इन मलिन लेखों को तुमने अपने मस्तकपर क्यों चढ़ाया ? उन्होंने उत्तर दिया कि जिस प्रकार सचेतन जीव मलिन शरीरसे लिस होते हुए भी वन्दनीय है, उसी प्रकार आपका यह लेख मलिन होते हुए भी हमारे लिए पूज्य है । तब राजाने हँसकर उन्हें बतलाया कि

इसी प्रकार धर्म-मुद्राके धारक मुनियों में यदि कोई दोष भी हो, तो उनसे घृणा नहीं, किन्तु उनकी विनय ही करना चाहिए, और विनम्रतासे उन्हें दोषोंसे मुक्त कराना चाहिए। राजाकी ऐसी धर्म-श्रद्धाको प्रत्यक्ष देखकर वह देव बहुत प्रसन्न हुआ और राजाको एक उत्तम हार देकर स्वर्गलोकको चला गया। यह कथानक इस बातका प्रमाण है कि जबसे श्रेणिकने जैन-धर्म स्वीकार किया तबसे उनकी धार्मिक श्रद्धा उत्तरोत्तर दृढ़ होती गयी और वे उससे कभी विचलित नहीं हुए।

(ग) श्रेणिक-सुत अभयकुमार

श्रेणिक जब राजकुमार ही थे और राज्यसे निर्वासित हुंकर चित्लासपुरके राज्यकालमें कांचीपुरमें निवास कर रहे थे तब उनका विवाह वहाँके एक द्विजकी कन्या अभयमतीसे हो गया था। उससे उनके अभयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जो अत्यन्त विलक्षण-बुद्धि था। उसने ही उपाय करके अपने पिताका विवाह उनकी इच्छानुसार चेलनादेवीसे कराया। वह भी श्रेणिकके साथ-साथ भगवान् महावीरके समवसरणमें गया था, और न केवल दृढ़-सम्यक्त्व, किन्तु धर्मका अच्छा ज्ञाता बन गया था। यहाँतक कि स्वयं राजा श्रेणिकने उससे भी धर्मका स्वरूप समझनेका प्रयत्न किया था। अन्ततः अभयकुमारने भी मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली, और वे मोक्षगामी हुए। (उत्तरपुराण ७४, ५२६-२७ आदि)

(घ) श्रेणिक-सुत वारिषेण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राजा श्रेणिकका चेलनादेवीसे विवाह उनकी दलती हुई अवस्थामें उनके ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमारके प्रयत्नसे ही हुआ था। चेलनाने वारिषेण नामक पुत्रको जन्म दिया। वह बाल्यावस्था से ही धार्मिक प्रवृत्तिवा था, और उत्तम श्रावकोंके नियमानुसार दमशानमें जाकर प्रतिमायोग किया करता था। एक बार विद्युच्चर नामक अंजनसिद्ध चोरने अपनी प्रेयसी गणिकासुन्दरीको प्रसन्न करनेके लिए राजभवनमें प्रविष्ट होकर चेलनादेवीके हारका अवहरण किया। किन्तु उसे वह अपनी प्रियाके पास तक नहीं ले जा सका। राजपुरुष उस चन्द्रहास हारकी चमकको देखते हुए, उसका पीछा करने लगे। यह बात उस चोरने जान ली, और वह दमशानमें ध्यानाच्छु वारिषेण कुमारके चरणोंमें उस हारको फेंककर भाग गया। राज-सेवकोंने इसकी सूचना राजाको दी। राजाने वारिषेणको ही चोर जानकर क्रोधवश उसे मार डालनेकी आज्ञा दे दी। किन्तु वारिषेणके धर्म-प्रभावसे उसपर राजपुरुषोंके अस्त्र-शस्त्र नहीं चले। उसका वह दिव्य प्रभाव देखकर राजाने उन्हें मनाकर राज-

महलमें लानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे नहीं आये और महावती मुनि हो गये । उन्होंने पलासखेड़ नामक ग्राममें भिक्षा-निमित्त जाकर अपने एक बालसखाका भी सम्बोधन किया और उसे भी मुनि बना लिया । एक बार उसका मन पुनः अपनी पत्नीकी ओर चलायमान हुआ । किन्तु दारिद्र्यने उसे अपनी माता खेलनाके महलमें ले जाकर अपनी निरासक्ति भावनाके द्वारा पुनः मुनिव्रतमें दृढ़ कर दिया ।

(ड) श्रेणिक-सुत गजकुमार

राजा श्रेणिककी एक अन्य पत्नी धनश्री नामक थी । उसे जब पाँच मासका गर्भ था तब उसे वह दोहला उत्पन्न हुआ कि आकाश मेघाच्छादित हो, मन्द-मन्द वृष्टि हो रही हो, तब वह अपने पतिके साथ हाथीपर बैठकर परिजनोंके सहित महोत्सवके साथ जनमें जाकर क्रीडा करे । उस समय वर्षाकाल न होते हुए भी अभयकुमारने अपने एक विद्याधर मित्रकी सहायतासे अपनी विमाताका यह दोहला सम्पन्न कराया । यथासमय रानी धनश्रीने गजकुमार नामक पुत्रको जन्म दिया । जब वह युवक हुआ तब एक दिन उसने भगवान् महावीर की शरणमें जाकर धर्मोपदेश सुना और दीक्षा ग्रहण कर ली । एक बार गजकुमार मुनि कलिंग देशमें जा पहुँचे और वहाँकी राजधानी दन्तीपुरकी पश्चिम दिशामें एक शिलापर विराजमान होकर आतापन योग करने लगे । वहाँके राजाको ऐसे योगका कोई ज्ञान नहीं था । अतः उसने अपने मन्त्रीसे पूछा कि यह पुरुष ऐसा आताप क्यों सह रहा है ? उनका मन्त्री बुद्धदास जैन-धर्म-विरोधी था । अतः उसने राजाको सुझाया कि इस पुरुषको वात रोग हो गया है और वह अपने शरीरमें गरमी लानेके लिए ऐसा कर रहा है । राजाने करुणाभावसे पूछा, इसकी इस व्याधिको कैसे दूर किया जाये ? मन्त्रीने उपाय बताया कि जब यह अनाथ पुरुष नगरमें भिक्षा माँगने जाये, तब उसके बैठनेकी शिलाको अग्निसे खूब तपा दिया जाये जिससे उसके ताप द्वारा उसपर बैठनेवालेकी प्रभञ्जन वायु उपशान्त हो जायेगी । राजाकी आज्ञासे वैसा ही किया गया । परिणाम यह हुआ कि जब गजकुमार मुनि भिक्षासे लौटकर उस शिलापर विराजमान हुए तब वे उसकी तीव्र तापके उपसर्गको सहकर मौल्यगामी हो गये । पश्चात् वहाँ देवोंका आगमन हुआ और वह मन्त्री, राजा तथा अन्य सहस्रों जैन धर्ममें दीक्षित हुए ।

(च) कौशाम्बीनरेश शतानीक व उदयन तथा

उज्जैनीनृप चण्डप्रद्योत

चन्दनाके वृत्तान्तामें आया है कि वैशालीनरेश चेटककी सात पुत्रियोंमेंसे एक महावती कौशाम्बीके सौमवंशी नरेश शतानीकसे व्याही गयी थी । यह

राजधानी इलाहाबादसे कोई ३५ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर वहीं थी जहाँ अब कोसम नामका ग्राम है। जब महावीर कौशाम्बी आये और चन्दनाने उन्हें आहार दिया, तब रानी मृगावतीने भी आकर अपनी उस कनिष्ठ भगिनीका अभिनन्दन किया। शतानीक के पुत्र से उदयन थे जिनका विवाह उज्जैनीनरेश चण्डप्रद्योतकी पुत्री वासवदत्तासे हुआ था। बौद्ध साहित्यिक परम्परानुसार उदयनका और बुद्धका जन्म एक ही दिन हुआ था। तथा एक सुदृढ़ जैन परम्परा यह है कि जिस रात्रि प्रद्योतके मरणके पश्चात् उनके पुत्र पालकका राज्याभिषेक हुआ उसी रात्रि महावीरका निर्वाण हुआ था। इस प्रकार ये उल्लेख उक्त दोनों महापुरुषोंके समसामयिकत्व तथा तात्कालिक राजनैतिक स्थितियोंपर उपयोगी प्रकाश डालते हैं।

१४. महावीर-जीवनचरित्र विषयक साहित्य का विकास

(छ) प्राकृतमें महावीर-साहित्य

भगवान् महावीरका निर्वाण ई. सन् ५२७ वर्ष पूर्व हुआ और उसी समयसे उनके जीवन-चरित्र सम्बन्धी जानकारी संगृहीत करना आरम्भ हो गया। भगवान्के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम थे जो धवलाके रचयिता वीरसेनके अनुसार चारों वेदों और छहों अंगोंके ज्ञाता शीलवान् उत्तम ब्राह्मण थे। ऐसे विद्वान् शिष्य-के लिए स्वाभाविक था कि वे अपने गुरुके जीवन और उपदेशोंकी सुव्यवस्थित रूपसे संगृहीत करें। उन्होंने यह सब सामग्री बारह अंगोंमें संकलित की जिसे द्वादश गणि-पिटक भी कहा गया है। इनके बारहवें अंग दृष्टिवादमें एक अधिकार प्रथमानुयोग भी था जिसमें समस्त तीर्थकरों व चक्रवर्तियों आदि महापुरुषोंकी वंशावलिओंका पौराणिक विवरण संग्रह किया गया जिसमें तीर्थकर महावीर और उनके नाथ या शातृवंशका इतिहास भी सम्मिलित था।

दुर्भाग्यतः इन्द्रभूति गौतम द्वारा संगृहीत यह साहित्य अब अप्राप्य है। किन्तु उसका संक्षिप्त विवरण समस्त उपलब्ध अर्द्धभागधी साहित्यमें बिखरा हुआ पाया जाता है। समवायांग नामक चतुर्थ अंगमें चौबीसों तीर्थकरोंके माता-पिता, जन्म-स्थान, प्रव्रज्या-स्थान, शिष्य-वर्ग, आहार-दाताओं आदिका परिचय कराया गया है। प्रथम श्रुतांग आचारांगमें महावीरकी तपस्याका बहुत मार्मिक वर्णन पाया जाता है। पाँचवें श्रुतांग ग्याख्या-प्रज्ञप्तिमें जो सहस्रों प्रश्नोत्तर महावीर और गौतमके बीच हुए अर्थात् उनमें उनके जीवन व तात्कालिक अन्य घटनाओंकी अनेक झलकें मिलती हैं। उनके समयमें पार्श्वपत्यों अर्थात् पार्श्वनाथके अनुयायियोंका बाहुल्य था तथा आजीवक सम्प्रदायके संस्थापक मंखलि-गोशाल उनके

सम-सामयिक थे। उसी कालमें मगध और वैशालीके राज्योंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ था जिसमें महाशिला-कंटक व रथ-मुसल नामक यन्त्र-चालित शस्त्रोंका उपयोग किया गया इत्यादि। सातवें अंग उपासकाध्ययनमें महावीरके जीवनसे सम्बद्ध वैशाली ज्ञातु-षण्डवन कोरलाग सत्त्विवेश, कर्मरिग्राम, वाणिज्यग्राम आदि स्थानोंके ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे उनके स्थान-निर्णयमें सहायता मिलती है। नवें श्रुतांग अनुत्तरौपपातिकमें तीर्थंकरके सम-सामयिक मगध-नरेश श्रेणिककी चेचना, धारिणी व नन्दा नामक रानियों तथा उनके तेवीस राजकुमारोंके दीक्षित होनेके उल्लेख हैं। मूलसूत्र उत्तराध्ययन व दशवैकालिकमें महावीरके मूल दार्शनिक, नैतिक व आचारसम्बन्धी विचारोंका विस्तारसे परिचय प्राप्त होता है। कल्पसूत्रमें महावीरका व्यवस्थित रीतिसे जीवन-चरित्र मिलता है। यह समस्त साहित्य उत्तरकालीन अद्वैतान्तरिक भाषामें है।

शौरसेनी प्राकृतमें यतिवृषभ कृत तिलोय-पण्णत्ति (तिलोक-प्रज्ञप्ति) ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें प्राकृत गाथाओंमें हमें तीर्थंकरों व अन्य शलाका-पुरुषोंके चरित्र नामावली-निबद्ध प्राप्त होते हैं। इनमें महावीरके जीवन-विषयक प्रायः समस्त बातोंकी जानकारी संक्षेपमें स्मरण रखने योग्य रीतिसे मिल जाती है। (सोलापुर, १९५२)

इसी नामावली-निबद्ध सामग्रीके आधारपर महाराष्ट्री प्राकृतके आदि महाकाव्य पञ्चम-चरियमें महावीरका संक्षिप्त जीवन-चरित्र, रामचरित्रकी प्रस्तावनाके रूपमें प्रस्तुत किया गया है (भावनगर, १९१४)। संघदास और धर्मदास गणी कृत वसुदेव-हिण्डी (४-५वीं शती) प्राकृत कथा साहित्यका बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें भी अनेक तीर्थंकरोंके जीवन-चरित्र प्रसंगवश आये हैं जिनमें वर्धमान स्वामीका भी है (भावनगर, १९३०-३१)। शीलांक कृत चउपस-महापुरिस-चरियं (वि. सं. ९२५) में भी महावीरका जीवन-चरित्र प्राकृत 'गद्य'में वर्णित है (वाराणसी १९६१)।

भट्टेश्वर कृत कहावलि (१२वीं शती) में सभी त्रैलोक्य शलाकापुरुषोंके चरित्र सरल प्राकृत गद्यमें वर्णित है (गा. ओ. सी.)। पूर्णतः स्वतन्त्र प्रबन्ध रूपसे महावीरका चरित्र गुणचन्द्र सूरि द्वारा महावीर-चरियमें वर्णित है (वि. सं. ११३९)। इसमें आठ प्रस्ताव हैं जिनमें प्रथम चारमें महावीरके मरीचि आदि पूर्व भवोंका विस्तारसे वर्णन है (बम्बई १९२९)। गुणचन्द्रके ही सम-सामयिक देवेन्द्र अपरनाम नेमिचन्द्र सूरिने भी पूर्णतः प्राकृत पद्यबद्ध महावीर-चरियकी रचना की (वि. सं. ११४१)। इसमें मरीचिसे लेकर महावीर तक छब्बीस भवोंका वर्णन है जिसकी कुल पद्य-संख्या लगभग २४०० है (भावनगर, वि. सं.

१९७३)। इनसे कुछ ही समय पश्चात् (वि. सं. ११६८ के लगभग) देवभद्र ऋषीने भी महावीर-चरित्रकी रचना की (अहमदाबाद, १९४५) ।

(ज) संस्कृतमें महावीर-साहित्य

सत्त्वार्थसूत्र-जैसी सैद्धान्तिक रचनाओंको छोड़ जैन साहित्य सृजनमें संस्कृत भाषाका उपयोग अपेक्षाकृत बहुत पीछे किया गया । (हम जानते हैं कि सिद्धसेन विद्वाकरने अपनी पाँच स्तुतियाँ भगवान् महावीरको ही उद्देशित करके लिखी हैं । आरम्भकालीन काव्यशैलीमें लिखित जटिल या जटाचार्यके 'वरांगचरित' तथा रविवेणके 'पद्मपुराण' (इ. स. ६७६) की ओर संस्कृत जैन साहित्यमें हम निर्देश कर सकते हैं । ये दोनों 'कुवलयमाला' (ईसाके ७७९) से भी पूर्व-कालीन हैं ।) तीर्थंकरोंके जीवन-चरित्र पर महापुराण नामक सर्वांग-सम्पूर्ण रचना जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र द्वारा शक सं. ८१० के लगभग समाप्त की गयी थी । इसके प्रथम ४७ पर्व आदिपुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरतका जीवन-चरित्र वर्णित है । ४८ से ७६ तकके पर्व उत्तरपुराण कहलाता है जिसकी पूरी रचना गुणभद्र-कृत है । और उसमें शेष तेवीस तीर्थंकरों व अन्य शलाकापुरुषोंके जीवनवृत्त हैं । इनमें तीर्थंकर महावीरका चरित्र अन्तिम तीन सर्गोंमें (७४ से ७६ तक) सुन्दर पद्योंमें है जिनकी कुल पद्य-संख्या $५४९ + ६९१ + ५७८ = १८१८$ है (वाराणसी, १९५४) । लगभग पौने तीन सौ वर्ष पश्चात् ऐसे ही एक विशाल त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरितकी रचना हेमचन्द्राचार्यने १० पर्वोंमें की जिसका अन्तिम पर्व महावीर-चरित्रविषयक है (भावनगर, १९१३) । एक महापुरुष-चरित स्वोपज्ञ टीका सहित मेरुतुंग द्वारा रचा गया जिसके पाँच सर्गोंमें क्रमशः ऋषभ, शान्ति, नेमि, पादर्व और महावीरके चरित्र वर्णित हैं । यह रचना लगभग १३०० ई. की है । काव्यकी दृष्टिसे शक सं. ९१० में असग द्वारा १८ सर्गों में रचा गया वर्धमान चरित है (सोलापुर १९३१) । किन्तु यहाँ भी प्रथम सोलह सर्गोंमें महावीरके पूर्व भवोंका वर्णन है और उनका जीवन-वृत्त अन्तिम दो सर्गोंमें । सकलकीर्ति-कृत वर्धमान पुराणमें १९ सर्ग हैं और उसकी रचना वि. सं. १५१८ में हुई । पद्मानन्दि, केशव और वाणीवत्सल द्वारा भी संस्कृतमें महावीर चरित्र लिखे जानेके उल्लेख पाये जाते हैं ।

(क्ष) महावीर-जीवनपर अपभ्रंश साहित्य

समस्त तीर्थंकरों व अन्य शलाकापुरुषोंके चरित्र पर अपभ्रंशमें विशाल और श्रेष्ठ तथा सर्व काव्य-गुणोंसे सम्पन्न रचना पुष्पदन्त कृत महापुराण है (शक सं०

८८७) । इसमें कुल १०२ सन्धियाँ हैं, जिनमें महावीरका जीवन-चरित्र सन्धि ९५ से अन्त तक वर्णित है (बम्बई १९४१) । स्वतन्त्र रूपसे यह चरित्र कवि श्रीधर द्वारा रचा गया । उनकी एक अन्य रचना पाराणाह-चरिउका समाप्ति-काल वि. सं. ११८९ उल्लिखित है, अतः इसी कालके लगभग प्रस्तुत ग्रन्थका रचना-काल निर्दिष्ट है । श्रीधरकी अपभ्रंश रचनाएँ इस कारण भी विशेष रूपसे ध्याना-कर्षक हैं कि कविने अपनेको हरियाणा-निवासी प्रकट किया है । हरियाणा 'आभीरकाणाम्' का अपभ्रंश है जिससे वह आभीर जातिकी भूमि सिद्ध होती है, और काव्यादर्शके कर्ता दण्डीके अनुसार आभीरों आदिकी बोलीके आधारसे अपभ्रंश काव्यकी शैली विकसित हुई थी । अतः कहा जा सकता है कि पाँचवीं-छठी शतीसे लेकर बारहवीं शती तक हरियाणामें अपभ्रंश रचनाकी परम्परा प्रचलित रही । खोजसे इस प्रदेशके कवियोंकी अन्य रचनाओंका पता लगाना, तथा उनके आधारसे उस क्षेत्रकी प्रचलित बोलियोंका तुलनात्मक अध्ययन करना भाषाशास्त्र व ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण होगा ।

विक्रम संवत् १५०० के आस-पास ग्वालियरके तोमरनरेश हुंगर सिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके राज्यकालमें कविवर रघुने अनेक रचनाओं द्वारा अपभ्रंश साहित्यको पुष्ट किया । उनके द्वारा रचित 'सम्मइ-चरिउ' दस सन्धियोंमें पूर्ण हुआ है । नरसेन-कृत 'बड्डमाण-कहा' की रचनाका ठीक समय ज्ञात नहीं । किन्तु इसी कविकी एक अन्य रचना 'सिरिवाल-चरिउ' की हस्तलिखित प्रति वि. सं. १५१२ की है । अतः नरसेनका रचना-काल इसके पूर्व सिद्ध होता है । जयमित्र हल्ल कृत 'बड्डमाण-कव्व' की एक हस्तलिखित प्रति वि. सं. १५४५ की प्राप्त है । ग्रन्थके अन्तमें पद्मनन्दि मुनिका उल्लेख है जो अनुमानतः प्रभाचन्द्र भट्टारकके वे ही शिष्य हैं जिनके वि. सं. १३८५ से १४५० तकके लेख मिले हैं । कविने अपनी रचनाको 'होलिवम्म-कण्णाभरण' कहा है तथा हरिइन्दु (हरिश्चन्द्र) कविको अपना गुरु माना है ।

(अ) महावीर-जीवनपर कन्नड़ साहित्य

संस्कृतमें असंग विरचित 'वर्द्धमानपुराण' से अनेक कन्नड़ कवियोंको स्फूर्ति मिली है । असंगका 'असंग' ऐसे ही लिखते हैं और कन्नड़में इसका अर्थ रजक (घोड़ी) होता है । किन्तु सचमुच 'असंग' शब्द 'असंग' शब्दका जन-साधारण उच्चारण जैसा मालूम होता है । अभी-अभी दूसरे नागयर्म विरचित 'वीरवर्द्धमानपुराण' के एक हस्तलिखित भी प्रकाशमें आया है । इसमें सोलह सर्ग हैं, और उनमें महावीरका पूर्वभव और प्रस्तुत जीवनका वर्णन है । यह एक

धम्मकाव्य है और इसमें कई संस्कृत वृत्तोंका उपयोग हुआ है। इसका काल सन् १०४२ है। उसके बाद आचरणने 'वर्द्धमानपुराण' लिखा है। इनका सम्मानसूचक नाम वाणीवल्लभ था। यह एक चम्पू है और इसकी रचना संस्कृत काव्यशैलीमें हुई है। इसमें भी सोलह सर्ग हैं और कविने कई एक अलंकारोंका उपयोग किया है। इसका काल लगभग सन् ११९५ है। पद्यकविने १५२७ में जनसाधारण शैलीमें सांगत्य छन्दमें 'वर्द्धमानचरित्र' लिखा है। इनकी बारह सन्धियाँ हैं।

(८) बौद्ध त्रिपिटक-पालि साहित्यमें महावीर

जैन आगम ग्रन्थोंमें बुद्धके कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलते। किन्तु बौद्ध त्रिपिटकमें 'निर्गण्ड-नातपुत्त' (निर्गन्ध जातपुत्र) के नामसे महावीर व उनके उपदेश आदि सम्बन्धी अनेक सन्दर्भ पाये जाते हैं। इनका पता लगभग सौ वर्ष पूर्व तब चला जब लन्दनकी पालि टेक्स्ट सोसायटी तथा सेक्रेट बुक्स ऑफ दी ईस्ट नामक ग्रन्थमालाओंमें बौद्ध एवं जैन आगम ग्रन्थोंका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। डॉ. हर्मन याकोबीने आचारांग, कल्पसूत्र, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन सूत्रका अनुवाद किया (से. बु. क्र. २२ व ४५) और उनकी प्रस्तावनामें पालि-साहित्यके उन उल्लेखोंकी ओर ध्यान आकृष्ट किया जिनमें निर्गण्ड-नातपुत्तके उल्लेख आये हैं। तत्पश्चात् क्रमशः ऐसे उल्लेखोंकी जानकारी बढ़ती गयी, और अन्ततः मुनि नगराजजीने 'आगम और त्रिपिटकः एक अनुशीलन' शीर्षक ग्रन्थ (कलकत्ता १९६९) में छोटे-बड़े ऐसे ४२ पालि उद्धरणोंका संकलन किया है जिनसे निस्सन्देह रूपसे सिद्ध हो जाता है कि दोनों महापुरुष सम-सामयिक थे, उनमें महावीर जेठे थे, तथा उनका निर्वाण भी बुद्धसे पूर्व हो गया था। उन्होंने पूरी छान-बीनके पश्चात् बीर-निर्वाण-काल ई. पू. ५२७ ही प्रमाणित किया है।

१५. प्रस्तुत संकलन

तीर्थंकरोंके चरित्रसम्बन्धी अपभ्रंश साहित्यमें प्राचीनतम रचना पुष्पदन्त कृत महापुराण है। चूँकि इस ग्रन्थकी रचना मान्यखेटमें उस समय हुई थी जब वहाँ राष्ट्रकूटनरेश कृष्णराज (तृतीय) का राज्य था, तथा स्वयं कविके कथनानुसार उन्होंने उसकी रचना सिद्धार्थ संवत्सरमें प्रारम्भ कर क्रोधन संवत्सरमें समाप्त की थी, अतः उसका समाप्ति-काल शक ८८७ (सन् ९६५ ई.) सुनिश्चित है।

उक्त महापुराणकी १०२ सन्धियोंमें-से अन्तिम आठ अर्थात् ९५ से १०२वीं सन्धियोंमें भगवान् महावीरका जीवन-चरित्र वर्णित है और उन्हींमें-से प्रधानतया यह संकलन किया गया है। मूलमें विषय-क्रम इस प्रकार है—महावीरके जन्मसे लेकर केवलज्ञान तककी घटनाएँ (सन्धि ९५-९७), महावीरके आधिका संघकी

प्रथम गणिनी चन्दनाका जीवन-वृत्त (सन्धि ९८), जीवन्धर मुनिके पूर्व भव (सन्धि ९९), जम्बूस्वामीकी दीक्षा (सन्धि १००), प्रीतिकर-आख्यान (सन्धि १०१) तथा महावीरनिर्वाण (सन्धि १०२) । इनमें-से जीवन्धर और प्रीतिकरके आख्यानोंको महावीरके ऐतिहासिक जीवन-वृत्तसे असम्बन्ध होनेके कारण पूर्णतया छोड़ दिया गया है, और शेष विवरणोंको इस प्रकार संक्षिप्त किया गया है कि उनमें महावीरका चरित्र निर्वाध धारा रूपसे आ जाये (सन्धि १-३) व उनके गणधर शिष्य जम्बूस्वामीका (सन्धि ४) तथा आर्यिका चन्दनाका (सन्धि ५) चरित्र स्वतन्त्र रूपसे प्रस्तुत हो जाये ।

महावीरके सम-सामयिक मगधनरेश श्रेणिक विम्बिसार थे जिनके प्रश्नोंके आधारसे ही रामस्त जैनपुराण साहित्यका निर्माण माना गया है । किन्तु उनका तथा महावीरकी विशेष भक्त महारानी खेलनाका एवं श्रेणिकके पुत्रोंकी दीक्षादिका वृत्तान्त महापुराणमें नहीं आ पाया । उसकी पूति सन्धि ६-११ में श्रीचन्द्र कृत कहाकोसु क्रमशः सन्धि ५०, १२, १३, १४, ३ और ४९से कर ली गयी है जिससे श्रेणिकसे पूर्वके मगधनरेश चित्रातपुत्र (सन्धि ६) श्रेणिकका राज्य-लाम, धर्मलाम व परीक्षादि (सन्धि ७-९) एवं उनके पुत्र वारिषेण (सन्धि १०) और गजकुमार (सन्धि ११) का वृत्तान्त विविधत् समाविष्ट हो गया है । श्रीचन्द्र कृत कथाकोशका रचनाकाल वि. सं. ११२३ के लगभग (प्रकाशन अहमदाबाद, १०.६९) तीर्थकरके धर्मोपदेशके बिना यह संकलन अपूर्ण रह जाता । अतएव इस विषयका आकलन अन्तिम १२वीं सन्धिमें महापुराणकी सन्धि १०-१२ से किया गया है । इस प्रकार यद्यपि सन्धियोंकी संख्या १२ हो गयी है तथापि वे बहुत छोटी-छोटी हैं और उनमें कुल कदवकोंकी संख्या केवल ७१ है । कदवक भी प्रायः बहुत छोटे-छोटे ही हैं । प्रयत्न यह किया गया है कि अल्पकालमें ही महावीर तीर्थकर व उनके समकाली राजनैतिक परिस्थितियोंका स्पष्ट ज्ञान पाठकोंको हो जावे तथा महाकविकी रचना-शैली व काव्यगुणोंकी रुचिकर जानकारी भी प्राप्त हो जाये । प्रस्तावनामें घटनाओं व महापुरुषोंसम्बन्धी विवेचन साहित्यिक परम्पराको स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे किया गया है । मूल पाठमें समासान्तर्गत प्रत्येक शब्दको लघुरेखा द्वारा पृथक् कर दिया गया है जिससे अर्थ समझनेमें सरलता हो । कुछ स्थानों पर पाठ-संशोधन भी किया गया है, व नयी पद्धति के अनुसार ह्रस्व ए और ओ की मात्राएँ भिन्न रखी गयी हैं । अनुवाद मूलानुगामी होते हुए भी भाषाकी दृष्टिसे मुहावरोंसे हीन न हो यह भी प्रयत्न किया गया है । साथ ही उसमें आये विलुप्त व पारिभाषिक शब्दोंको कुछ खोलकर समझानेका भी प्रयास रहा है ।

इस प्रकार आशा है कि यह छोटा-सा ग्रन्थ संकलन होते हुए भी महावीर भगवान्‌के जीवन-चरित्रविषयक विशाल साहित्यमें अपना एक विशेष स्थान प्राप्त करेगा ।

नयी रचनाका नामकरण भी एक समस्या होती है । विशेषतः जब एक ही विषय पर नयी-पुरानी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हों तब उनके नाम स्पष्टतः पृथक् न होनेसे भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं । प्राकृत व अपभ्रंशमें ऊपर उल्लिखित ग्रन्थ-नामावलिमें महावीर चरित्र, बड्ढमाण-चरित्र, बड्ढमाण-कहा व सम्मइ-चरित्र नाम आ चुके हैं । पुष्पदन्तने इस चरित्र के आदिमें 'सम्मइ' नामसे नायककी वन्दना की है व सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें उनके नामोल्लेख 'वीरसामि', 'वीरणाह', 'बड्ढमाण-सामि' व 'जिणिद' रूपसे किये हैं । अतः मैंने आदि और अन्तके पुष्पिकोल्लेखोंको मिलाकर प्रस्तुत ग्रन्थको वीर-जिणिद-चरित्र कहना उचित समझा ।

— हीरालाल जैन

विषयानुक्रम

सन्धि-१

भगवान्का गर्भावतरण, जन्म और तप [२-२३]

कहचक

- १ मंगलाचरण तथा काव्य-रचनाकी प्रतिज्ञा ।
- २ जम्बूद्वीप, पूर्वविदेह, पुष्कलावती देशके वनमें पुरूरव नामका शबर और शबरी ।
- ३ शबरीका मुनिको मारनेसे शबरको रोकना और उसे मुनिका धर्मोपदेश ।
- ४ अयोध्या नगरीके राजा भरत चक्रवर्ती ।
- ५ भरत चक्रवर्तीकी रानी अनन्तमतीने उस शबरके जीवको मरीचि नामक पुत्रके रूपमें जन्म दिया ।
- ६ मरीचिका जीव पुष्पोत्तर नामक स्वर्गके विमानसे आकर राजा सिद्धार्थ व रानी प्रियकारिणी त्रिशलाका पुत्र हुआ ।
- ७ कुण्डपुरकी शोभा ।
- ८ प्रियकारिणी देवीका स्वप्न ।
- ९ तीर्थंकर महावीरका गर्भावतरण, जन्म तथा मन्दराचल पर अभिवेक ।
- १० भगवान्का नामकरण, स्वभाव-वर्णन, बाल-क्रीडा तथा देव द्वारा परीक्षा ।
- ११ भगवान्को मुनि-शिक्षा ।

सन्धि-२

केवलज्ञानोत्पत्ति [२४-३७]

- १ कूलग्राममें भगवान्को आहारदान ।
- २ उज्जैनीमें भगवान्की रुद्र द्वारा परीक्षा ।
- ३ रुद्रका उपसर्ग विफल हुआ ।
- ४ कौशाम्बीमें चन्दना कुमारी द्वारा भगवान्का दर्शन ।

कथवक

- ५ चन्दना द्वारा भगवान्‌को आहार-दान ।
- ६ भगवान्‌को केवलज्ञानकी उत्पत्ति ।
- ७ भगवान्‌के इन्द्रभूति गौतमादि एकदश गणधर ।
- ८ भगवान्‌का मुनिसंघ सहित विपुलाचल पर्वत पर आगमन ।

सन्धि-३

वीरजिनेन्द्रकी निर्वाण-प्राप्ति [३८-४५]

- १ भगवान्‌का विपुलाचलसे विहार करते हुए पावापुर आगमन ।
- २ भगवान्‌का निर्वाण तथा उनकी शिष्य-परम्परा ।
- ३ प्रस्तुत ग्रन्थ की पूर्व परम्परा ।
- ४ कवि की लोक-कल्याण भावना ।
- ५ कवि-परिचय ।

सन्धि-४

जम्बूस्वामिकी-प्रव्रज्या [४६-५९]

- १ राजा श्रेणिक द्वारा अन्तिम केवली विषयक प्रश्न व गौतम गणधर का उत्तर ।
- २ जम्बूस्वामि-विवाह व गृह में चोर प्रवेश ।
- ३ चोरकी जम्बूस्वामीकी मातासे बातचीत और फिर जम्बूस्वामीसे बार्तालाप ।
- ४ जम्बूस्वामी और विद्युच्चर चोरके बीच युक्तियों और दृष्टान्तों द्वारा वाद-विवाद ।
- ५ दृष्टान्तों द्वारा वाद-विवाद चालू ।
- ६ जन्मकूपका दृष्टान्त व जम्बूस्वामी तथा विद्युच्चरकी प्रव्रज्या ।
- ७ जम्बूस्वामीकी केवलज्ञान-प्राप्ति ।

सन्धि-५

चन्दना-तपग्रहण [६०-७३]

- १ राजा चेटक, उनके पुत्र-पुत्रियाँ तथा चित्रपट ।
- २ राजा श्रेणिकका चित्रपट देखकर चलना पर मोहित होना और उसका राज-कुमार द्वारा अपहरण ।

कड़वक

- ३ ज्येष्ठा-वैराग्य, चेलनी-श्रेणिक-विवाह तथा चन्दनाका मनोवेग विद्याधर द्वारा अपहरण व इरावतीके तीरपर उसका त्याग ।
- ४ चन्दनाका वनमें त्याग, भिल्लनी द्वारा रक्षण तथा कौशाम्बीके सेठ वनदत्तके घर आगमन ।
- ५ सेठानी द्वारा ईष्यविश चन्दनाका बन्धन, महाबोरको आहारदान व तप-ग्रहण ।

सन्धि-६

चिलातपुत्र-परोषह-सहन [७४-८३]

- १ चिलातपुत्रका जन्म ।
- २ चिलातपुत्रको राज्य-प्राप्ति ।
- ३ चिलातपुत्रका राज्यसे निष्कासन व वनवास तथा श्रेणिकका राज्याभिषेक ।
- ४ चिलातपुत्र द्वारा कन्यापहरण, श्रेणिक द्वारा आक्रमण किये जानेपर कन्या-घात तथा वैभारगिरि पर मुनि-दर्शन ।
- ५ मुनिका उपदेश पाकर चिलातपुत्रकी प्रसन्न्या, व्यन्तरी द्वारा उपसर्ग तथा मरकर बहुमिन्द्रपद-प्राप्ति ।

सन्धि-७

श्रेणिक-राज्यलाभ [८४-९१]

- १ जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगधदेश, राजगृहपुर, राजा उपश्रेणिक, रानी सुप्रभा, पुत्र श्रेणिक । सीमान्तनरेश अभिधर्मके प्रेषित ब्रह्म द्वारा राजाका अपहरण व वनमें किरातराजकी पुत्री तिलकावतीसे विवाह ।
- २ किरात-कन्यासे चिलातपुत्रका जन्म । राजा द्वारा राजकुमारोंकी परीक्षा ।
- ३ राजपुत्र श्रेणिक परीक्षामें सफल, किन्तु भ्रातृ-वैरकी आशंकासे उसका निवसित ।
- ४ चिलातपुत्रका राज्याभिषेक व अन्यायके कारण मन्त्रियों द्वारा श्रेणिकका आनयन ।
- ५ चिलातपुत्रका निवसित और श्रेणिकका राज्याभिषेक ।

कहवक

सन्धि-८

श्रेणिक-धर्मलाभ व तीर्थकर गोत्र-बन्ध [९२-९९]

- १ राजा श्रेणिककी आखेट-यात्रा, मुनि-दर्शन व भाव-परिवर्तन ।
- २ श्रेणिकराजा जैन-शासनके भक्त बनकर राजधानीमें लौटे ।
- ३ महावीरके विपुलाचल पर आनेकी सूचना और श्रेणिकका उनकी वन्दना हेतु गमन ।
- ४ महावीरका उपदेश सुनकर राजा श्रेणिककी क्षायिक-सम्यक्त्वकी उत्पत्ति ।

सन्धि-९

श्रेणिक-धर्म-परीक्षा [१००-१०५]

- १ श्रेणिकके सम्यक्त्वकी परीक्षा हेतु देवका धीवर-रूप-धारण ।
- २ देवमुनिके धीवर-कर्मसे लोगोंमें दिगम्बर धर्मके प्रति धृष्टा तथा श्रेणिक द्वारा उसका निवारण ।
- ३ मलिन मुद्राओंके उदाहरणसे सामन्तोंकी शंका-निवारण व देव द्वारा राजाको वरदान ।

सन्धि-१०

श्रेणिक-पुत्र वारिषेणकी योग-साधना [१०६-११३]

- १ वारिषेणकी धार्मिक-वृत्ति । विद्युच्चर चोरकी प्रेयसी गणिकासुन्दरीको चेलना रानीका हार पानेका उन्माद ।
- २ विद्युच्चर चोर द्वारा रानीके हारका अपहरण तथा राजपुरुषों द्वारा पीछा किये जानेपर ध्यानस्थ वारिषेणके पास हार फेंककर पलायन । राजा द्वारा वारिषेणको मार डालनेका आदेश ।
- ३ देवों द्वारा वारिषेणकी रक्षा । राजाके मनानेपर भी मुनि-दीक्षा एवं पलासखेड़-ग्राममें आहार ग्रहण ।
- ४ पूष्पञ्जल श्राद्धाणकी दीक्षा, मोहोत्पत्ति और उसका निवारण ।

कवचक

सन्धि-११

श्रेणिक-पुत्र गजकुमारकी दीक्षा [११४-११९]

- १ श्रेणिक-पत्नी धनश्रीका गर्भधारण, दोहला तथा गजकुमारका जन्म ।
- २ गजकुमारकी दीक्षा, दन्तीपुरकी यात्रा तथा वहाँ पर्वतपर आतापन योग ।
- ३ शिला-सापनसे उपसर्ग, गजकुमारका मोक्ष और राजा तथा मन्त्रीका जैन-धर्म-ग्रहण ।

सन्धि-१२

तीर्थंकरका धर्मोपदेश [१२०-१४३]

- १ भव्योंकी प्रार्थनापर जिनेन्द्रका उपदेश—जीवोंके भेद-प्रभेद ।
- २ एकेन्द्रियादि जीवोंके प्रकार ।
- ३ जीवोंके संज्ञी-असंज्ञी भेद व दश प्राण ।
- ४ गति, इन्द्रिय आदि चतुर्दश जीव-मार्गाणाँ व गुणस्थान ।
- ५ कर्मबन्ध व कर्मभेद-प्रभेद ।
- ६ कषायोंका स्वरूप तथा मोहनीय कर्मकी व अन्य कर्मोंकी उत्तर-प्रकृतियाँ ।
- ७ नाम, आयु, गोत्र व अन्तराय कर्मोंके भेद ।
- ८ सिद्ध जीवोंका स्वरूप ।
- ९ अजीव तत्त्वोंका स्वरूप ।
- १० पुद्गल द्रव्यके गुण । उपदेश सुनकर बनेक नरेशों की प्रसज्या ।

वीरजिणिंदचरित

,

सन्धि १

१

विद्धसिय-रइवइ सुरवइ-णरवइ-
फणिवइ-पयडिय-सासणु ।
पणवेप्पिणु सम्मइ णिंदिय-दुम्मइ
णिम्मल-मग्ग-पयासणु । ध्रुवकां ।

विणासो भवाणं मणे संभवाणं ।
दिणेरे हमाणं पडू उत्तमाणं ।
खयग्गी-णिहाणं तयाणं णिहाणं ।
थिरो सुक्क-माणो वसो जो समाणो ।
अरीणं सुहीणं सुरीणं सुहीणं ।
समेणं वरायं पमत्तं सरायं ।
चलं दुव्विणीयं जयं जेण णीयं ।
णियं णाण-मग्गं कयं सासमग्गं ।
सया णिक्कसाओ सया चत्त-माओ ।
सया संपसण्णो सया जो विसण्णो ।
पहाणो गणाणं सु-दिव्वंगणाणं ।
ण पेम्मे णिसण्णो महावीर-सण्णो ।
तसीसं जईणं जए संजईणं ।
दमाणं जमाणं खमा-संजमाणं ।
उहाणं रमाणं पवुद्धत्थ-माणं ।
दथा-वड्ढमाणं जिणं वड्ढमाणं ।
सिरेणं णमामो चरित्तं भणामो ।
पुणो तस्स दिव्वं णिसामेह कव्वं ।
गणेसेहिं दिट्ठं मए किं पि सिट्ठं ।

अत्ता—पायड-रवि-दीवइ जंयू-दीवइ
पुव्व-विदेहइ मणहरि ।
सीयहिं उत्तरयलि पविमल-सरजलि
पुक्खलवइ-देसंतरि ॥१॥

सन्धि १

भगवान्का गर्भावतरण, जन्म और तप

१

मंगलाचरण तथा काव्य-रचनाकी प्रतिज्ञा

मैं उन सन्मति भगवान्को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने कामदेवका विध्वंस किया है, जिनका शासन सुरपति, नरपति तथा नागपति द्वारा प्रकट किया गया है, जिन्होंने कुसानकी निन्दा की है और निर्मल मोक्ष-मार्गका प्रकाशन किया है। वे भगवान् जन्म-मरणकी परम्पराके विनाशक हैं तथा मनुष्योंके मनमें उत्पन्न हुए अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए सूर्य समान हैं। वे प्रभु पापरूपी ईधनको तप्त करनेके लिए अग्नि समान उत्तम तपोंके निधान हैं। वे स्थिर हैं, मानसे मुक्त हैं और इन्द्रियोंको बशमें करनेवाले हैं, तथा शत्रु और मित्र, सुरी और सुधीजनोंपर समान दृष्टि रखते हैं। उन्होंने अपने समताभाव द्वारा, प्रमादी रागयुक्त तथा दुर्विनोत चंचल मनको पराजित कर दिया है। उन्होंने इस जगत्को ज्ञानके मार्गपर लगाया है, तथा शाश्वत मार्गकी स्थापना की है। वे सर्वदा कषायरहित हैं और विषादहीन हैं। उनके हर्ष भी नहीं है और मायाका भी अभाव है। वे सदैव सुप्रसन्न रहते हैं। आहार, भय आदि संज्ञाएँ उनके नहीं होतीं। वे उन तपस्विगणोंके प्रधान हैं, जिन्होंने दिव्य द्वादश अंगोंका ज्ञान प्राप्त किया है। वे महावीर नामक तीर्थंकर, उत्तम देवांगनाओंके प्रेममें आसक्त नहीं हुए। ऐसे उन जगत् भरके मुनियों और अजिकाओंके स्वामी, दम, यम, क्षमा, संयम एवं अभ्युदय और निःश्रेयस्-रूप दोनों प्रकारके लक्ष्मी तथा समस्त द्रव्योंके प्रमाणके ज्ञानी, दयासे वृद्धिशील वर्धमान जिनेन्द्रको मैं अथना मस्तक झुकाकर नमन करता हूँ और उनके चरित्रका वर्णन करता हूँ। उनके इस दिव्य काव्यको सुनिए। इसका गणवरोंने तो विस्तारसे उपदेश दिया है, किन्तु मैं यहाँ थोड़ेमें कुछ वर्णन करता हूँ।

सूर्यरूपी दीपकसे प्रकाशमान इस जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह नामक मनोहर क्षेत्रमें निर्मल जलके प्रवाहसे युक्त सीता नदीके उत्तर तटपर पुष्कलावती नामक देश है ॥१॥

- वियसिय-सरस-कुसुम-रय-धूसरि ।
 पविमल-मुक्क-कमल-छाहय-सरि ॥
 गिञ्जर-जल-वह-पूरिय-कंदरि ।
 किंणर-कर वीणा-रव-सुंदरि ॥
 ५ केसरि-कररुह-दारिय-मयगलि ।
 गिरि-गुह-णिहि-णिहित्त-मुत्ताहलि ॥
 हिंडिर-कत्थूरिय-मय-परिमलि ।
 कुरर-कीर-कलयंठी-कलयलि ॥
 परिओसिय-थिलसिय-वणयर-गणि ।
 १० सहय-पिय-मणहरि महय-वणि ॥
 सबरु सु-दूसिउ दु-परिणामे ।
 होतउ आसि पूरुरउ णामे ॥
 चंड-कंड-कोरंड-परिगहु ।
 काल-सवरि-आलिं गिय-बिगहु ॥
 १५ अइ-परिरक्सिय-थावर-जंगमु ।
 सायरसेणु णामु जइ-पुंगमु ॥
 बिंधहुं तेण तेत्थु आढत्तउ ।
 आव ण मग्गणु कह ष ण चित्तउ ॥
 ताम तमाल-णील-मणि-वण्णइ ।
 २० सिसु-करि-दंत-खंड-कय-कण्णइ ॥
 घत्ता—तण-विरइय-कीलइ गय-मय-णीलइ
 तरु-पत्ताइ-णियत्थइ ।
 वेरुली-कडि-सुत्तइ पंकय-णेत्तइ
 पल-फल-पिदर-विहत्थइ ॥२॥

भणिउ पुलिंदियाइ मा घायहि ।
 हा हे मूढ ण किं पि विषेयहि ॥
 मिगु ण होइ खुहु वेवु भडारउ ।
 इहु पणविज्जइ लोच-पियारउ ॥

२

जम्बूद्वीप पूर्वविदेह पुष्कलावती देशके वनमें
पुरूरव नामका शबर और शबरी

उस देशमें एक वन था, जो फूले हुए सरस पुष्पोंकी परागसे घूसर था। वहाँके सरोवर सुन्दर फूले हुए कमलोंसे आच्छादित थे। कन्दराएँ झरनोंके जलप्रवाहसे पूरित थीं। वहाँ किन्नरोंके हाथोंकी वीणाओंकी सुन्दर ध्वनि सुनाई देती थी। कहीं सिंहोंके पंजोंसे मदोन्मत्त हाथी विदारित हो रहे थे, तो कहीं पर्वतकी गुफाओंमें गज-मुक्ताओंकी निधि सुरक्षित रखी गयी थी। कहीं घूमते हुए कस्तूरी-मृगोंकी सुगन्ध आ रही थी, तो कहीं कुरुर, शुक और कोकिलाओंका कलरव सुनाई दे रहा था। कहीं वनचरोंके समूह सन्तोषपूर्वक विलासमें मग्न थे, तो कहीं भ्रमरोंकी प्रिय और मनोहर ध्वनि सुनाई पड़ती थी। ऐसे उस मधुकर नामक वनमें पुरूरव नामका एक शबर रहता था। वह अत्यन्त दुर्भावनाओंसे दूषित था। एक समय जब वह अपने प्रचण्ड धनुष और बाणको लिये हुए अपनी कृष्णवर्ण शबरीके साथ उस वनमें विचरण कर रहा था, तभी उसने स्थावर और जंगम जीवोंकी यत्नपूर्वक रक्षा करनेवाले श्रेष्ठ मुनि सागरसेनको देखा। उसने तत्काल उन्हें अपने बाणसे छेद देनेका विचार किया, किन्तु वह अपने बाणको जब तक हाथमें ले तभी उसकी स्त्रीने उसे रोका। वह शबरी तमाल व नीलमणिके सदृश काली थी, छोटे हाथोंके दाँतके टुकड़ोंसे निमित्त कर्ण-भूषण पहने हुए थी तथा तृणके बने कील धारण किये थी। वह हाथोंके मदके समान नीलवर्ण थी, वृक्षोंके पत्तोंसे बने वस्त्र धारण किये थी और लता-बेलीसे बने कटिसूत्रको पहने थी। उसके हाथमें मांस एवं फलोंसे भरी पिटारी थी। उसके नेत्र नील-कमलके सदृश थे ॥२॥

३

शबरीका मुनिको मारनेसे शबरको रोकना
और उसे मुनिका घर्मोपदेश

उस शबरीने शबरसे कहा—मत मार। हाथ रे मूढ़, तू कुछ भी विवेक नहीं करता। यह कोई मृग नहीं है। वे ज्ञानी मुनिराज हैं जो

- ५ तं गिसुणिवि भुय-दंड-विहूसणु ।
 मुक्कु पुलिदें महिहि सरासणु ॥
 पणञ्चिउ मुणि-बारदु सब्भावे ।
 तेणाभासिउ णासिय-पावे ॥
 भो भो धम्म-बुद्धि तुह होज्जउ ।
 १० बोहि-समाहि-सुद्धि संपज्जउ ॥
 जीव म हिंसहि अलिउ म बोल्लहि ।
 कर-यलु परहणि कहिं मि म बल्लहि ॥
 पर-रमणिहि मुह-कमलु म जोवहि ॥
 थण-मंडलि कर-पत्तु म ढोयहि ॥
 १५ को वि म णिंदहि दूसिउ दोसे ।
 संग-पमाणु करहि संतोसे ॥
 पंचुंवर-महु-पाण-णिवायणु ।
 रयणी-भोयणु दुक्खहँ भायणु ॥
 घाह विवज्जहि मणि पडिवज्जहि ।
 २० णिक्खमेव जिणु भस्तिहँ पुज्जहि ॥
 तं गिसुणेवि मणुय-गुण-णासहँ ।
 लइय णिवित्ति तेण महु-मासहँ ॥
 धत्ता—हुउ जीव-दयावरु सवरु णिरक्खरु
 लग्गउ जिणवर-धम्मइ ।
 २५ मुउ कालें जंतें गिलिउ कयंतें
 उप्पण्णउ सोहम्मइ ॥३॥

४

- तेत्थु सु-दिब्ब भोय सुंजेप्पिणु ।
 एक्कु समुदोवसु जीवेप्पिणु ॥
 एत्थु चिउलि भारह-वरिसंतरि ।
 कोसल-विसइ सुसास-णिरंतरि ॥
 ५ णंदण-वण-वरही-रव-रम्महि ।
 परिहा-सलिल-बलय-अविगम्महि ॥
 कणय-विणिम्मिय-मणि-मय-हम्महि ।
 णायर-णर-विरइय-मुह-कम्महि ॥

लोकप्रिय हैं, और सभी उन्हें प्रणाम करते हैं। शबरीकी यह बात सुनकर उस पुलिन्दने अपने भुजदण्डके भूषण धनुषको भूमिपर पटक दिया और सद्भावपूर्वक मुनिवरको प्रणाम किया। पापका नाश करनेवाले उन मुनिराजने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—हे शबर, तुझे धर्म-बुद्धि तथा शुद्ध ज्ञान और समाधि प्राप्त हो। अब तू जीवोंकी हिंसा मत करना, झूठ मत बोलना तथा कभी भी पराये धनको हाथ नहीं लगाना, परायी स्त्रियोंके मुख-कमलकी ओर मत घूरना और उनके स्तन-मण्डलपर हाथ नहीं चलाना। दोषोंसे दूषित होनेपर भी किसीकी निन्दा-नहीं करना, घर-में कितना साज-सामान रखना है इसकी सन्तोष-पूर्वक सीमा कर लेना। बट, पीपल, पाकर, उमर व कठूमर इन पाँच उदुम्बर फलोंका, तथा मधु, मद्य और मांसका भोजन एवं रात्रिभोजन, दुःखके कारण बनते हैं। तू आखेट करना छोड़ दे। इसकी अपने मनमें दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले। प्रतिदिन भक्ति-भाव-पूर्वक जिनभगवान्की पूजा करना। मुक्तिके इस उपदेशको सुनकर उस शबरने मानवीय गुणोंका नाश करनेवाले मधु और मांसके त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। इस प्रकार वह निरक्षर शबर जीवदयामें तत्पर हो गया और जिन-धर्ममें लग गया। काल व्यतीत होनेपर वह यम द्वारा नियला जाकर मरा और सौधर्म स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ ॥३॥

४

अयोध्या नगरीके राजा भरत चक्रवर्ती

उस स्वर्गमें दिव्य भोगोंको भोगकर तथा एक सागरोपम काल जीवित रहकर वह शबर स्वर्गसे च्युत हुआ। उस समय इस विशाल भारतवर्ष-में कोशलदेश धन-धान्यसे सम्पन्न था। उसकी राजधानी अयोध्या नगरीके नन्दनवन मयूरोंकी ध्वनिसे रमणीक थे। उसके चारों ओर खाई-का मण्डल था जो पानीसे भरा था और जिसके कारण वह नगरी शत्रुओंके लिए दुर्गम थी। वहाँके महल स्वर्णसे निर्मित और मणियोंसे जड़े हुए थे। वहाँके नागरिक लोग शुभ कर्म ही करते थे, अशुभ कर्म

१०

सुर-तरु-पल्लव-तोरण-वारहि ।
 वण्ण-वेचिच्च-सत्त-पायारहि ॥
 धूय-धूम-कज्जलिय-गवक्खहि ।
 भूमि-मयारंजिय-सहसक्खहि ॥
 उज्झा-णयरिहि पय-णय-सुरवइ ।
 होतउ रिसइणाहु चिरु णरवइ ॥
 पविमल-णण-धारि सुह-संकरु ।
 पढम-णरिंदु पढम-तित्थंकरु ॥

१५

आइ-वंसु सहएवु महाभहु ।
 भुषण-त्तय-गुरु पुण्ण-मणोरहु ॥
 तहु पहिलारहु सुउ भरहेसरु ।
 जो छक्खंड-वरणि-परमेसरु ॥
 सागहु वर-त्तणु जेण पहासु वि ।
 जित्तउ सुरु वेयइद-णिवासु वि ॥
 विज्जाहर-वइ भय-कंपाविय ।
 णमि-विणमीस वि सेव कराविय ॥

२०

२५ वत्ता—जो सिसु-इरिणच्छिइ सेविउ लच्छिइ
 गंगाइ सिंधुइ सिंचिउ ।
 णव-कमल-दलक्खहि उववण-जक्खहि
 णाणा-कुमुमहि अंचिउ ॥४॥

५

५

ता कंकेली-दल-कोमल-कर ।
 बीणा-वंस-हंस-कोइल-सर ॥
 तासु देवि उत्तुंग-पयोहर ।
 णाम अणंतमइ त्ति मणोहर ॥
 सो सुर-सुंदरि-वालिय-चामरु ।
 ताहि गदिभ जायउ सबरामरु ॥
 सुउ णामे मरीइ विक्खायउ ।
 बहु-लक्खण-समलंकिय-कायउ ॥
 देष-वेउ अचंचंत-विवेइउ ।
 १० णीलजस-मरणे उवेइउ ॥

नहीं। वहाँके तोरण-द्वार कल्पवृक्षोंके पल्लवोंसे सुशोभित थे। वह विचित्र वर्णके सात प्राकारोंसे सुरक्षित था। वहाँके गवाक्ष धूपके धूँसे काले हो रहे थे। वहाँके भूमिभाग इतने सुन्दर थे कि वे इन्द्रका भी मनोरंजन करते थे। ऐसी उस अयोध्या नगरीके राजा ऋषभनाथ थे, जिनके चरणोंमें देवेन्द्र भी नमस्कार करते थे। उन्होंने दीर्घकाल तक राज्य किया। वे विशुद्ध ज्ञानके धारक शुभशंकर (पुण्य और सुखकर्ता) प्रथम नरेन्द्र और प्रथम तीर्थंकर हुए। वे ही आदिब्रह्म, महादेव और महाविष्णु कहलाये। वे तीनों लोकोंके गुरु तथा मनोरथोंके पूरक हुए। उनके प्रथम पुत्र भरतेश्वर थे, जो षट्खण्ड पृथ्वीके सम्राट् हुए। उन्होंने वेताढ्य गिरिपर निवास करनेवाले सुन्दर देहधारो मागधप्रभास नामक देवको भी जीत लिया। उन्होंने विद्याधरोंके स्वामी नमि और विनमि नामक राजाओंको भयसे कम्पायमान कराकर उनसे अपनी सेवा करायी। बालमृगनयनी लक्ष्मी भी उनकी सेवा करती थी। गंगा और सिन्धु नदी-देवियाँ उनका अभिषेक करती थीं तथा नये कमलदलोंके सदृश नेत्रोंवाले उपवन-निवासो यक्ष भी नाना प्रकारके पुष्पोंसे उनको पूजा करते थे ॥४॥

५

भरत चक्रवर्तीकी रानी अनन्तमतीने उस शबरके जीवको
मरोचि नामक पुत्रके रूपमें जन्म दिया

भरतकी रानी अनन्तमती अत्यन्त सुन्दर थी। उसके हाथ कंकली पुष्पोंके दलोंके समान कोमल तथा उसका स्वर वीणा, हंस, बाँसुरी व कोकिलके समान मधुर था। उसी तुंग-पयोधरी देवीके गर्भमें वह शबरका जीव आकर उत्पन्न हुआ, जिसके ऊपर देवलोककी सुन्दरियाँ चमर ढोरती थीं। उनका वह पुत्र मरोचि नामसे विख्यात हुआ। उसका शरीर अनेक शुभ लक्षणोंसे अलंकृत था। जब उसके पितामह देवोंके देव व अत्यन्त ज्ञानवान् नीलांजसा नर्तकोंके मरणसे विरक्त होकर पृथ्वी-

१५

२०

२५

चरण-कमल-जुय-णमियाहंडलु ।
 दिक्खंकिउ मेल्लिवि सहिमंडलु ॥
 हरि-कुरु-कुल-कच्छाइ-णरिंदहिं ।
 समउ णमंसिउ इंद-पडिंदहिं ॥
 ज्ञाणालीणु पियामहु जइयहुं ।
 णत्तउ जइ पावइयउ तइयहुं ॥
 दुक्खर-रिसइ-महा-तय-लग्गउ ।
 भग्ग णराहिव णहु वि भग्गउ ॥
 सरवरसल्लिउ पिरइइ लग्गउ ।
 भुक्खइ भज्जइ लज्जइ णग्गउ ॥
 वक्खलु परिइइ तरु-हल भक्खइ ।
 मिच्छाइट्ठि असक्खु णिरिक्खइ ॥
 वत्ता—बहु-दुरिय-महल्ले मिच्छा-सल्ले
 विविह-देह-संचारइ ।
 भरहेसर-णंदणु संसय-इय-मणु
 चिरु हिंढिवि संसारइ ॥५॥

६

५

१०

दुवई—धुव-णीसासु मुयइ सो तेत्तिय-
 पक्खहिं दुह-विहंजणो ।
 जाणइ ताम जाम छट्ठावणि
 वडिइय-ओहि-दंसणो ॥
 परमागम-साहिय-दिव-भाणि ।
 णिवसंतहु पुप्फुत्तर-विमाणि ॥
 जइयहुं वट्टइ छम्मासु तासु ।
 परमाउ-माउ परमेसरासु ॥
 तइयहुं सोहम्म-सुराहिवेण ।
 पभणिउ कुवेरु इच्छिय-सिवेण ॥
 इइ जंबुदीवि भरहंतरालि ।
 तमणीय-विसइ सोहा-विसालि ॥
 कुंडरि राउ सिद्धत्थु सहिउ ।
 जो सिरिहर मग्गण-वेसरहिउ ॥

मण्डलका राज्य त्यागकर दीक्षित मुनि हो गये और इन्द्र भी उनके चरण-कमलोंको प्रणाम करने लगे, तब इन्द्र और प्रतीन्द्र एवं हरिवंश व कुरुवंशके कच्छादि राजाओंसहित उनके इस पोते मरीचिने भी अपने पितामहको ध्यानलीन अवस्थामें नमन किया और वह उसी समय प्रव्रजित हो गया। किन्तु शीघ्र ही उन भगवान् ऋषभदेवके दुश्चर महातपको असह्य पाकर जब अनेक अन्य दीक्षित राजा तपसे भ्रष्ट हुए, तब वह भी भ्रष्ट हो गया। वह बल्कल धारण करने लगा, वृक्षोंके फल खाने लगा और मिथ्यादृष्टि हो कर असत्य बातोंपर दृष्टि देने लगा। इस प्रकार नाना महान् पापोंसे युक्त मिथ्यात्वरूपी शल्यके कारण उसने अनेक जन्मोंमें अनेक प्रकारके शरीर धारण किये, और वह भरतेश्वर-पुत्र होकर भी मनमें संशयके आघातसे चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करता रहा ॥५॥

६

मरीचिका जीव पुष्पोत्तर नामक स्वर्गके विमानसे
आकर राजा सिद्धार्थ व रानी प्रियकारिणी
(विशाला) का पुत्र हुआ

उस स्वर्गमें देवरूपसे रहते हुए वह सहस्र वर्षमें एक बार आहार करता था और उतने ही पक्षोंमें श्वासोच्छ्वास लेता था। वहाँ समस्त दुःखों का विनाशकर अपने अवधि-दर्शन द्वारा छठीं पृथ्वी तक की बातें जान लेता था। इस प्रकार परमागममें कहे हुए गुणोंसे युक्त दिव्य प्रमाण-वाले उस पुष्पोत्तर विमान में रहते हुए जब अपनी उत्कृष्ट आयुप्रमाणके छह मास शेष रहे तभी सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने जगत्-कल्याणकी कामना से प्रेरित होकर कुबेरसे कहा—इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें विशाल शोभाधारी विदेह प्रदेशमें कुण्डपुर नगरके राजा सिद्धार्थ राज्य करते हैं। वे आत्म-हितैषी हैं और श्रीधर होते हुए भी विष्णुके समान वामनावतार

१५

अकवाल-चोवजु जो देउ रुदुदु ।
 लमहिउ सुमेहिं जो गुण-समुदुदु ॥
 न मिलिउ गहेण जो समर-सूरु ।
 जो धम्माणंदु न सघर-दूरु ॥
 जो नरु अविहंदलि दलिय-मल्लु ।

२०

जो पर-गर-णाहु जणइ सल्लु ॥
 अणिवेसिय-णिय-भंडल-कुरंगु ।
 जो भवणइंदु अविहंडियंगु ॥
 जो कामघेणु पसु-भाव-चुकु ॥
 जो चिंतामणि चिंता-विमुक्कु ॥

२५

अणवरय-चाइ चाएण धणु ।
 असहोयर-रिउ सयमेव कणु ॥
 दो-याहु वि जो रणि सहसवाहु ।
 सुहि-दिण्ण-जीउ जीमूयवाहु ॥
 दालिइहारि रायाहिराउ ।

३०

जो कण्ठरुक्खु नउ कट्टभाउ ॥

वत्ता—पियकारिणि देवि तुंग-कुंभि-कुंभत्थणि ।
 तहु रायहु इह पारीयण-चूडामणि ॥६॥

७

तुवई—एयहँ बिहिं मि जक्ख कमलक्ख
 सलक्खणु रक्खियासवो ।
 चउवीसमु जिणिंदु सुउ होही
 पय-जुय-णविय-वासवो ॥

सम्बन्धी याचक वेषसे रहित हैं। वे दुःखी जनोंको आश्चर्य-जनक दान देकर सुखी बनानेवाले शंभु हैं, किन्तु वे ऐसे उग्र नहीं हैं जो कपाल धारण करके कौतुक उत्पन्न करते हैं। वे गुणोंके समुद्र होते हुए भी समुद्रके समान देवों द्वारा मथित नहीं किये गये। वे समर-शूर होते हुए भी ऐसे मूर्ख नहीं हैं जिसे केतु ग्रह निगल जाये। वे धर्ममें आनन्द मानते हैं और आनन्दपूर्वक धनुष भी धारण करते हैं, तथापि वे अपने घरसे निर्वासित होकर धर्मराज युधिष्ठिरके समान दूर नहीं गये। वे अच्छे-अच्छे मल्लोंको भी पराजित करनेवाले नर थे, किन्तु नर अर्थात् अर्जुनके समान उन्हें बृहन्नला नामक नर्तकीका वेष धारण नहीं करना पड़ा। वे अपने शत्रु-राजाओंके हृदयमें भयरूपी शल्य उत्पन्न करते थे। उनके राज्यमें ग्राम सघनतासे बसे हुए थे, जिसके कारण उनमें मृगोंको बसनेके लिए स्थान नहीं था। वे सर्वांग ऐसे पूर्ण और सुन्दर थे जैसे मानो पृथ्वीपर इन्द्र ही उतर आया हो। वे भुवन-मण्डलके चन्द्रमा थे, किन्तु चन्द्रके समान उनका अंग खण्डित नहीं होता था। वे याचक जनोंको कामनाओंको पूर्ण करनेवाले कामधेनु होते हुए भी कामधेनु जैसी पशु-अवस्थासे मुक्त थे। वे मनमें चिन्तित अभिलाषाओंको पूरा करनेवाले चिन्तामणि होते हुए भी अपने मनमें चिन्ताओंसे विमुक्त रहते थे। वे कर्णके समान निरन्तर दानशील तथा धनुर्विद्यामें ख्याति-प्राप्त थे, तथापि वे कर्णके समान अपने सहोदर भ्राताओंके शत्रु नहीं बने। उनकी भुजाएँ तो दो ही थीं, किन्तु युद्धमें वे सहस्रबाहु जैसी वीरता दिखलाते थे। वे सुधी अर्थात् विद्वानोंको जीविका प्रदान करते थे, अतएव वे साक्षात् जीमूतवाहन थे जिन्होंने अपने मित्रके लिए अपना जीवन दान कर दिया। वे राजाधिराज लोगोंके दारिद्र्यको दूर करनेवाले कल्पवृक्ष थे, तथापि कल्पवृक्षके समान वे काष्ठ एवं कटु भाव-युक्त नहीं थे।

ऐसे उन सिद्धार्थ राजाकी रानी प्रियकारिणी देवी थीं जो विशाल हाथियोंके कुम्भस्थलोंके समान पीनस्तनी होती हुई समस्त नारी-समाज-की चूड़ामणि थीं ॥६॥

७

कुण्डपुरकी शोभा

इन्द्र कुबेरसे कहते हैं कि हे कमल-नयन यक्ष, इन्हीं राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके शुभ लक्षणोंसे युक्त मदिरादि व्यसनोका त्यागी पुत्र चौबोसवी तीर्थकर होगा, जिसके चरणोंमें इन्द्र भी नमन करेंगे।

- ५ एयहँ दोहिँ मि सुर-सिरि-बिलासु ।
करि धणय कणय-भासुरु णिवासु ॥
ता कयउ कुंडपुरु तेण चारु ।
सव्वत्थ रयण-पायार-भारु ॥
सव्वत्थ रइय-णाणा-दुवारु ।
१० सव्वत्थ परिह-परिरुद्ध-चारु ॥
सव्वत्थ फलिय-णंदण-वणालु ।
सव्वत्थ तरुणि-णञ्चण-वमालु ॥
सव्वत्थ धवल-पासायवंतु ।
सव्वत्थ सिहिर-चुंबिय-णहंतु ॥
१५ सव्वत्थ फलिह-बद्धावणिल्लु ।
सव्वत्थ धुसिण-रस-छडय-गिल्लु ॥
सव्वत्थ निहित्त-विचित्त-कुल्लु ।
सव्वत्थ सुकुल्लंधय-पियल्लु ॥
सव्वत्थ वि दिव्व-पसंछि-पिणु ।
२० सव्वत्थ वि मोत्तिय-रइय-रंगु ॥
सव्वत्थ वि वेरुलिण्हिँ फुरइ ।
सव्वत्थ वि ससिकंतेहिँ झरइ ।
सव्वत्थ वि रविकंतेहिँ जलइ ।
सव्वत्थ चलिय-चिबेहिँ चलइ ॥
२५ सव्वत्थ पडह-मइल-रघालु ।
सव्वत्थ णडिय-णड णट्टसालु ॥
सव्वत्थ णारि-णेउर-णिघोसु ।
सव्वत्थ सोम्मु परिगलिय-दोसु ॥
घत्ता—पट्टपंगणि तेत्थु वंविद्य-चरम-जिणिहँ ।
३० छम्भास विरइय रयणमिड्ढि जक्खिबँ ॥७॥

८

दुवई—ठिय-सउहयल-णिहिय-सयणयलइ
सयल-दुहोह-हारिणी ।
णिसि णिइंगयाइ सिचिणावणि
दोसइ सोक्खकारिणी ॥

अतएव हे कुबेर, इन दोनोंके निवास-भवनको स्वर्णमयी, कान्तिमान् व देवोंकी लक्ष्मीके विलास योग्य बना दो । इन्द्रकी आज्ञानुसार कुबेरने कुण्डपुरको ऐसा ही सुन्दर बना दिया । उसके चारों तरफ रत्नमयी प्राकार बन गया जिसके सब ओर नाना प्रकारके द्वार थे और उसके चारों ओर ऐसी परिखा थी जिससे वहाँ शत्रुओंका संचार अवरुद्ध हो जाये । नगरके चारों ओर फल-फूलोंसे सुसज्जित नन्दन वन थे, और स्थान-स्थानपर तरुणी स्त्रियोंके लिए उत्तम नृत्य-शालाएँ थीं । सर्वत्र धवल प्रासाद दृष्टिगोचर होते थे, जिनके शिखर आकाशकी अन्तिम सीमाको चूम रहे थे । उनके तल-भागकी भूमि स्फटिक शिलाओंसे पटी हुई थी, और सभी स्थान केशरके रसके छिड़कावसे गीले हो रहे थे । सर्वत्र रखे गये फूलोंकी विचित्र शोभा थी जिनका भ्रमर रसपान कर रहे थे । समस्त स्थान दीप्तिमान् स्वर्णसे पीला पड़ रहा था, और सर्वत्र मोतियोंसे रचित रंगावली दिखाई देती थी । पूरा भवन वैडूर्य मणियोंसे चमक रहा था, चन्द्रकान्त मणियोंसे जल झर रहा था और सूर्यकान्त मणियोंसे ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी । उसके ऊपर उड़ती हुई ध्वजाओंसे भवन चलायमान सा दृष्टिगोचर हो रहा था । सभी ओर नगाड़ों और मृदंगोंकी ध्वनि सुनाई पड़ रही थी, तथा सर्वत्र नृत्य-शालाओंमें नृत्य और नाटक हो रहे थे, कहीं नारियोंके तूपुरोंकी मधुर ध्वनि सुनाई दे रही थी । सर्वत्र शान्ति व्याप्त थी और कहीं भी द्वेष व अपराधोंका नामोनिशान नहीं था । ऐसे उस राजभवनके प्रांगणमें अन्तिम तीर्थंकरकी वन्दना करनेवाले उस यक्षोंके राजा कुबेरने छह मास तक रत्नोंकी वृष्टि की ॥७॥

८

प्रियकारिणी देवीका स्वप्न

एक दिन जब प्रियकारिणी देवी अपने प्रासादके सौधतल (ऊसरी मंजिल) में स्थित शयनालयमें शयन कर रही थीं, तब उन्हें निद्रामें समस्त दुःखोंका अपहरण करनेवाली और सुखदायी स्वप्नावली दिखाई दो । उस सुरेन्द्रकी अप्सराओंके समूह द्वारा सम्मानित तथा समस्त

- ५ सुखिदच्छरा-थोत्त-संमाणियाए ।
 सुसिद्धत्थ-सिद्धत्थ-रायाणियाए ॥
 सलीलं चरंतो चलो णं गिरिंदो ।
 जिणंयाइ दिट्ठो पमत्तो करिंदो ॥
- १० हिंसेत्तां थिलंबत्त-सण्हा-समेओ ।
 हरी भीसणो दिव्व-पोमाहिंसेओ ॥
 धरं दाम-जुम्मं विट्ठु वीअ-धंतो ।
 रवी रस्सि-जालावलो-विप्फुरंतो ॥
 सरंते सरंतं विसारीण दंदं ।
 घडाणं जुयं लोय-कल्लाण-वंदं ॥
- १५ पहुल्लंत-राईव-राई-णिवासो ।
 पवड्ढंत-वेला-विसासो सरीसो ॥
 पहा-उज्जलं हेम-सेहीर-पीढं ।
 महाहिंद-हम्मं विलासेहिं रुढं ॥
 मरुद्धूय-चिंधं सुभित्ती-विचित्तं ।
 धरं चारु आहंढलीयं पवित्तं ॥
- २० मणीणं समूहं पहा-विप्फुरंतं ।
 परं सोहमाणं तमोहं हरंतं ॥
 जलंतो हुयासो धरायां सधामे ।
 गियच्छेवि दीहच्छि सामा-विरामे ॥
- २५ विउद्धा गया जत्थ रायाहिराओ ।
 धरित्तीस-चूडामणी-घिट्ठ-पाओ ॥
 पियाए सुहं दंसणाणं वरिड्डं ।
 फलं पुच्छियं तेण सिट्ठं विसिट्ठं ॥
 सुओ तुज्झं होही महा-देवदेवो ।
 महा-वीरराओ विमुक्कावलेवो ॥
- ३० महा-वीरवीरो महा-मोक्खगामी ।
 तिलोयस्स वंदो तिलोयस्स सामी ॥

घत्ता—धरपंगणि तासु रायहु सुह-पद्ममारहिं ।
 वुट्ठउ धणणाहु अविहंडिय-धण-धारहिं ॥८॥

बाछाओंको सिद्ध करनेवाले राजा सिद्धार्थको रानी भावी जितेन्द्रकी माताने निम्नलिखित सोलह स्वप्न देखे—

१. लीलामय गतिसे चलते हुए गिरीन्द्रके समान मदोन्मत्त हाथी ।
२. लटकती हुई सास्नायुक्त (गल-कम्बल) से महान् वृषभ ।
३. भोषण सिंह ।
४. दिव्य अभिषेक-युक्त लक्ष्मी देवी ।
५. उत्तम दो पुष्पमालाएँ ।
६. अन्धकारको दूर करता हुआ चन्द्रमा ।
७. किरण-जालावलिसे स्फुरायमान सूर्य ।
८. सरोवरमें चलती हुई दो मछलियाँ ।
९. लोक-कल्याणके प्रतीक वन्दनीय दो कलश ।

१०. झूठे हुए कदओंकी भित्तिसे युक्त इरोदर ।

११. छलती हुई तरंगोंको नियन्त्रित करनेवाला समुद्र ।

१२. प्रभासे उज्ज्वल स्वर्णमय सिंहासन ।

१३. विलासोंसे समृद्ध महानागेन्द्रका प्रासाद ।

१४. पवनसे उड़ती हुई ध्वजाओं सहित उत्तम भित्तियोंसे विचित्र सुन्दर और पवित्र इन्द्रभवन ।

१५. प्रभासे स्फुरायमान अत्यन्त शोभनीय तथा अन्धकारके समूहको दूर करनेवाला मणिपूज ।

१६. जाज्वल्यमान अग्नि ।

अपने निवासगृहमें रात्रिके अन्तिम प्रहरमें इन सोलह स्वप्नोंको देखकर दीर्घनयनी महारानी प्रियकारिणी जाग उठी, एवं वे वहाँ गयीं जहाँ राजाधिराज सिद्धार्थ विराजमान थे, जिनके चरणोंका घर्षण बड़े-बड़े तरेशोंके शिरपर चूडामणियोंसे किया जाता था । उनसे उनकी प्रिया रानीने अपने स्वप्नोंका फल पूछा । राजाने उनका फल शुभ और श्रेष्ठ बतलाया, और विशेष बात यह कही कि तुम्हारे एक पुत्र होगा जो महादेवोंका देव, महान् वीतराग, अभिमानसे मुक्त, महावीरोंका वीर, महामोक्षगामी, त्रैलोक्य द्वारा वन्दनीय, और त्रिलोकका स्वामी होगा । इन्द्रने कुबेरको आदेश दिया कि राजा सिद्धार्थके प्रासादके प्रांगणमें प्रचुर रूपसे निरन्तर वनकी धारावृष्टि होती रहे ॥८॥

६

दुवई—कय-विन्भम-विलास परमेसरि

बाल-सराल-चारिणी ।

कंकण-हार-दोर-कडिसुत्तय—

कुंडल-मउड-धारिणी ॥

५

चंदक-कंति

संपण-किति ।

सिरि हरि सलच्छि

दिहि पंकचच्छि ।

सह किति बुद्धि

कय-नाबम-सुद्धि ।

आसाढ-मासि

ससिचर-पयासि ।

पगलंतर-ति

हण-तिरि-जाति ।

१०

दिस-णिम्मलम्मि

छट्टी-दिणम्मि ।

संसार-सेउ

थिउ गब्भि देउ ।

संपण-हिद्धि

कय कणय-विद्धि ।

जक्खेण ताम

णव-मास आम ।

मासम्मि पत्ति

चित्ता-णिउत्ति ।

१५

सिय-तेरसोइ

जणिओ सईइ ।

जिणु भुवण-णाहु

भम्माइ-देहु ।

मुणि-भासियाई

पण्णासियाई ।

सह दोसयाई

जइयहुँ गयाई ।

णिवुइ जिणिदि

अह-तिमिरयंदि ।

२०

सिरिपासणाहि

लच्छी-सणाहि ।

तणु-कंति-कंतु

तइयहुँ तियंतु ।

बद्धाउमाणु

सिरिबड्ढमाणु ।

जइवहु पहुउ

जय-तिलयभूउ ।

चत्ता—पयणिहि-खीरेहिँ कलसहिँ जिय-छणयंदहिँ ॥

२५

अहिसिन्तु जिणिहु मंदर-सिहरि सुरिंदहिँ ॥१॥

१०

दुवई—पुज्जिउ पुज्जणिज्जु मणि-दामहिँ

भूसिउ भुवण-भूसणो ।

संथुउ चित्त-वित्त-बावारहिँ

कु-समय-रइय-दूसणो ॥

९

तोर्थकर महावीरका गर्भाक्षरणः जन्म तथा
सन्दराचलपर अभिषेक

विभ्रम और विलाससे युक्त बालहंसचारिणी, कंकन, हार, डोर, कटिसूत्र, कुण्डल और मुकुट धारण किये हुए चन्द्र और सूर्यके सदृश कान्तियुक्त तथा कीर्तिसम्पन्न कमलनयना परमेश्वरी श्री, ह्री, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति और बुद्धि, इन देवियोंने स्वयं आकर महारानोके गर्भकी शुद्धि की। आषाढ़ मासके चन्द्रसे प्रकाशमान व अन्धकार-समूहको दूर करनेवाले शुक्लपक्षमें छठी तिथिके दिन जब दिशाएँ निर्मल थीं, तब संसारके सेतुभूत भगवान् महावीर, माताके गर्भमें आकर स्थित हुए। तबसे नव मास तक धरणेन्द्र यक्ष आनन्ददायी स्वर्णको वृष्टि करता रहा। जब चित्रा नक्षत्र युक्त चैत्रमासका आगमन हुआ तब शुक्लपक्षकी त्रयोदशोके दिन उस सतीने स्वर्णकी आभासे युक्त शरीरवान् भुवनाथ जिनेन्द्रको जन्म दिया। जब पापरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए चन्द्रके सदृश लक्ष्मीनाथ श्रीपाद्वर्धनाथ जिनेन्द्रको निर्वाण प्राप्त किये दो सौ पचास वर्ष व्यतीत हुए थे तभी उन शरीरकान्तिसे युक्त जन्म-जरा-मरण-अतीत, व्याधियोंका अन्त करनेवाले, जगत्के तिलकभूत श्री वर्धमान जिनेन्द्र अपनी आयु बाँधकर उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् सुरेन्द्रों-ने जिनेन्द्रको मन्दर पर्वतके शिखरपर ले जाकर पूर्ण चन्द्रकी कान्तिको जीतनेवाले कलशों द्वारा क्षीरोदधिके जलसे उनका अभिषेक किया।

-१०

भगवान्का नामकरण, स्वभाव-वर्णन, बाल-क्रीड़ा
तथा देव द्वारा परीक्षा

भगवान्का अभिषेक करनेके पश्चात् उन देवेन्द्रोंने मणिमय मालाओं द्वारा उनकी पूजा की, जो त्रैलोक्य द्वारा पूजित थे। उन्हें आभूषणोंसे विभूषित किया, जो स्वयं भुवन-भूषण थे, तथा नाना प्रकारके क्रियाकलापों

- ५ आघोसिउ णामें बड्हमाणु ।
जगि भणसि भडारउ कहु समानु ॥
जो पेक्खिबि णउ गंभीरु उयहि ।
जो पेक्खिबि ण थिरु गिरिंदु समहि ॥
- १० जो पेक्खिबि चंदु ण कंतिकंतु ।
जो पेक्खिबि सूरु ण तेयवंतु ॥
मज्झम-भाव सुह-सुक्क-लेसु ।
णं धम्मसु परिट्ठिउ पुरिस-वेसु ॥
बुद्धिय-परमवखर-कारणेहिं ।
जो संजय-विजयहिं चारणेहिं ।
- १५ अवलोइउ सेसवि देवदेउ ।
णट्टउ भीसणु संदेहहेउ ॥
सम्मइ कोक्किउ संजम-धणेहिं ।
विरइय-गुरु-विणय-पयाहिणेहिं ॥
अहिसेय-सलिल-धुय-संदरेण ।
जो णिब्भउ भणिउ पुरंदरेण ॥
- २० तं णिसुणिबि देवें संगमेण ।
होइवि भीमैं उरजंगमेण ॥
णंदणवणि कीला-तरु णिरुद्धु ।
गय सहयर सिसु थिउ तिजगबंधु ॥
- २५ तहु फणि-माणिकइ कंसमाणु ।
अविउलु अचलु वि सिरि-बड्हमाणु ।

धत्ता—फण-मुह-दाढाउ कर फुसंतु णउ संकिउ ।
पुज्जिबि देवेण वीरणाहु तहिं कोक्किउ ॥१०॥

११

हुवई—जे सिसु-दंसणेण रिउणो वि हु
होति विमुक्क-मच्छरा ।
जरस कुमार-काल-परिवट्टण-
वडगय तीस वच्छरा ॥

सहित उनकी स्तुति की जो मिथ्यामतोंमें दूषण दिखानेवाले थे। उनका नाम वर्धमान रखा गया। कवि कहते हैं कि उन भगवान्‌को मैं किसके समान कहूँ ? उन्हें देखकर तो समुद्र भी गम्भीर नहीं ठहरता, ऐसी उनकी गम्भीरता है। गन्धी स्थिरता व नीरता ऐसी है कि उन्हें देखकर पृथ्वी और सुमेरु पर्वत भी स्थिर नहीं कहे जा सकते। वे ऐसे कान्तिवान् हैं कि उन्हें देखकर चन्द्रकी कान्ति कुछ नहीं रहती। तेजस्वी भी वे ऐसे हैं कि उन्हें देखकर सूर्य भी तेजवान् नहीं रहता। वे माध्यस्थ भावसे युक्त तथा शुभ शुक्ललेश्यावाले थे। मानो स्वयं धर्म ही पुरुषका वेष धारण कर आ उपस्थित हुआ हो। संजय और विजय नामक चारण-ऋद्धिधारी देवोंने परमोपदेश रूप वाणी को समझकर ही उनके शैशव-कालमें ही देखकर उन्हें देवोंके देव तीर्थकर जान लिया और उनके भीषण सन्देहका कारण दूर हो गया। संयमधारी मुनियोंने अत्यन्त विनयभावसे उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें सन्मति कहकर पुकारा। उनके अभिषेक-जलसे मन्दर पर्वतको धोनेवाले पुरन्दरने उन्हें निर्भय कहा। देवोंकी सभामें उनकी ऐसी प्रशंसा सुनकर संगम नामक एक देवने उनकी परीक्षा करनी चाही। वह भयंकर सर्पका रूप धारण करके कुण्डपुरके नन्दनवनमें आया, जहाँ कुमार महावीर क्रीड़ा कर रहे थे। वे जिस वृक्षपर क्रीड़ा कर रहे थे, उस क्रीड़ा-वृक्षको उस सर्पने चारों तरफसे घेर लिया। यह देख उनके साथ क्रीड़ा करनेवाले सहचर शिशु सब भाग गये, किन्तु वे त्रिजगत्के बन्धु वहीं ठहरे रहे। वे श्रीवर्धमान निर्व्याकुल और अचल होकर उस भयंकर सर्पके फणपर के माणिक्यका स्पर्श करने लगे। वे उसके फण और मुख की दाढ़ोंका अपने हाथसे स्पर्श करते हुए जरा भी शंकित नहीं हुए। यह देख उस देवने उनकी पूजा की और उन्हें वीरनाथ कहकर पुकारा ॥१०॥

कुमारकालसे ही जिनके दर्शनभावसे शत्रु अपने द्वेष-भावको छोड़ देते थे, उनके कुमारकालकी प्रवृत्तिके तीस वर्ष व्यतीत हो गये। अब

- ५ जो सत्त-हत्थ-सुपमाणियंगु ।
 जे विद्धसिउ दूसहु अणंगु ॥
 णिवेइउ सो मउलिय-करेहिं ।
 संबोहिउ लोयंतिय-सुरेहिं ॥
 अहिंसिचिउ पुणु सयलामरेहिं ।
 १० विज्जिज्जंतउ चामर-वरेहिं ॥
 चंदपह-सिवियहिं पहु चडिणु ।
 तहिं णाह-संड-वणि णवर दिणु ॥
 मग्गसिर-कसण-दसमी-दिणंति ।
 संजायइ तियमुल्लवि महंति ॥
 १५ चोलीणइ चरियावरण-पंकि ।
 हत्थुत्तर-मज्झासिइ ससंकि ॥
 छट्ठोववासु किउ मलहरेण ।
 तवचरणु लइउ परमेसरेण
 मणिमय-पडलें छेपिणु ससेस ।
 २० इंदे खीरण्णवि धित्त केस ॥

धत्ता—परमेट्ठि रिसिंदु
 धिउ पडिवज्जिबि संजमु ।
 थुउ भरह-णरेहिं
 पुण्फयंत-वंदिय-कमु ॥११॥

इय वीरजिणिदचरिण् गढभावतरण-जम्म-तव-वण्णणो णाम
 पढमो संधि ॥१॥

(महापुराणु संधि ९५-९६ से संकलित)

उनके शरीरका प्रमाण पूरे सात हाथ हो गया था, तथापि उन्होंने कामके बशीभूत न होकर कामदेव को जीत लिया था । तभी लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें सम्बोधित किया और हाथ जोड़कर उन्हें वैराग्य-भाव उत्पन्न करा दिया । फिर उत्तम चमरोसे व्यजन करते हुए समस्त देवोंने उनका अभिषेक किया । फिर भगवान् चन्द्रकी प्रभासे युक्त पालकीपर विराजमान हुए और जातूषण्डवनमें पहुँचे । वहाँ उन पापहारी परमेश्वरने, मार्गशीर्ष (अगहन) कृष्णपक्ष दशमीके दिन जब देवोंका महोत्सव हो रहा था और चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी कीर हस्त नक्षत्रोंके बीच स्थित था, तभी अपने चारित्र्यावरण कर्मरूपी मलको दूर कर, षष्ठ उपवास सहित तपश्चरण ग्रहण किया । तभी उन्होंने केश-लोंच किया और इन्द्रने उन केशोंको एक मणिमय पटलमें लेकर क्षीरोदधिमें विसर्जित कर दिया । इस प्रकार वे मुनीन्द्र परमेष्ठी संयम ग्रहण कर आसीन हुए । भारतवर्षकी समस्त जनताने उनकी स्तुति की । कवि पुष्पदन्त भी उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं ॥११॥

इति वीर जिनेन्द्र गम्भावतरण, जन्म और तप विदयक प्रथम
सन्धि समाप्त ॥ सन्धि १ ॥

सन्धि २

१

मणपञ्जय-संजुत्तउ देवदेउ थिर-चित्तउ ।
तार-हार-पंडुर-वरि कूल-गाम-गामइ पुरि ॥ध्रुवकं॥

५

भिवखहि परमेसरु पइसरइ ।
वरि वरि सुसमंजसु संचरइ ॥
मणपञ्जय-गण्यणें परियरिउ ।
कूलहु घर-पंगणि अवयरिउ ॥
रायहु पियंगु-वण्णुज्जलहु ।
पणवंतहु मउलिय-करयलहु ॥
थिउ भुवण-णाहु दिण्णउ असणु ।

१०

णव-कोटि-सुद्धु मुणि-दिव्वसणु ॥
तं लेप्पिणु किर जांणीसरिउ ।
ता भूमि-भाउ रयणहिं भरिउ ॥
देवहिं जयतूरइ ताडियइ ।
गयणयलहु फुल्लइ पाडियइ ॥

१५

भो चारु दाणु उम्बोसियउ ।
अइ-सुरहिउ पाणिउ वरसियउ ॥
मंदाणिलु बूढउ सीयलउ ।
णिउ णर-वंदिउ बहु-गुण-णिलउ ॥
एत्तहि दुक्कम्मइ णिट्ठवइ ।

२०

भीसणि णिज्जणि वणि दिणु गमइ ॥
जिणु जिण-कप्पेण जि चक्कमइ ।
जो पाण-हारि तासु वि खमइ ॥

घत्ता—मुणइ-सीइ-सीयालहँ ओरसियहँ सद्दूलहँ ।
वणि अच्छइ उट्ठुम्भउ रयणिहिं णं थिरु खंभउ ॥१॥

सन्धि २

केवलज्ञानोत्पत्ति

१

कूलग्राममें भगवान्‌को आहार-दान

देवोंके देव भगवान् महावीर स्थिर चित्त तथा मनःपर्यय ज्ञानसे युक्त होकर उस कूलग्राम नामक पुरीमें पहुँचे जहाँके निवास-गृह तारों और हारोंके समान उज्ज्वल दृष्टिगोचर होते थे। वहाँ उन परमेश्वरने भिक्षाके लिए प्रवेश किया और बड़े साम्य-भावसे एक घरसे दूसरे घरकी ओर गमन करने लगे। वे अपने मनःपर्यय ज्ञानरूपी नेत्रसे ही अपने आस-पासके लोगोंके मनको जान रहे थे। वे वहाँके राजा कूलके गृहप्रांगणमें अवतरित हुए। उस प्रियंगु वर्ण-से उज्ज्वल नरेशने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। वे भुवननाथ वहाँ ठहर गये और राजाने उन्हें मुनिके योग्य नव-कोटि-शुद्ध आहार दिया। जब आहार लेकर भगवान् बाहर निकले तब जिस भूमिभागपर उन्होंने आहार लिया था वह रत्नों-से परिपूर्ण हो गया। देवोंने जयध्वनि करते हुए तूर्य बजाये तथा आकाशसे फूल बरसाये। उन्होंने घोषित किया—अहो, यह बड़ा सुन्दर दान हुआ। इस समय अतिसुगन्ध-युक्त पानी बरसा। मन्द और शीतल पवन प्रवाहित हुआ तथा उस अनेक गुणोंके निवास राजा की लोगोंने वन्दना की। यहाँ जिन भगवान् महावीर अपने दुष्कर्मोंको विनष्ट करते हुए उस पुरीके समीप भीषण निर्जन वनमें दिन व्यतीत करने लगे। वे जिनकल्पों चारित्र्यसे अपना चर्या करते थे और जो कोई उनके प्राण हरण करनेको इच्छासे उनके समीप आता था उसके प्रति भी वे समभाव रखते थे। जिस वनमें श्वान, सिंह और शृगाल तथा शार्दूल गर्जना करते हुए चारों ओर विचरण करते थे उसी वनमें वे रात्रिभर खड़े-खड़े ऐसे ध्यान-भग्न रहते थे जैसे मानो वह कोई स्थिर स्तम्भ हो ॥१॥

२

५

ण करइ सरीर-संठप्प-विहि ।
 सुपरीसइ सहइ ण सुयइ दिहि ॥
 वड्डंत-केस-जड-मालियउ ।
 णं चंदणु फणिवल-माणियउ ॥
 उज्जेणिहि पिउवणि भययरिहि ।

१०

तम-कसणहि भीम-विहावरिहि ॥
 अण्णहि विणि सिद्धि-पुरंधि-पिउ ।
 पिउवणि पडिमा-जोएण थिउ ॥
 जोईसरु जण-जणणत्तिहरु ।
 अवलोइउ रुई परमपरु ॥

१५

महँ कय-उवसग्गहु किं तसइ ।
 गिय-चरिय-गिरिवहु किं लहसइ ।
 किं णउ णंदणु पियकारिणिहि ।
 जोयडँ जिणु सम्मइ-धारिणिहि ॥
 इय चित्तिवि जेट्टा-तणुरुहिण ।

२०

पिंगच्छि-मिउडि-भीसण-मुहिण ॥
 बेयाल काण-कंकाल-घर ।
 करवाल-सूल-क्षस-परसुंकर ॥
 पिंगुद्ध-केस दीहर-णहर ।
 किलिकिलि-रव-बहिरिय-भुवणहर ॥

२५

चोइय धाइय हरि दिण्ण-कम ।
 फुफ्फुफुयंत विसि विसविसम ॥

धत्ता—कय-भुवणयल-विमई पुणु वि हरेण रउई ॥
 गिय-विज्जहिँ दरिसाविउ गुरु पाउसु वरिसाविउ ॥२॥

३

पुणु वणयर-गणु कय-पडिखलणु ।
 पुणु धगधगंतु जालिउ जलणु ॥
 देविंद-चंद-इप्प-हरणई ।
 पुणु मुक्कई णाणा-पहरणई ॥

उज्जैनीमें भगवान्की स्रग्धारा परीक्षा

भगवान् अपने शरीरके संस्कारकी कोई क्रिया नहीं करते थे। वे बड़े-बड़े परिषद्गणोंको भी सहन करते थे और धैर्य नहीं छोड़ते थे। अपने बढ़ते हुए केशोंकी जटाओंसे लिपटे हुए वे ऐसे दिखाई देते थे मानो अनेक सर्परूपी मालाओंसे वेष्टित चन्दनका वृक्ष हो। एक दिन उज्जैनीके भयंकर श्मशानमें अन्धकारसे कालो भोषण रात्रिके समय वे सिद्धि रूपी महिलाके प्रियर्पाति प्रतिमा योगसे स्थित थे, तभी उस अवस्थामें लोगोंके जन्म-मरण रूपी व्याधिका हरण करनेवाले परमश्रेष्ठ योगीश्वरको रुद्रने देखा। रुद्रने विचारा—देखूँ, क्या यह उपसर्ग करनेपर अस्त होता है और क्या अपने चारित्ररूपी गिरीन्द्रसे नीचे गिरता है? देखूँ कि यह सम्यक्दर्शन धारण करनेवाली प्रियकारिणी देवीका ही पुत्र जिनेन्द्र है, या नहीं। ऐसा विचार करके उस उपेक्षाके पुत्र रुद्रने लाल आँखें, टेढ़ी भौंहें और भीषण मुख बनाकर काल-कंकालधारी वैताल बनाये जो अपने हाथोंमें तलवार, शूल, क्षप और फरसे लिये थे। उनके केश पिगल वर्ण और खड़े हुए थे, नख बड़े लम्बे थे तथा वे अपनी किलकिलाहटकी ध्वनिसे भुवनरूपी गृहको बहिरा कर रहे थे। रुद्रकी प्रेरणासे वे सब भगवान्की ओर दौड़े। सिंह भी उनपर क्षपट पड़े और भीषण विषधारी सर्प भी उनकी ओर फुफकार करते हुए दौड़ पड़े। इसके अतिरिक्त भी उन रुद्र हरने जो भुवनेमात्रका संहार करनेमें समर्थ थे, अपनी विद्याओं द्वारा भीषण मेघोंको दर्शया और घोर जल वृष्टि की ॥२॥

रुद्रका उपसर्ग विफल हुआ

रुद्रने समस्त वनचरों द्वारा क्षोभ उत्पन्न कराया। धग्धकाती हुई अग्नि भी जलायी और नाना प्रकारके ऐसे अस्त्र-शस्त्र भी छोड़े जिनसे देव, इन्द्र और चन्द्रका भी दर्प चूर-चूर हो जाय। किन्तु रुद्रके समस्त

- ५ सन्वई गयाई विहलाई किह ।
 कियिणहु मंदिरि वीणाई जिह ॥
 सच्चइ-तणएण पवुत्तु हलि ।
 गिरिवर-सुह वियसिय-सुह-कमलि ॥
 वीरहु वीरत्तु ण संचलइ ।
 १० किं मेरु-मिहरि कथइ ढलइ ॥
 इय भणिवि बे वि बंदिवि गयई ।
 बसहारुढई रह-रस-रयई ॥
 चेडय-रायहु लय-ललिय-भय ।
 गिय-पुर-वरि चंदण णाम सुय ॥
 १५ णंदणवणि कीडइ कमल-सुहि ।
 जिह जणणि-जणणु ण वि सुणइ सुहि ॥

घत्ता—विह विलसिय-बम्भीसें गिय केण वि खयरीसें ।
 पुणु गिय-वरिणिहिं भाएँ वणि बल्लिय सु-विजोएँ ॥३॥

४

- गिय-बंधु-विश्वोय-विसण-मइ ।
 तहिं दिट्ठी बाहेँ हंसगइ ॥
 धणयत्ते बसहयत्त-वणिहिं ।
 तेँ दिण्णी वणि-चूडामणिहिं ॥
 ५ वणिणा गिय-मंदिरि णिहिय सइ ।
 रूवेण णाई पच्चक्ख रह ॥
 पडिवक्ख-गुणेहिं विमदियइ ।
 चित्तिउ तहु पियइ सुहदियइ ॥
 एही कुमारि जइ रमइ वरु ।
 १० तो पुणु महु दुक्करु होइ वरु ॥
 एयहिं केरउ सहूँ जोव्वणिण ।
 णासमि वररूउ कुभोयणिण ॥
 इय भणिवि गियंविणि रोसवस ।
 घल्लंति भीस-दुव्वयण-कस ॥
 १५ कोइय-कूरु सराउ भरिउ ।
 सहूँ कंजिण रस-परिहरिउ ॥

उपसर्ग ऐसे विफल हुए जैसे कृपण पुरुषके घर जाकर दीनजन विफल हो वापस हो जाते हैं। तब उन सात्यकी-पुत्र रुद्रने पार्वतीसे कहा—हे प्रफुल्ल-कमलमुखी गिरिवर-पुत्री पार्वती, देखो इस वीरकी वीरता लेश-मात्र भी चलायमान नहीं होती। भला क्या भुम्ह पर्वत कहीं छड़ सकता है? ऐसा कहकर वे दोनों भगवान्की वन्दना करके अपने वृषभपर आरुढ़ हो, रति-रसमें अनुरक्त होते हुए वहाँसे चले गये। उधर चेतकराजाकी, लताके समान कोमल भुजाओंवाली कमलमुखी चन्दना नामकी पुत्री जब अपने नगरके नन्दनवनमें क्रीड़ा कर रही थी, तभी कामवासनासे प्रेरित होकर एक विद्याधरने उसका चुपचाप अपहरण कर लिया। इससे उसके माता-पिता तथा सखी-साथियोंको इसका कोई पता न चला। वह विद्याधर उसे ले तो गया किन्तु बीचमें ही अपनी गृहिणीके क्रोधकी आशंकासे भयभीत होकर उसने उसे वनमें ही छोड़ दिया ॥३॥

४

कौशाम्बीमें चन्दना कुमारी द्वारा भगवान्का दर्शन

अपने बन्धु-वर्गसे बिछुड़कर और उस वनमें अपनेको अकेली पाकर चन्दनाको बड़ा दुःख हुआ। उसी समय उस हंसगामिनीको एक धनदत्त नामक व्याघ्रने देख लिया। उसने उसे अपने साथ ले जाकर उस नगरके श्रेष्ठ धनी वृषभदत्त नामक वणिक्को सौंप दिया। वणिक्ने उस सतीको अपने घरमें रखा। किन्तु वह अपने सौन्दर्यसे साक्षात् रति हो थी। अतएव उस वणिक्को सुभद्रा नामक पत्नीने प्रतिकूल भावनाओंसे प्रेरित होकर विचार किया कि यदि मेरा पति इस कुमारीपर आसक्त हो गया तो फिर मेरे लिए यह घर दुष्कर हो जायेगा। अतएव अच्छा होगा कि मैं कुत्सित भोजन द्वारा इसके यौवनके साथ-साथ सुन्दर रूपको भी नष्ट कर दूँ। ऐसा विचारकर वह स्त्री रोषके वशोभूत हो उसपर भीषण दुर्वचनरूपी कोड़ोंका प्रहार करने लगी। उसे वह नित्य ही एक कटोरे भर रस-विहीन कोढ़ोंका भात कांजीके साथ खानेको दे देती थी।

- २० सा णिच्च देइ तहि णव-णवउ ।
 एत्तहि परमेद्धि सुभइरवउ ॥
 गुरु-पाव-भाव-भर-ववसियउ ।
 विसहेप्पिणु हर-दुव्विलसियउ ॥
 सम-सत्तु-मित्त-जोविय-रमणु ।
 अण्णहिं दिणि भव-समुद्धरणु ॥
 पिडस्थिउ जाणिय-जीव-गइ ।
 २५ कोसंबी-पुर-वरि पइसरइ ॥
 घत्ता—णियल-णिरुद्ध-पयाइ चेइय-णिव-दुहियाइ ॥
 आविधि संमुहियाइ पणवेप्पिणु दुहियाइ ॥४॥

७.

- कोइव-सिस्थिइ सरावि कयइ ।
 सउचीर-विमीसइ हयमयइ ॥
 मुणि-णाहहु करयलि होइयइ ।
 तेण वि णियदिट्ठिइ जोइयइ ॥
 ५ जायाइ भोज्जु रस-दिण्ण-दिहि ।
 अट्टारह-खण्ड-पयार-विहि ॥
 जिण-दाण-पहावे दुइमइ ।
 आयस-धडियइ रोहिय-कमइ ॥
 सज्जण-मण-गयणाणंदणहि ।
 १० परिगलियइ णियलइ चंदणहि ॥
 अमरहिं महुयर-मुह-पेल्लियइ ।
 कुंइ मंदारइ चल्लियइ ॥
 रयणाइ वण्ण-कळुरियाइ ।
 पसरंत-किरण-विप्फुरियाइ ॥
 १५ हय दुंदुहि साहुक्कारु कउ ।
 गुणि-संगे कासु ण जाउ जउ ॥
 कण्णहि गुणोहु विउसेहि थुउ ।
 सहुं बंधवेहि संजोउ हुउ ॥
 वारह-संवळर-तव-चरणु ।
 २० किउ सम्मइणा दुवक्कय-हरणु ॥

इसी बीच रुद्रके द्वारा किये गये उस अत्यन्त भयंकर तथा भीषण पापभावसे प्रेरित होकर किये गये उपसर्गको सहनकर वे परमेष्ठी भगवान् महावीर जो शत्रु-मित्र तथा जीवन और मरण आदि द्वन्द्वोंमें समता-भाव रखते थे, वे एक दिन भव्योंके उद्धारकी भावना रखते हुए तथा जीवोंकी विचित्र गतिको समझते हुए आहारके निमित्त कौशाम्बीपुरमें प्रविष्ट हुए। तभी सांकलसे बैठे हुए पैरोंसे युवत उस दुःखी चेतकराज पुत्रीने भगवान्-के सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम किया ॥४॥

५

चन्दना द्वारा भगवान्को आहार-दान

चन्दनाने अपने कोदोंके भातको छीछसे मिश्रित कर और कटोरेमें रखकर मुनिराजकी हथेलीमें अर्पित कर दिया। भगवान्ने जब उसे अपनी दृष्टिसे देखा तो वह अठारह प्रकारके स्वादिष्ट और नाना रसोंसे युक्त भोजन बन गया। चन्दनाके भगवान्को दिये उस आहार-दानके प्रभावसे उसकी गतिमें बाधा डालनेवाली वे लोहेकी बनी सांकलें टूटकर गिर गयीं जिसे सज्जनोंके अन्तःकरण और नेत्रोंको बड़ा आनन्द हुआ। देवोंने भ्रमरोंके मुखसे प्रेरित झंकारयुक्त मन्दार पुष्पोंकी वर्षा की। उन्होंने नाना वर्णोंसे विचित्र तथा अपनी फैलती हुई किरणोंसे स्फुरायमान रत्नोंकी भी वृष्टि की, दुन्दुभि भी बजायी और साधु-साधुका उच्चारण भी किया। भला गुणीजनोंके संसर्गसे किसे उल्लास नहीं होगा? विद्वानोंने उस कन्याके गुणोंकी स्तुति की। उसका अपने माता-पिता आदि बान्धवोंके साथ संयोग भी हो गया।

सन्मति भगवान्ने दुष्कर्मोंका हनन करते हुए बारह वर्ष तक तपश्चरण किया। अपनी उस चन्दना नामक वहनके अहिंसा और

पोसंतु अहिंस खंति ससहि ।
 भयवंतु संतु विहरंतु महि ॥
 गउ जिमिहय-गामहु अइ-णियडि ।
 सुविउलि रिजुकूला-णइहि तडि ॥

२५ घत्ता—मोर-कीर-सारस-सरि लवआणम्मि मणोहरि ॥
 साल-मूलि रिसि-राणउ रयण-सिलहि आसीणउ ॥५॥

६

उट्टेणुववासं हयदुरिणं ।
 परिपालिय-तेरह-विह-चरिणं ॥
 बइसाह-मासि सिय-इसमि दिणि ।
 अवरणइ जायइ हिमं-किरणि ॥

५

हत्थुत्तर-मज्झ-समासियइ ।
 पहु वडिवणणउ केवल-सियइ ॥
 घणघणइ चाइकम्मइ हयइ ।
 खुहियाइ क्षत्ति तिणि वि जयइ ॥

१०

घंटा-रव हरि-रव पडह-रव ।
 आया असंख सुर संख-रव ॥
 वंदियउ तेहि वीराहियइ
 सुत्तामउ चरण-जुयलु णवइ ॥
 किउ समवसरणु गय-सर-सरणु ।
 उवइउउ तिहुवण-जण-सरणु ॥

१५

आहंडलेण पण्फुल्ल-मुहु ।
 सेणिय हुं आणिउ दिय-पमुहु ॥
 महु संसयेण संभिण्ण मइ ।
 जिणु पुच्छिउ जीवहु तणिय गइ ॥
 णाहें महु संसउ णासियउ ।

२०

मइ अण्णउ दिक्खइ भूसियउ ॥
 मइ समउ समण-भावहु गयइ ।
 पावइयइ दियहु पंचसयइ ॥

घत्ता—पत्ते मासे सावणि बहुले पाखिवए दिणि ॥
 उण्णणउ चउ-बुद्धिउ महु सत्त वि रिसि-रिद्धिउ ॥६॥

क्षमा-भावोंका पोषण करते हुए तथा पृथ्वीपर विहार करते हुए वे भगवान् ऋषिराज जम्भिका नामक ग्रामके अति विकृत ऋजुकूला नदीके विशाल तटवर्ती मनोहर उद्यानमें जहाँ मयूर, शुक और सारस क्रीड़ा कर रहे थे वहाँ सालवृक्षके मूलमें छड़ी हुई रत्नशिलाएँ बिखर गयीं ॥५॥

६

भगवान्को केवलज्ञानकी उत्पत्ति

पापका हरण करनेवाले षष्ठोपवास करते हुए तथा तेरह प्रकारके चारित्रिका पालन करते हुए भगवान् अपनी तपस्यामें लीन रहने लगे । फिर वैशाखमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको अपराह्णमें जब चन्द्र हस्त और उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्रके मध्यमें स्थित था तब भगवान्को केवल-ज्ञानरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई । उनके सघन घातिकर्म विनष्ट हो गये । उस समय तीनों लोकोंमें जागृति उत्पन्न हुई । घण्टा, पटह तथा शंखोंकी ध्वनि एवं सिंहनाद करते हुए असंख्य देव आ उपस्थित हुए । उन्होंने महावीर भगवान्की वन्दना की । इन्द्रने भी उनके चरण-युगलमें नमन किया । फिर उन्होंने समवशरणकी रचना की जिसके मध्यमें कामको दूर करने-वाले एवं भुवनेके लोगोंको आश्रयभूत भगवान् विराजमान हुए । गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक, उस समय इन्द्र प्रसन्नमुख होकर मुझ द्विज-प्रमुखको यहाँ ले आया । उस समय मेरी मति संशयसे भ्रान्त थी, अतएव मैंने जिनेन्द्रसे जीवकी गतिके विषयमें प्रश्न किया । भगवान्ने मेरे संशयको दूर कर दिया, तब मैंने अपनेआपको मुनि-दीक्षासे विभूषित किया । मेरे साथ अन्य पाँच सौ द्विज भी प्रद्वज्या लेकर श्रमण बन गये । तत्पश्चात् श्रावणमासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका दिन आनेपर मुझे चारों प्रकारकी बुद्धि तथा सातों ऋषि-ऋद्धियाँ भी उत्पन्न हो गयीं ॥६॥

७

महंतो महाणाणवंतो सभूई ।
 गणी वाडभूई पुणो अग्निभूई ॥
 सुधम्मो मुणिदो कुआयास-चंदो ।
 अणिदो णिवंदो चरित्ते अमंदो ॥
 ५ इसी मोरि मुंडी सुओ चत्त-मावो ।
 समुपण्ण-वीरंघि-राईव-भावो ॥
 सया सोहमाणो तवेणं खगामो ।
 पवित्तो सचित्तेण मित्तेय णामो ॥
 सयाकंपणो णिच्चलंको पहासो ।
 १० विमुक्कंग-राओ रई-णाह-णासो ॥
 इमे एवमाई गणेशा मुणिल्ला ।
 जिणिदस्स जाया असल्ला महल्ला ॥
 स-पुब्बंग-धारीण मुक्कावईणं ।
 पसिद्धाई गुत्ती-सयाइं जईणं ॥
 १५ दहेक्कणयाइं तहिं सिकखुयाणं ।
 समुम्मिल्ल-सव्वावढी-चक्खुयाणं ॥

घत्ता—मोहें लोहें चत्तउ तिहिं सएहिं संजुत्तउ ॥
 एककु सहसु संभूयउ खम-दम-भूसिय-रुवउ । ७॥

८

पंचेव चउत्थ-णाण-धरहं ।
 सत्तेव सुक्केयलि-जइ-वरहं ॥
 चत्तारि सयइं वाई-वरहं ।
 ५ दिय-सुगय-कविल-हर-णय-हरहं ॥
 छत्तीस सहासईं संजईहिं ।
 भणु एक लक्खु मंदिरजईहिं ॥
 लक्खाइं तिणिण जहिं सावइहिं ।
 सुर-देवहिं मुक्क-संख-गइहिं ॥
 संखेज्जएहिं तिरिणहिं सहू ।
 १० परमेट्टि देव सोक्खाइं महू ॥

७

भगवान्‌के इन्द्रभूति गौतम आदि एकादश गणधर

महाज्ञानवान् एवं विभूतियुक्त इन्द्रभूति गौतम महावीर भगवान्‌के श्रेष्ठ गणधर हुए। दूसरे वायुभूति, तीसरे अग्निभूति, चौथे सुधर्म मुनीन्द्र जो अपने कृतरूपी आकाशके चन्द्रमा थे, अर्निद्य, नर-वन्द्य तथा चारित्र्यमें अमंद थे। पाँचवें वर्धाय भौष्य, छठे मुण्डि (भौष्य), सातवें सुत (पुत्र) जो इन्द्रियोंकी आसक्तिसे रहित तथा वीरभगवान्‌के चरणकमलोंके भक्त थे। आठवें मन्त्रेय जो महानपसे शोभायमान, इन्द्रियजित् व शुक्ल-ध्यानी तथा चित्तसे पवित्र थे। नवमें अकम्पन जो सदैव तपस्यामें अकम्प रहते थे। दसवें अचल और ग्यारहवें प्रभास जो देहके अनुरागसे रहित तथा कामदेवके विनाशक थे। जितेन्द्र भगवान्‌के ये ग्यारह गणधर मुनि हुए जो शल्य-रहित और महान्‌ थे। इनके अतिरिक्त भगवान्‌के तीन सौ शिष्य ऐसे थे, जो समस्त पुरवों एवं अंगों के ज्ञाता थे, सुप्रसिद्ध थे एवं अन्नतोंके त्यागी अर्थात् महाव्रती थे। भगवान्‌के नौ सौ शिष्य ऐसे थे जिनके सर्वाविधि ज्ञानरूपी चक्षु खूल गये थे अर्थात् जो सर्वविधि-ज्ञान-धारी थे। भगवान्‌के संघमें एक हजार तीन सौ ऐसे मुनि भी थे जो मोह और लोभके त्यागी तथा क्षमा और दम आदि गुणोंसे भूषित थे ॥७॥

८

भगवान्‌का मुनिसंघसहित विपुलाचल पर्वतपर आगमन

भगवान्‌के संघमें पाँच चतुर्थ-ज्ञान-धारी अर्थात् मनःपर्ययज्ञानी तथा सात केवलज्ञानी मुनि भी थे।

उनके चार सौ ऐसे श्रेष्ठ वादी मुनि थे जो द्विज, सुगत (बुद्ध), कपिल और हर (शिव) इनके सिद्धान्तोंका खण्डन करनेमें समर्थ थे। इन मुनियोंके अतिरिक्त संघमें छत्तीस सहस्र संयमिनी अर्थात् अजिकाएँ, एक लाख गृहस्थ श्रावक तथा तीन लाख श्राविकाएँ थीं। देव और देवियोंकी तो संख्या असंख्य थी। उन परमेश्वरी देवके साथ संख्येय तिर्यच भी थे जो उनके साथ रहनेमें सुखका अनुभव करते थे।

१५

णाणा-विहोय-रंजिय-सुरइ ।
 विहरेप्पिणु वेउ गामपुरइ ।
 सम्मत्त-धोय-मिच्छा-मलइ ।
 संबोहिवि भन्व-जीव-कुलइ ॥
 विहरंतु वसुह विद्धत्थ-रइ ।
 विउलदरि पणइउ भुत्तमजइ ॥
 आवेप्पिणु दुह-णिण्णास-थरू ।
 सेणिय पई वंदिउ तित्थयरू ॥
 पुच्छियउ पुराणु सहंतु पई ।
 भासियउ असेसु वि तुज्झु मइ ॥

२०

घत्ता—णिसुणिवि गोत्तमभासियं भरहाणंद-विहूसियं ॥
 संबुद्धा विसद्वर-गरा पुप्फयंत-जोईसरं ॥८॥

इय वीरजिणिदत्तरिप् केवलणाणुप्पत्तिवण्णणो नाम
 विदिओ सन्धी ॥२॥

इस विशाल चतुर्विध संघसहित एवं नाना विभूतियों द्वारा देवोंको भी अनुराग उत्पन्न करते हुए भगवान् ने अनेक ग्रामों एवं नगरोंमें विहार किया तथा भव्य जीवोंके विशाल समुदायोंका सम्बोधन करके सम्यक्-दर्शनरूपी जलसे उनके मिथ्यात्वरूपी मलको धो डाला । वे त्रिभुवन-नाथ वसुधापर विहार करते हुए तथा काम-व्यसनको दूर करते हुए राजगृहके समीप विपुलाचल पर्वतपर पहुँचे । गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक, तूने विपुलाचलपर आकर उन दुःख-विनाशक तीर्थकर भगवान् महावीरकी वन्दना की । तूने महापुराण सम्बन्धी प्रश्न भी किये जिनके उत्तरमें मैंने तुझे समस्त पुराण कह सुनाया । गौतम गणधरके उस भाषणको सुनकर समस्त भारतदेश आनन्दसे विभूषित हो गया तथा पुष्पदन्त कवि कहते हैं, नाग मनुष्य तथा योगेश्वर सभीका संबोधन हो गया ॥८॥

इति वीरजिनेन्द्र चरितमें केवलज्ञानोत्पत्ति विषयक

द्वितीय सन्धि समाप्त ॥ सन्धि २॥

(महापुराण सन्धि १७ से संकलित)

सन्धि ३

वीर-जिणिंद-णिन्वाण-पत्ति

अंत-तित्थणाहु वि महि विहरिवि ।
जण-दुरियाहँ दुलंघहँ पहरिवि ॥
पावा-पुरवरु पत्तउ मणहरि ।
णव-तरु-पल्लवि वणि बहु-सरवरि ॥
संठिउ पविमल-रयण-सिलायलि ।
रायहंसु णावइ पंकय-दलि ॥
दोणिण दियहँ पविहारु मुएप्पिणु ।
सुक्क-झाणु तिउजउ झाएप्पिणु ॥

५ घत्ता—णिन्वत्तिइ कत्तिइ तम-कसणि पक्कल चउइसि-वासरि ।
१० थिइ ससहरि दुहँहरि साइवइ पन्निम-रयणिहि अवसरि ॥१॥

२

कय-तिजोय-सुणारोहु अणिट्टउ ।
किरिया-छिण्णाइ झाणि परिट्टउ ॥
गिहयावाइ-चउक्कु अदेहउ ।
वसु-सम-गुण-सरीरु णिण्णेहउ ॥
रिसि-सहसेण समउ रय-छिंदणु ।
सिद्धउ जिणु सिद्धत्थहु णंदणु ॥
तियस-विलासिणि णन्निउ तालहिं ।
अमरिंदहिं णव-कुवलय-मालहिं ॥
णिन्वुइ वीरि गलिय-मय-रायउ ।
इंदभूइ गणि केवलि जायउ ॥
१० सो विउलइरिहि गउ णिन्वाणाहु ।
कम्म-विमुक्कउ सासय-ठाणाहु ॥

सन्धि ३

वीर जिनेन्द्रकी निर्वाण-प्राप्ति

१

भगवान्‌का विपुलाचलसे विहार करते हुए पावापुर आगमन

वे अन्तिम तीर्थकर भगवान्‌ महावीर विपुलाचलसे चलकर पृथ्वीपर विहार करते हुए एवं जनताके दुर्लभ दुष्कर्मोंका अपहरण करते हुए पावापुर नामक उत्तम नगरमें पहुँचे। उस नगरके समीप एक मनोहर वन था, जहाँ वृक्ष नये पल्लवों से आच्छादित थे और अनेक सरोवर थे। उस वन में भगवान्‌ एक विशुद्ध रत्नशिला पर विराजमान हुए, जैसे मानो एक राजहंस कमल-पत्रपर आसीन हो। वहाँसे उन्होंने दो दिन तक कोई विहार नहीं किया और वे तृतीय शुक्लध्यानमें मग्न रहे। फिर कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन रात्रिके अन्तिम भागमें जब चन्द्र सुखदायी स्वातिनक्षत्रमें स्थित था, तब उन्हें निर्वाणकी प्राप्ति हो गयी ॥१॥

२

भगवान्‌का निर्वाण तथा उनकी शिष्य-परम्परा

भगवान्‌ने अपने मन, वचन और काय इन तीनों योगोंका भले प्रकार निरोध करके छिन्न-क्रिया-निवृत्ति नामक ध्यान धारण किया। उन्होंने चारों अधाति कर्मोंका नाश कर डाला। और इस प्रकार ये सिद्धार्थ राजा-के पुत्र जिनेन्द्र महान्‌ जिन, राग-द्वेषरहित होकर तथा समस्त पाप रूपी रजको दूर करके, शरीर-रहित होते हुए, सम्यक्त्व आदि अष्टगुणोंसे युक्त सिद्ध हो गये। उनके साथ अन्य एक सहस्र मुनि भी सिद्धत्वको प्राप्त हुए। उस समय नये कमल-पुष्पोंकी मालाओंको धारण किये हुए सुरेन्द्रोंने ताल दे देकर, देवलोककी अप्सरगणोंका नृत्य कराया।

वीर भगवान्‌के निर्वाण प्राप्त करनेपर मद और रागको विनष्ट कर इन्द्रभूति गणधरने केवलज्ञान प्राप्त किया। वे अपने कर्मोंसे मुक्त होकर,

१५

तहिँ वासरि डप्पणउ केवलु ।
मुणिहि सुधम्महु पक्खालिय-मलु ॥
तणिगवाणइ जंघू-णासुहु ।

२०

पंचमु दिव्व-णाणु इय-कामहु ॥
णंदि मु-णंदिमित्तु अवरु वि मुणि ।
गोवद्धणु चउत्थु जलहर-सुणि ॥
ए पच्छइ समत्थ सुय-पारय ।

२५

गिरसिय-मिच्छायम णिरु णीरय ॥
पुणु वि विसह-जइ पोढिलु खत्तिउ ।
जउ णाउ वि सिद्धत्थु इयत्तिउ ॥
दिहिसेणकु विजउ बुद्धिल्लउ ।
गंगु धम्मसेणु वि णीसल्लउ ॥
पुणु णक्खत्तउ पुणु जसवालउ ।
पंडु णाम धुवसेणु गुणालउ ॥

धत्ता—अणुकंसउ अप्पउ जिणिवि थिउ पुणु सुहदुदु जग-सुहयरु ॥
जसमदुदु असुदुदु अमंद-मइ णाणे णावइ गणहरु ॥२॥

३

५

भइबाहु लोहंकु भडारउ ।
आयारंग-धारि जग-सारउ ॥
एयहिँ सव्वु सत्थु मणि माणिउ ।
सेसहिँ एककु देसु परियाणिउ ॥
पुव्वयालि सुइ णिसुणिय भरहें ।
राएँ रिउ-बहु-दाधिय-विरहें ॥
एव राय-परिवाडिइ णिसुणिउ ।
धम्मु महा-मुणि-णाहहिँ पिसुणिउ ॥
सेणिय-राउ धम्म-सोयारहें ।
पच्छिल्लउ वज्जिय-भय-भारहें ॥

१०

जिणसेणेण वीरसेणेण वि ॥
जिण-सासणु सेविउ मय-गिरि-पवि ॥
ताहें वि पच्छइ बहु-रस-णडियइ ।
भरहें काराविउ पद्धडियइ ॥

विपुलगिरि पर्वतपर निर्वाणरूपी शाश्वत स्थानको प्राप्त हो गये। उसी दिन सुधर्म मुनिको पापमलका प्रक्षालन करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुधर्म मुनिका निर्वाण होनेपर कामको जीतनेवाले जम्बू नामक गणधरको वहीं पंचम दिव्यज्ञान अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उक्त तीन प्रधान केवलज्ञानी गणधरोंके पश्चात् क्रमशः नन्दि, नन्दमित्र अपर (अपराजित), और चौथे गोवर्धन तथा पाँचवें भद्रबाहु, ये मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले समस्त श्रुतज्ञानके पारगामी अर्थात् श्रुतकेवली हुए जिन्होंने मिथ्यात्वरूपी मलको दूर कर शुद्ध वीतराग भाव प्राप्त किया। उनके पश्चात् (ग्यारह अंगों तथा दशपूर्वोंके ज्ञाता क्रमशः निम्नलिखित एकादश मुनि हुए)—विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिल, गंग और निःशल्य धर्मसेन। इनके पश्चात् नक्षत्र, यशपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस, ये पाँच ग्यारह अंगधारी हुए। कंसके पश्चात् सुभद्र व यशोभद्र मुनि हुए जो आत्मजयी, जनसुखकारी, महान् तीव्रबुद्धि तथा गणधरके समान ज्ञानी थे ॥१॥

३

प्रस्तुत ग्रन्थकी पूर्व परम्परा

यशोभद्रके पश्चात् भद्रबाहु तथा लोहाचार्य भट्टारक हुए। ये (चारों आचार्य) जगत्के सारभूत आचारांगके धारी थे। इन्होंने आचारांग शास्त्रका पूर्णज्ञान अपने मनमें धारण किया था, तथा शेष आगमोंका उन्हें केवल एकदेश अर्थात् संक्षिप्त ज्ञान था। पूर्व कालमें जिस श्रुतज्ञानको शत्रुओंकी वधुओंकी वैधव्य दिखलानेवाले (शत्रु-विजयी) राजा भरतने सुना था, वही राजपरिपाटीसे निरन्तर सुना जाता रहा और उसी धर्मको महा मुनिनाथोंने प्रकट किया। उन संसारके भयरूपी भारको दूर करनेवाले धर्मश्रोताओंमें सबसे पिछले राजा श्रेणिक हुए। आचार्य वीरसेन और जिनसेनने भी उस जैन शासनकी सेवा की जो मदरूपी पर्वतका वज्रके समान विनाशक है। उनके पश्चात् उसे नाना

- १५ पडिवि सुणिवि आचणिवि णिम्मलि ॥
 पयडिउ मामइए इय महियलि ॥
 कम्म-क्खय-कारणु गणि-दिट्ठ ॥
 एव महापुराणु भइ सिट्ठ ॥
 एत्थु जिणिद-मग्गि उणाडिउ ॥
 २० दुल्लि-विहीने जं णइ सादिउ ॥
 तं महु खमहु तिलोयहु सारी ॥
 अरुहुमाय सुयएवि भडारी ॥
 चउयीस वि महु कलुस-खयंकर ॥
 देतु समाहि बोहि तित्थंकर ॥
 २५ घत्ता—दुहु छिदउ णंदउ सुयणयलि णिरुवमु कण्ण-रसायणु ॥
 आयण्णउ मण्णउ ताम जणु जाम चंदु तारायणु ॥३॥

४

- वरिसउ मेह-जालु वसुहारहिं ।
 महि पिक्खउ बहु-धण्ण-पयारहिं ॥
 णंदउ सासणु वीर-जिणेसहु ।
 सेणिव णिग्गउ णरय-णिवासहु ॥
 ५ लग्गउ णइवणारंभहु सुरवइ ।
 णंदउ पय सुहु णंदउ णरवइ ॥
 णंदउ देसु सुहिक्खु वियंभउ ।
 जणु-मिच्छत्तु दुचित्तु णिसुंभउ ॥
 पडिवणिगय-परिपालण-सूरहु ।
 १० होउ संति भरहहु वर-वीरहु ॥
 होउ संति बहु-गुण-गणवंतहं ।
 संतहं दयवंतहं भयवंतहं ॥
 होउ संति संतहु दंगइयहु ।
 होउ संति सुयणहु संतइयहु ॥
 १५ जिण-पय-पणमण-वियलिय-गव्वहं ।
 होउ संति णोसेसहं भव्वहं ॥
 घत्ता—इय दिव्वहु कव्वहु तणउ फलु लहु जिणणाहु पयच्छउ ॥
 सिरि-भरहहु अरुहहु जहिं गमणु पुप्फयंतु तहिं गच्छउ ॥४॥

रसोंसे अटित पद्धडिया छन्दमें महामन्त्रि भरतने लिखवाया । उसे पढ़कर, सुनकर व कानोंमें देकर मामैया द्वारा वही निर्मल महीतल पर प्रकट किया गया । गणधरों द्वारा उपदिष्ट यह पुराण कर्मक्षयका कारण है । इसी दृष्टिसे मैंने इस महापुराणकी सृष्टि की है । इस जिनेन्द्र मार्गके कथनमें मुझ बुद्धिहीन द्वारा जो कुछ कम या अधिक कहा गया हो उसे त्रैलोक्यकी सारभूत अरहंत भगवान् द्वारा प्रादुर्भूत पूज्य धृतदेवी क्षमा करें । ने लौबीसों तीर्थंकर, जो सुगन्धर गणोंका क्षमा करनेवाले हैं, मुझे समाधि और बोधि प्रदान करें । यह अनुपम कर्ण-रसायनरूप रचना भुवतल पर दुःखोंका नाश करे और आनन्द उत्पन्न करे, तथा लोग उसे तब तक श्रवण और मनन करें जबतक आकाशमें चन्द्र और तारा-गण विद्यमान हैं ॥३॥

४

कविकी लोक-कल्याण भावना

मेघ-समूह यथासमय संपत्तिधाराओंसे वर्षा करें । पृथ्वी प्रचुर धन-धान्यसे भरी रहे । वीर जिनेन्द्रका शासन जीवोंको आनन्ददायी हो । राजा श्रेणिक अपने नरक-निवाससे बाहर निकलें और आगामी तीर्थ-करके रूपमें देवेन्द्र उनकी अभिषेक-विधिमें लग जावें । समस्त प्रजा सुखसे आनन्द करे और शासकगण भी प्रसन्न रहें । देशभरमें आनन्द हो और सुभिक्ष फैला रहे । लोग अपने मिथ्यात्व और दुश्चिन्तनका विनाश करें । अपनी प्रतिज्ञाके परिपालनमें शूरवीर श्रेष्ठ सुभट भरतको शान्ति प्राप्त हो । नाना गुण-समूहोंके धारी दयावान् सन्त और मुनियोंको भी शान्ति प्राप्त हो । मज्जन, दंगय्या और सुज्जन संतैयाको भी शान्ति मिले । शेष उन समस्त भव्योंको भी शान्ति मिले जिनका गर्व व अभिमान जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करनेसे दूर हो गया है । इस दिव्य काव्यकी रचनाका फल जिनेन्द्र भगवान् मुझे शीघ्र प्रदान करें तथा मुझ पुष्पदन्त कविका गमन भी वहीं हो जहाँ श्री भरत और भगवान् अरहंत गये हैं ॥४॥

५

सिद्धि-बिलासिणि-मणहर-दूरं ।
 मुद्धाएवी-तणु-संभूए ॥
 णिद्धण-सधण-लोय-समचित्ते ।
 सव्व-जीव-णिक्कारण-मित्ते ॥
 सह-सलिल-परिवद्धिय-सोत्ते ।
 केसव-पुत्ते कासव-गोत्ते ॥
 विसल-सरासइ-जणिय-विलासे ।
 सुण्ण-भवण-देवलय-णिवासे ॥
 कलि-मल-पवल-पडल-परिचित्ते ।
 णिरघरेण णिप्पुत्त-कलत्ते ॥
 णइ-वावी-तलाय-कय-ण्हाणे ।
 जर-चावर-अकल-परिहाणे ॥
 धीरे धूली-धूसरियंगे ।
 दूरयरुद्धिय-दुज्जण-संगे ॥
 महि-सयणायलं कर-पंगुरणे ।
 मग्गिय-पंडिय-पडिय-मरणे ॥
 मण्णखेड-पुरवरि णिवसंते ।
 मणि अरहंत-धम्मू शायंते ॥
 भरह-मण्णणिज्जे णय-णिलएं ।
 कव्व-पवंध-जणिय-जण-पुलएं ॥
 पुप्फयंत-कइणा चुय-पंके ।
 जइ अहिमाणमेरु-णामंके ॥
 कयड कवु भत्तिष्ठ परमत्थे ।
 जिण-पय-पंकय-मउलिय-हत्थे ॥
 कोहण-संवच्छरि आस्सडइ ।
 वडमइ दियहि चंद-रुइ-रुडइ ॥

प्रस्ता—णिह णिरइहु भरइहु बहुगुणहु कइकुलतिलएं भणियउ ॥

सुपहाणु पुराणु तिसट्ठिहिं मि पुरिसहं चरिउ समाणियउ ॥५॥

इय वीरजिनिवचरिण णिवचणमणो णाम तइओ सन्धी ॥६॥

(महापुराणु सन्धि १०२ से संकलित)

५

कवि-परिचय

इस पुराणकी रचना कश्यपगोत्रीय केशव भट्ट तथा मुग्धा देवीके पुत्र पुष्पदन्त द्वारा की गयी है। वे सिद्धिरूपी विलासिनीके मनोहर दूत हैं। उनकी चित्तवृत्ति निर्धन और धनी लोगों के प्रति समान रहती है। वे समस्त जीवों के निष्कारण मित्र हैं। उनके कान शब्दरूपी जलसे भरे हुए हैं। वे स्वच्छ निर्मल सरस्वतीका आश्रय लेकर प्रसन्न रहते हैं। वे शून्य गृह या देवालयको अपना निवास बना लेते हैं। वे कलिकालकी मलिनताके प्रबल पटलसे रहित हैं। उनका न कोई अपना निजी घर है और न कोई पुत्र व स्त्री है। वे कहीं भी किसी नदी, कुएँ या तालाबमें स्नान कर लेते हैं और कैसे भी जीर्णवस्त्र या बल्कलको पहन लेते हैं। वे धूलिसे धूसरित अंग भी रह लेते हैं। वे धैर्यवान् हैं और दुर्जनोके संगका दूरसे ही परित्याग करते हैं। वे भूमितलको ही अपनी सैया बना लेते हैं और अपने ही हाथका तकिया लगा लेते हैं। वे पण्डित-पण्डित-मरण अर्थात् श्रेष्ठ मुनियों जैसे समाधिमरणकी याचना करते हैं। उन्होंने इस उत्तम मान्यखेट नगरमें निवास किया व मनमें अरहन्त धर्मका ध्यान रखा। वे भरत मन्त्री द्वारा सम्मानित हुए। वे नय-निधान अपने काव्य-प्रबन्धकी रचना द्वारा लोगोंको रोमांचित कर देते थे। अपने मनोमालिन्यको दूरकर, भक्ति सहित परमार्थकी भावनासे जिनेन्द्रके चरणकमलोंमें हाथ जोड़कर प्रणामकर जगत्में अभिमान-मेघ नाम से विख्यात उन्हीं पुष्पदन्त कविने इस काव्यकी रचना की और उसे क्रोधन-संवत्सरके आषाढ़ मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको पूर्ण किया।

इस प्रकार निःशेष पापोंसे रहित बहुगुणी भरतके निमित्त उक्त-कविकुलतिलक पुष्पदन्त द्वारा वर्णित यह त्रैलोक्यशालाका-पुरुष-चरित रूपी सुप्रधान पुराण समाप्त हुआ ॥५॥

इति बीर-जिनेन्द्र-चरितमें निर्वाणप्राप्ति विषयक

तृतीय संधि समाप्त ॥ ३ ॥

सन्धि ४

जम्बूसामि-पवञ्जा

१

आहिडिबि मंडिवि लयल महि
धम्मं रिसि परमेसरु ।
ससिरिहि विउल्लहिवि आशयव
काले वीर-जिणेसरु ॥ध्रुवकां॥

५

सेणिव गउ पुणु वंदण-हत्तिइ ।
समवसरणु जोयंतउ भत्तिइ ॥
पुणु मगहाडिउ भावे घोसइ ।
वेव चरम-केवलि को होसइ ॥
भारह-वरिसि गणेसरु भासइ ।
एहु सु विज्जुमालि सुरु दीसइ ॥
भूसिउ अल्लराहिं गुणवंतहिं ।
विज्जुवेय-विज्जुलिया-कंतहिं ॥
पिक्कउ सालि-छेत्तु जलिओ सिहि ।
मय-मत्तउ करिंदु बहु-मय-णिहि ॥

१०

१५

देव-दिण्ण-जंबूहल-दायइ ।
इय सिविणाय-दंसणि संजायइ ॥
अरुहयास-वणियहु वण-थणियहि ।
सुरवरु जिणदासिहि सेट्ठिणियहि ॥
सत्तम-दिवसि गन्धि थाएसइ ।

२०

जंबू सुरहु पुज्ज पावेसइ ॥
जंबूसामि णाम इहु होसइ ।
तक्कालइ णिळुइ जाएसइ ॥
वड्डमाणु पावापुर-सर-वणि ।
णिद्ध-णील-णय-वउरंगुल-त्तणि ॥

सन्धि ४

जम्बूस्वामिकी प्रवज्या

१

राजा श्रेणिक द्वारा अन्तिम केवली विषयक

प्रश्न व गौतम गणधरका उत्तर

भगवान् महावीर विचरण करते हुए तथा अपने धर्मोपदेशसे समस्त जगत्को अलंकृत करते हुए यथा समय सुन्दर विपुलाचल पर्वतपर आकर विराजमान हुए । तब मगधके राजा श्रेणिक भक्तिपूर्वक उनकी वन्दनाके लिए गया और भगवान्के समीपकरणके दर्शन किये । फिर मगध नरेशने धर्मभावसे प्रश्न किया—हे देव, इस भारतवर्षमें अन्तिम केवलज्ञानी कौन होगा ? इसपर गौतम गणधर बोले—हे राजन्, यह जो तुम अपने सम्मुख विद्युत्के समान कान्तिवान् और गुणवती अप्सराओं सहित विद्युन्माली देवको देख रहे हो, वही आजसे सातवें दिवस अरहदास सेठकी उस जिनदासी सेठानीके गर्भमें उत्पन्न होगा । जब वह पके हुए शालिक्षेत्र, जलती हुई अग्नि, मदोन्मत्त तथा बहुतसे मदसे आच्छादित हाथी और देव द्वारा दिये हुए जम्बूफलके उपहारको अपने स्वप्नमें देखेगी, तब उस स्वप्नके फलस्वरूप उनका पुत्र जम्बू देव द्वारा पूजा प्राप्त करेगा, और इस पृथ्वीपर उसका नाम जम्बूस्वामी होगा और वह उसी जन्ममें निर्वाण प्राप्त करेगा ।

उसी समय स्निग्ध नीलवर्ण चौरानबे अंगुल ऊँचे शरीरके धारी भगवान् वर्धमान पावापुरके सरोवर युक्त वनमें ऐसे निर्वाणको प्राप्त होंगे, जो

२५

तइयहुँ जाएसइ णिन्वाणहु ।

अचलहु केवल-गाण-पहाणहु ॥

घत्ता—इहुँ केवलु अइणिम्मलु पाविधि समउ सुहम्मै ॥

एउ जि पुरु वोसिय-सुह आवेसमि हय-कम्मै ॥१॥

२

सुणि सेणिय कूणिउ तुह णंदणु ।

संबोहेसमि सुयणाणंदणु ॥

जंबूसामि वि तहिं आवेसइ ।

अरुह-दिक्ख भत्तिइ मग्गेसइ ॥

सयणाहिं सो णिजेसइ मइइ ।

णिय-पुरि सत्त-भूमि-धिय-मंडइ ॥

उहुँ णिवाहु तहिं पारंभेवउ ।

तेण वि णिय-मणि अवहेरिउवउ ॥

सायरदत्त-तणाय पोमावइ ।

अवर सुलक्खण सुर-गाय-वर-गइ ॥

पोमसिरि त्ति कणयसिरि सुंदरि ।

विणयसिरि त्ति अवर वर धणसिरि ॥

भवण-मज्झि माणिक-पईवइ ।

रयण-चुण्ण-रंगावलि भावइ ॥

एयहिं सहुँ तहिं अच्छइ मणहरु ।

उण्णाविय इय णव-कंकणा-करु ॥

वरु बहुयहुँ करयलु करि ढोयइ ।

जणणि तासु पच्छण्णु पलोयइ ॥

तहिं अवसारि सुरम्म-देसंतरि ।

विज्जुराय-सुउ पोयणापुरवरि ॥

विज्जुपहु णामें सुइडग्गाणि ।

कुद्धउ सो अरि-गिरि-सोदामणि ॥

केण वि कारणेण णं विग्गाउ ।

णिय-पुरु मेल्लिवि सहसा णिग्गाउ ॥

अइंसणु कवाड-उग्गाडणु ।

सिक्खिवि लोय-बुद्धि-णिद्धाडणु ॥

५

१०

१५

२०

२५

अचल है और केवलज्ञानप्रधान है। उस समय मैं अर्थात् गौतम गणधर अति निर्मल केवलज्ञान प्राप्त करूँगा और कर्मघाती गणधर सुधर्म सहित इसी देवोंको सन्तुष्ट करनेवाले राजगृह नगरमें आऊँगा ॥१॥

२

जम्बूस्वामी-विवाह व गृहमें चोर-प्रवेश

गौतम गणधर कहते हैं कि हे श्रेणिक, तुम्हारे पुत्र कुणिक को मैं संबोधित करूँगा और वह श्रुतज्ञान पाकर आनन्दित होगा। उसी समय जम्बूस्वामी भी वहाँ आवेगा और वह भक्तिपूर्वक अरहन्तदीक्षा माँगेगा। किन्तु उसके बन्धुजन उसे बलपूर्वक रोकेंगे और वह अपने नगरमें सप्त भूमिप्रासाद अर्थात् सतखण्डे महलमें रहने लगेगा। फिर उसके विवाहकी तैयारी की जायगी। किन्तु वह अपने मनमें उसकी अवहेलना करेगा तथापि सागरदत्त सेठकी पुत्री पद्मावती, देवगजगामिनी सुलक्षणा, पद्मश्री, सुन्दरी कनकश्री, विनयश्री, धनश्री, भवनके मध्य माणिक्य प्रदीपके समान माणिक्यवती और रत्नोंके चूर्णसे निर्मित रंगावलीके समान सुन्दरी रंगावलि, इनके साथ वह वरके रूपमें नये कंकन बाँधे अपना हाथ उठाकर उन वधुओंका पाणिग्रहण करेगा। उसी रात्रि जब उसकी माता चुपचाप देख रही थी, तभी उनके घरमें एक चोरने प्रवेश किया। यह चोर यथार्थतः उसी समय सुरम्यदेशकी राजधानी पौदनपुरके विद्युत्शय नामक राजाका पुत्र था। उसका नाम विद्युच्चर था और वह सुभट्टोंका अग्रणी था। वह शत्रुरूपी पर्वतोंके लिए वज्रसमान दिग्गज किसी कारणसे क्रुद्ध हो गया और अकस्मात् अपना नगर छोड़कर चला गया। उसने अदृश्य होने, कपाट खोलने तथा लोगोंकी बुद्धिको विनष्ट करनेकी विद्या

विज्ज-चोरु णिय-णाउ कहेप्पिणु ।

पंचसयाई सहायहं लेप्पिणु ॥

घत्ता—बलवंतहिं मंतहिं तंतहिं गाविउ दुक्कउ तक्करु ॥

२०

अंधारइ घोरइ पसरियइ रयणिहि दूसिय-भक्खरु ॥२॥

३

माणवेण णउ केण वि दिट्ठउ ।

अरुहदास-वणि-भवणि पइट्ठउ ॥

दिट्ठी तेण तेत्थु पसरिय-जस ।

जिणवरदासि णट्ठ-णिदालस ॥

१

पुच्छिय कुसुमालें किं चेयसि ।

भणु भणु माइरि किं णउ सोवसि ॥

ताई पबोल्लिउ महु सुउ सुइ-मणु ।

परइ बप्प पइसरइ तवोवणु ॥

पुत्त-विओय-दुक्खु तणु तावइ ।

१०

तेण णिइ महु किं पि वि गावइ ॥

बुद्धिमंतु तुहुं बुइ-विण्णायहिं ।

पहु णिवारहि सुइडोवायहिं ॥

पई हउं वंधवु परमु वियप्पमि ।

जं मग्गहि तं दविणु समप्पमि ॥

१५

तं णिसुणिवि णिरुक्कु गउ तेत्तहि ।

अच्छइ सहुं वहुयहि वरु जेत्तहि ॥

जंपइ भो कुमार णउ जुज्जइ ।

जणु परलोय-नाहेण जि खिज्जइ ॥

णियडु ण माणइ दूरु जि पेच्छइ ।

२०

पल्लउ तणु सुणवि महु वंछइ ॥

णिवडिउ कक्करि सेलि सिलायलि ।

जिइ सो तिइ तुहुं मरहि म णिप्फलि ॥

तवि किं लग्गइ माणहि कण्णउ ।

ता पभणइ वरु तुहुं वि जि सुण्णउ ॥

२५

जीवहु तित्ति भोण णउ विज्जइ ।

इंदिय-सोक्खें तिइ ण छिज्जइ ॥

सीख लीं एवं अपना नाम विद्युच्चोर रख लिया। वही अपने पांच सौ सहायकोंको लेकर तथा दलवान मन्त्र-तन्त्रोंका गर्व रखता हुआ रात्रिके घोर अन्धकारमें दूषित अन्नभक्षी तस्करके रूपमें उस घरमें पहुँचा ॥२॥

३

चोरकी जम्बूस्वामीकी मातासे बातचीत और फिर जम्बूस्वामीसे वार्तालाप

अरूहदास सेठके भवनमें प्रवेश करनेपर भी उसे किसी भी मनुष्यने नहीं देख पाया। उस चोरने वहाँ यशस्विनी जिनदासी सेठानीको निद्रा और आलस्य रहित जागती हुई देखा। तब चोरने उससे पूछा कि हे माता, तुम जाग क्यों रही हो, सोती क्यों नहीं। सेठानीने कहा—मेरा शुद्धमन पुत्र अगले दिन तपोवनमें प्रवेश करेगा। यही पुत्रवियोग का दुःख मेरे शरीरको तप्त कर रहा है, और इसी लिए हे बाबू, मुझे तनिक भी निद्रा नहीं आती। तू बुद्धिमान है अतएव हे सुभट, किन्हीं बुद्धिमानों द्वारा जाने हुए उपायोंसे इसको रोक ले। मैं तुझे अपना परमबन्धु समझती हूँ। अतएव यह काम कर देनेपर तू जितना धन मांगेगा मैं उतना ही दूँगी। सेठानीकी वह बात सुनकर विद्युच्चोर उसी स्थानपर गया जहाँ अपनी वधुओंके साथ वर बैठा था। वह चोर बोला—हे कुमार, यह तुम्हें उचित नहीं कि अपने परलोकके आग्रहसे तुम अपने स्वजनोंको खेद उत्पन्न करो। तुम निकट की वस्तुको तो देखते नहीं, दूर की वस्तु देखते हो। जिस प्रकार हाथीका शावक निकटवर्ती पत्तल और तृणको छोड़कर ऊपर लगी हुई मधुकी इच्छा करता हुआ कंकर-पत्थरोंसे पूर्ण शिलातलपर गिर कर मरणको प्राप्त होता है, उसी प्रकार तुम निष्फल अपना मरण मत करो। तपस्यामें क्यों लगते हो? इन कन्याओंसे प्रेम करो। इसपर वरने कहा—तू बुद्धिसे शून्य है। भोगसे जीवकी तुष्टि नहीं होती। इन्द्रिय-सुखोंसे उसकी तृष्णा नहीं बुझती।

घत्ता—ता घोरें चोरें बोलिल्यउ सवरें बिद्धउ कुंजरु ॥

सो भिल्लु ससल्लु दुमासिण्ण फणिणा दट्टउ दुद्धरु ॥३॥

४

तेण वि सो तं मारिउ विसहरु ।

मुउ करि मुउ सबरुल्लु धणुद्धरु ॥

तेत्थु समीहिवि मासाहारउ ।

तहिं अवसरि आयउ कोट्टारउ ॥

लुद्धउ णियन्तणु-लोहें रंजइ ।

चाव-सिथणाऊ किर भुंजइ ॥

तुट्ठ-णिबंभणि मुहरुह मोडिइ ।

तालु विहिण्णु सरासण-कोडिइ ॥

मुउ जंवुउ अइतिट्ठइ भग्गउ ।

जिह् तिह् सो परलोयहु भग्गउ ॥

म मरु म मरु रइ-सुहु अणुहुंजहि ।

भणइ तरुणु तक्कर पडिबज्जहि ॥

सुलहइ पेच्छिवि विविहइ रयणइ ।

गउ पंधिउ ठंकिवि णिय-णयणइ ॥

जिणवर-वयणु जीउ णउ भावइ ।

संसरंतु विविहावइ पावह ॥

कोहें लोहें मोहें मुज्झइ ।

अट्ठ-पयारें कम्मैं वज्झइ ॥

कहइ थेणु एक्केण सियालें ।

मास-खंडु छंडिवि तिट्ठालें ॥

तणु घल्लिय उप्परि परिहळहु ।

तीरिणि-सल्लिलुल्ललियहु मळहु ॥

आमिसु गहियउ पक्खिणि-णाहें ।

सो कड्हिवि णिउ सल्लि-पवाहें ॥

मुउ गोमाउ मळ्हु जलि अच्छिउ ।

ता लंपेक्खु वरें णिब्भच्छिउ ॥

वणिवरु पंधि को वि सुहु सुत्तउ ।

रयण-करंडउ तहु तहिं हित्तउ ॥

जम्बूस्वामीकी इस बातपर उस घोर चोरने कहा— किसी एक शबरने अपने बाणसे एक हाथीको बेधा । उस बाणधारी दुर्धर, दुष्ट मिल्लको वृक्ष-वासी सर्पने इस लिया ॥३॥

४

जम्बूस्वामी और विद्युच्चर चोरके बीच युक्तियों
और कृतान्तों द्वारा वाद-विवाद

इसपर उसने साँपको भी मार डाला । इस प्रकार वह हाथी भी मरा, धनुर्धारी शबर भी मरा और सर्प भी । उसी समय एक शृगाल मांसाहारकी इच्छासे वहाँ आया । उस लोभीने उस धनुषकी प्रत्येका रूप स्नायुको खाना प्रारम्भ किया और वह अपने ही शरीरके रक्तसे प्रसन्न होने लगा । धनुषके छोरोंसे बन्धन टूट जानेके कारण शृगालके दाँत मुड़ गये और तालु छिद गया । इस प्रकार अपनी अति तृष्णाके कारण बेचारा शृगाल भी मारा गया । इसी प्रकार उसकी दशा होती है जो परलोकके पीछे दौड़ता है । अतएव सरो मत ! भोग-विलासके सुखका उपभोग करो । इसपर युवकने कहा—हे चोर, सुन ! एक पथिकने मार्गमें नाना रत्नोंको देखा । उनको सुलभ जान वह अपने नेत्रोंको ढाँककर इसलिए आगे चला गया कि इन्हें कोई दूसरा न देख पाये और मैं लौटते हुए इन्हें लेता जाऊँगा । किन्तु लौटनेपर उसे वे रत्न नहीं मिले । इसी प्रकार जिनेन्द्रके वचनरूपी रत्न जिस जीवको नहीं भाते वह संसारमें भ्रमण करता हुआ नाना प्रकारकी विपत्तियाँ पाता है । वह क्रोध, लोभ, और मोहसे मूढ़ बनकर आठों प्रकारके कर्म-बन्धनमें पड़ता है । तब चोर कहता है—एक शृगाल मांसका टुकड़ा लिये हुए नदी पार जा रहा था । उस ने देखा कि उस वेगवती नदीके पानीमें एक मत्स्य अपने शरीरको ऊँचा कर उछल रहा है । उसकी तृष्णावश शृगालने अपने मुँहके मांस-खण्डको छोड़कर मत्स्यको पकड़नेका प्रयत्न किया । मत्स्य मुँहमें न आया । किन्तु उसके मुखसे छूटे मांस-खण्डको एक गृध्र झपटकर ले उड़ा । शृगाल स्वयं जलके प्रवाहमें बहकर मर गया और मत्स्य जलमें जीवित बच गया । इसपर वरने चोरकी पुनः भर्त्सना की और कहा—एक वणिक् मार्गमें सुखसे सो गया, और वहीं उसके रत्नोंकी पिटारीको कोई चुरा

३०

बणि तुम्हारिसेहिं अण्णाणहिं ।
 सो कुसीलु कउ हिंसिय-पाणहिं ॥
 घत्ता—दुण्णैक्खें दुक्खें पीडियउ बणिवइ आवइ पत्तउ ॥
 जिण-वयणें रयणें वज्जियउ जीउ वि णरइ णिहिउत्तउ ॥४॥

५

५

१०

१५

२०

२५

गउ पाविदु दुदु उम्मगो ।
 विसय-कसाय-बोर-संसग्गो ॥
 तं आयण्णिवि-पर-धण-हारें ।
 लत्तरु दिण्णु वृद्धि-वित्थारें ॥
 सासुय कुद्ध सुण्ह गह्णालइ ।
 मरण-काम दिट्ठी तरु-भूलइ ॥
 णिसुणि सुवण्णदारु पाडहिणं ।
 आहरणहु लोहें मइ-रहिणं ॥
 मरणोवाउ सिदु धवलच्छिहि ।
 गय-मयणहि घर-पंकय-लच्छिहि ॥
 महलि पाय दिण्णु गलि पासउ ।
 तण्णिवाइ मुउ दुदु दुरासउ ॥
 सो मुउ जोइवि णीसासुण्हइ ।
 गेह-गमणु पडिवण्णउ सुण्हइ ॥
 जिह सो मुउ धण-कंकण-सोहें ।
 तिह तुहें म मरु मोक्ख-सुह-लोहें ॥
 भणइ कुमारु धुत्तु ललियंगउ ।
 एक्कहिं णयरि अत्थि रह-रंगउ ॥
 तं जोयंति का वि मणि-मेहल ।
 कय मयणें महण्वि विसंतुल ॥
 आणिउ धाइइ पच्छिमदारें ।
 देविइ रमिउ मुणिउ परिवारें ॥
 राणं जाणिउ सो लिहक्काविउ ।
 असुइ-पवणि विवरि घल्लाविउ ॥
 किमि-खज्जंतु दुक्खु पावेण्णिणु ।
 गउ सो णरयहु पाण मुण्णिणु ॥

ले गया । उसी वनमें तुम्हारे समान अज्ञानी प्राणि-हिंसकोंने उस वणिक-को कुशील बना दिया और वह आपत्तिमें पड़ कर घोर दुःखोंसे पीड़ित हुआ । यही दशा होती है उस जीवकी जो जिन-वचन रूपी रत्नोंसे रहित होकर नरकमें पहुँचता है ॥४॥

५

वृष्टान्तों द्वारा वाद-विवाद चालू

विषय और कषाय रूपी चोरोके संसर्गसे जीव उन्मार्ग-भामी, पापी और दुष्ट बन जाता है । जम्बूस्वामीकी यह बात सुनकर उस पराये धनका अपहरण करनेवाले चोरने अपने बुद्धि-विस्तारसे इस प्रकार उत्तर दिया—कोई एक पुत्रवधू अपनी साससे क्रुद्ध होकर वनमें गयी और वहाँ वृक्षके मूलमें आत्मघातकी इच्छा करने लगी । इस अवस्थामें उसे सुवर्णदारु नामक एक मृदंग बजानेवालेने देखा । इसकी बात सुनकर उस मूर्खने उसके आभूषणोंके लोभसे उस घरकी कमल-लक्ष्मी धवलाक्षी काम-रहित जीवनसे विरक्त हुई महिलाको मरनेका उपाय बतलानेका प्रयत्न किया । उसने अपने मृदंगपर पैर रखकर वृक्षसे लटकते हुए पाशको अपने गलेमें डाला किन्तु इसी बीच वह मृदंग फिसलकर गिर गया और वह दुष्ट दुराशय फाँसीसे लटककर मर गया । उसको मरा देखकर उस पुत्रवधूने उष्ण निःश्वास छोड़ते हुए घर लौट जाना उचित समझा । जिस प्रकार वह मृदंगवादक उस वधूके धन-कंकन आदिके मोहसे मरा वैसे ही तू मोक्षसुखके लोभसे मत मर ।

कुमारने उत्तर दिया—एक ललितान्ग धूर्त किसी नगरमें रहता था और राग-रंगमें आसक्त था । इसको देखकर राजाकी मणिमेखला-धारिणी एक रानी काम-पीड़ासे विह्वल हो उठी । उसने अपनी धात्रीके द्वारा उसे पश्चिम द्वारसे बुलवा लिया और उसके साथ रमण किया । यह बात परिवारको ज्ञात हो गयी और राजाको उसकी सूचना मिल गयी । तब रानी ने उसको छिपानेके लिए अपने अशुचि मलसे पूर्ण शौच-स्थानमें डलवा दिया । वहाँ कीड़े उसे खाने लगे और वह दुःख पाते हुए प्राण

जिह सो तिह जणु भोयासत्तउ ।

मरइ बप्प णारि-यणहु रत्तउ ॥

यत्ता—णिय-इच्छइ पच्छइ भीरुयहु जीवहु वेय-समगाउ ॥

३०

णासंतहु जंतहु भव-गाहणि मच्चु-गाम करि लग्गउ ॥५॥

६

णिवडिउ जम्म-कूइ विहि-विहियइ ।

कुल-तरु-मूल-जाल-संपिहियइ ॥

लंघमाणु परमाउसु-वेल्लिहि ।

पंचिदिय-महु-बिंदु-सुहेल्लिहि ॥

५

काले कसण-सिएहिं विहिण्णी ।

सा दियहुंदुरेहिं विच्छिण्णी ॥

णिवडिउ णरय-भोम-विसहर-मुहि ।

पंच-पयार-घोर-दाबिय-दुहि ॥

इय आयणिवि तहु आहासिउ ।

१०

सज्जहिं धम्मि स-हियउ णिवेसिउ ॥

जणणिइ तक्करेण वर-कण्हिं ।

मरगय-मणहर-कंचण-वण्हि ॥

ता अंबरि उगमिउ दिवायरु ।

जंबूदेउ पराइउ सायरु ॥

१५

कूणिण्ण राए गय-गामिहि ।

णिवस्ववणाहिसेउ किउ सामिहि ॥

सिवियहि रयण-किरण-विप्फुरियहि ।

आरूढउ वर-मंगल-भरियहि ॥

णाणा-सुर-तरु-कुसुम-पसत्थइ ।

२०

विडलि विडल-धरणीहर-मत्थइ ॥

बंभण-वणियहिं पत्थिव-पुत्तहिं ।

पुत्त-कलत्त-मोह-परिचत्तहि ॥

विज्जुचोरे समउ स-तेयउ ।

चोरहं पंच-सएहिं समेयउ ॥

२५

णिञ्जाराहिय-बीर-जिणिदहु ।

पासि सधम्महु धम्माणंदहु ॥

छोड़कर नरकको गया । जिस प्रकार वह धूर्त भोगासक्त होनेके कारण इस विपत्तिमें पड़ा, वैसे ही स्त्रीके प्रेममें अनुरक्त हुआ मनुष्य मरणको प्राप्त होता है ।

एक भीरु मनुष्य भवरूपी वनमें जा रहा था । उसके पीछे स्वेच्छासे मृत्यु नामक वेगवान् हाथी लग गया । उसके भयसे वह जीव भाग खड़ा हुआ ॥५॥

६

जन्मकूपका दृष्टान्त व जम्बूस्वामी तथा विद्युच्चरकी प्रव्रज्या

भागते-भागते वह एक विधि-विहित जन्मरूपी कूपमें जा गिरा जो कुलरूपी वृक्षकी जड़ोंके जालसे आच्छन्न था । कूपके मध्यमें ही वह उत्कृष्ट आयुरूपी बल्लीसे लटक गया । वहाँ उसे पंचेन्द्रिय रूपी मधुके बिन्दुका सुख प्राप्त हुआ । किन्तु उस बेलिको काल द्वारा कृष्ण और श्वेत वर्णोंसे विभिन्न रात्रि और दिवसरूपी चूहोंने काट डाला । उस बेलिके कटनेसे वह जीव नरकरूपी भयंकर सर्पके मुखमें जा पड़ा, जहाँ उसे पाँच प्रकारके घोर दुःखोंको भोगना पड़ा । कुमारके इस दृष्टान्तको सुनकर उन सभी श्रोताओं, अर्थात् कुमारकी माता, चोर और मरकत-मणि तथा सुवर्णके समान मनोहर-वर्णवाली उन श्रेष्ठ कन्याओंकी धर्ममें श्रद्धा उत्पन्न हो गयी । इसी समय आकाशमें सूर्यका उदय हो गया और जम्बूस्वामी घरसे निकल पड़े । राजा कुणिकने गजगामी जम्बूस्वामीका निष्क्रमण-अभिषेक किया । कुमार रत्नोंकी किरणोंसे स्फुरायमान तथा श्रेष्ठ मंगल द्रव्योंसे भरी हुई शिविका (पालकी) में आरुढ़ हुए । वे तेजस्वी कुमार नाना कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे शोभायमान विपुलाचल पर्वतके मस्तकपर पहुँचकर, अपने पुत्र और स्त्रियोंके मोहका परित्याग करनेवाले ब्राह्मण, वणिक् तथा क्षत्रिय पुत्रों सहित एवं उस विद्युच्चोर तथा उसके पाँच सौ साथी चोरों सहित वीर जिनेन्द्रके पास धर्मनन्दी सुधर्माचार्यसे

घत्ता—तउ लेसइ होसइ पर-जइ होएपिणु सुयकेवलि ॥

हय-कम्मि सुधम्मि सुणिवुयइ जिण-पय-विरइय-पंजलि ॥६॥

७

पत्तइ बारहमइ संवच्छरि ।

चित्त-परिट्ठिइ वियलिय-मच्छरि ॥

पंचमु णाणु एहु पावेसइ ।

भवु णामेण महारिसि होसइ ॥

तेण समउ महियलि विहरेसइ ।

दह-गुणियइ चत्तारि कहेसइ ॥

वरिसइ भम्मु सव्व-भवोहइ ।

विद्धंसिय-बहु-मिच्छा-मोहइ ॥

अल्लियवेळ हि उण्णवेळइ ।

महु पहु-वंसहु उण्णइ होसइ ॥

इय वीरजिणिदचरिण् जम्बूसामि-पवज्जावण्णणो

णाम चउत्थो संधि ॥४॥

(महापुराण संधि १०० से संकलित)

तप ग्रहण करेंगे, वा श्रेष्ठ यति होंगे और फिर सुधर्म आचार्यके कर्मों-
का विनाश कर निर्वाण प्राप्त कर लेनेपर, वे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंमें
हाथ जोड़कर श्रुतकेवली होंगे ॥६॥

७

जम्बूस्वामीको केवलज्ञान-प्राप्ति

इसके पश्चात् बारहवां वर्ष आनेपर वे अपने मनको समाधिमें स्थित
कर रागद्वेष रहित होते हुए पंचमज्ञान अर्थात् केवलज्ञानको प्राप्त करेंगे ।
उनके शिष्य भव नामक ऋषि होंगे । उसके पास जम्बूस्वामी महीतल-
पर बिहार करते हुए दश गुणित चार अर्थात् चालीस वर्ष तक समस्त
भव्य जीवोंको धर्मका उपदेश देंगे, और उनके मिथ्यात्व और मोहका
विध्वंस करेंगे । इस प्रकार जम्बूस्वामी अन्तिम केवली होंगे और मेरे
विशालवंश रूपी शिष्य-परम्पराकी उन्नति होगी ।

इति जम्बूस्वामि-प्रवक्ष्या विषयक चतुर्थ सन्धि समाप्त

सन्धि ॥ ४ ॥

संधि ५

चंदणा-तवगहणं

१

पमणइ महियल-णाहु गय-मिच्छत्त-तमंधहि ॥

भणु चंदणहि भवाइँ सुरहिय-चंदण-नांधहि ॥

सं विसुणेविणु भवइँ सुणिअरु ।

सुणि सेणिय अक्खमि तुह वइयरु ॥

५ सिंधु-विसइँ वइँसाली-पुरवरि ।

घर-सिरि-ओहामिय-सुर-वर-घरि ॥

चेडउ णाम णरेसरु णिवसइँ ।

देवि अखुह सुहइँ महासइँ ॥

धणयत्तउ धणभइँदु उविंदउ ।

१० सुहयत्तउ हरियत्तु णियंगउ ॥

कंभोयउ कंपणउ पयंगउ ।

अवरु पइँजणु पुत्तु पहासउ ॥

धीयउ सत्त रुव-विण्णासउ ॥

सेयंसिणि सूहव पियकारिणि ।

१५ अवर मिगावइँ जण-भण-हारिणि ॥

सुण्ह देवि पहावइँ चेलिणि ।

बाल-सराल-लील-गइँ-गामिणि ॥

जेठु विसिठु भडारी चंदण ।

रुव-रिद्धि-रंजिय-संकंदण ॥

२० पियकारिणि वर-गाह-कुलेसहु ।

सिद्धत्थहु कुंडउर-णरेसहु ॥

दिण्ण सयाणीयस्स मिगावइँ ।

सोम-वंस-रायहु मंथरगइँ ॥

सूर-वंस-जायहु ससि-यर-गह ।

२५ दसरह-रायहु दिण्णी सुण्ह ॥

सन्धि ५

चन्दना-तपग्रहण

१

राजा चेटक, उनके पुत्र-पुत्रियाँ तथा चित्रपट

धराधीश श्रेणिकने पूछा—हे भगवन्, मुझे उस आर्यिका चन्दनाका चरित्र सुनाइए, जिसके शरीरमें चन्दनकी सुगन्ध है तथा जिसने मिथ्यात्व-रूपी अन्धकारको दूर कर दिया है। राजाके इस प्रश्नको सुनकर गौतम मुनिवरने कहा—हे श्रेणिक, मैं चन्दनाका वृत्तान्त कहता हूँ, तुम सुनो। सिन्धु-विषय (नदी-प्रधान विदेह नामक प्रदेश) में वैशाली नामक नगर है जहाँके घर अपनी शोभासे देवोंके विमानोंकी शोभाको भी जीतते हैं। उस नगरमें चेटक नामक नरेश्वर निवास करते हैं। उनकी महारानी महासती सुभद्रासे उनके धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, शिवदत्त, हरिदत्त, काम्बोज, कम्पज, प्रयम्भ, प्रमंजव और प्रभास नामक पुत्र हुए। उनकी अत्यन्त रूपवती सात पुत्रियाँ भी हुईं जिनके नाम हैं, श्रेयांसिनी सुभगा प्रियकारिणी, जनमनोहारिणी मृगावती, सुप्रभा देवी, प्रभावती, चेलिनी, बालहंसलीलागामिनी ज्येष्ठा और विशेष रूपसे पूज्य चन्दना। ये सभी कन्याएँ अपनी रूपकृद्धिसे इन्द्रके मनको भी अनुरक्त करती थीं। प्रियकारिणीका विवाह श्रेष्ठ नाथवंशी कृण्डपुर नरेश सिद्धार्थके साथ कर दिया गया। मंदगामिनी मृगावती, कौशांबीके सोमवंशी राजा शतानीक को ब्याह दी गयीं। चन्द्र किरणोंके समान चमकीले नखोंवाली सुप्रभाका विवाह सूर्यवंशमें उत्पन्न दशरथ राजाके साथ हो गया। उर्वशी और

३०

उदायगहु पहावइ राणी ।
 जिगी उयस-रंय-रागानी ॥
 महिउरि काम-आण-परिहट्टउ ।
 अलहमाणु अवरु वि आरुट्टउ ॥
 जेद्वहि कारणि सकचइ नामें ।
 आयउ जुझहुँ दुणपरिणामें ।
 पट्टउ आहवि चेडय-रायहु ।
 को सकइ करवाल-णिहायहु ॥
 अइ-दूसह-णिब्वेणं लइयउ ।

३५

दमवर-मुणिहि पासि पव्वइयउ ॥
 अण्णहिं दिणि चित्तयरें लिहियइ ।
 रुवइ बर-पट्टंतर-णिहियइ ॥
 काम-विलास-विसेसुप्पत्तिहि ।
 जोइयाइँ राणं गिय-पुत्तिहि ॥
 पडिउ बिंदु चेलिणि-ऊरुयलि ।
 विट्टउ कयली-कंदल-कोमलि ॥
 तायें तोडु कयउ विवरेरउ ।
 चित्तयरें बोल्लिउ सुइ-सारउ ॥
 एणं विणु पडिबिंबु ण सोहइ ।
 धाइ जाम ऊरुत्थलु चाहइ ॥
 ता दिट्टउ तहि लंछणु एयइ ।
 अक्खिउ रायहु जाय-विवेयइ ॥

४०

४५

घत्ता—ता संरुहु णरिंदु गउ रायहरहु लीलइ ॥
 जिण-पडिबिंबहुँ पासि पडु संणिहिउ वणालइ ॥१॥

२

दिट्टउ पडु पइँ पुच्छिय किंकर ।
 तेहिं पवुत्तउ वइरि-भयंकर ॥
 एयइँ लिहियइँ विणय-विणीयइँ ।
 विंवइँ चेडय-महिवइ-धीयइँ ॥
 चउहुँ विवाहु हुयउ विहुरंतउ ।
 तीहि मज्झि दो जोव्वणवंतउ ॥

५

रम्भाके समान प्रभावती उद्वायन नरेशकी रानी हुई। किन्तु महीपुरका राजा सात्यकि कामके बाणसे प्रेरित होते हुए भी उन कन्याओंमेंसे किसीको न पाकर रुष्ट हो उठा और वह दुर्भाविनाके वश ज्येष्ठाको बलपूर्वक प्राप्त करने हेतु उसके पितासे युद्ध करने आ पहुँचा। किन्तु वह युद्धमें चेटक राजासे पराजित होकर भाग गया। कौन ऐसा है जो चेटक राजाके खड्गकी मारको सह सके? इस पर राजा सात्यकि अत्यन्त दुस्साह विरक्तिके वश होकर दमवर मुनिके पास प्रव्रजित हो गया।

एक दिन राजा चेटकके पास एक चित्रकार आया और उसने राजकुमारियोंके सुन्दर चित्रपट बनाये। राजाने अपनी पुत्रियोंके उन चित्रोंको देखा जो अपने सौन्दर्यसे काम-विलासकी भावनाको उत्पन्न करते थे। किन्तु उन्होंने देखा कि कदली-कंदल समान कोमल चेलिनी की जंघापर एक स्याहीका बिन्दु पड़ा है। उसे देख चेलिनोके पिताने अपना मुख फेर लिया। चित्रकारने राजाकी मनःस्थिति जान ली। उसने चित्र-शास्त्रके मर्मकी बात बताते हुए राजासे कहा—हे महाराज, इस बिन्दुके बिना यह चित्र शोभायमान नहीं होता। इसी बीच धात्रीने जाकर चेलिनी राजकुमारीके जंघा-स्थलका निरीक्षण किया और उसके वहाँ भी तिलका काला बिन्दु देखा। तब उस त्रिवेकशालिनी धात्रीने आकर यह बात राजासे कही। इसपर नरेन्द्र बहुत रुष्ट हो उठे। उनके क्रोधसे भयभीत होकर वह चित्रकार चुपचाप वैशाली नगरसे निकल भागा। वह राजगृह पहुँचा और वहाँ उसने राजकुमारी चेलनाके चित्रपट को राजाके उद्यान मन्दिरमें जिन-प्रतिबिम्बके पास रख दिया ॥१॥

२

**राजा श्रेणिकका चित्रपट देखकर चेलनापर मोहित होना
और उसका राजकुमार द्वारा अपहरण**

गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्, तुमने उस चित्रपटको देखा और उसके विषयमें अपने किंकरोंसे पूछा। उन्होंने बतलाया—हे शत्रु-भयंकर नरेश, ये चित्रबिंब चेटक राजाकी विनयशील पुत्रियोंके लिखे गये हैं। इनमेंसे प्रथम चारका विवाह हो चुका है, किन्तु उनसे लघु तीनमेंसे दो यद्यपि यौवनको प्राप्त हो गयी हैं, तथापि अभी तक

- अज्ज वि णिव दिज्जंति ण कासु वि ।
 एक कण्ण लहुई खल-तम-रवि ॥
 ते वयणेण मयण-सर-वणियउ ।
 १० तुहुं तुह् लंतिहिं भुइ तु उ वणिग्गउ ॥
 हा हा हे कुमार तुह् तायहु ।
 बड्डइ कामायत्थ सरायहु ॥
 चेडय-धीयहि अइ-आसत्तउ ।
 मूरु व दिट्ठि-गम्मु अइ-रत्तउ ॥
 १५ ससुरु ण वेइ जुण्ण-वयवंतहु ।
 बड्डइ अवसरु मइ-दिहिबंतहु ॥
 ता कुमरे तुह् रुवे किउ पडु ।
 तं णिवासु लेवियु गउ मडु पडु ॥
 पंडिउ वोइ-वणिय-कय-वेसउ ।
 २० आयउ कण्णउ णव-वय-वेसउ ॥
 पुच्छिउ ताहिं लिहिउ ते भाणिउ ।
 किं ण मुण्ह मगहाहिउ सेणिउ ॥
 ता दोहं मि कण्णहं मय-मत्तहं ।
 पेम्म-कुसुंभहं रत्तहं गेत्तहं ॥
 २५ कुडिलइ चेलिणीइ सर-रुद्धइ ।
 कयउं इहु जेहु रइ-लुद्धइ ॥
 भणिय जाहि आहरण लण्णिणु ।
 आवहि लहु वच्चहुं लिक्केण्णिणु ॥
 लभाहुं गलकंदलि मगहेसहु ।
 ३० अलि-उल णील-णिद्ध-मउ-केसहु ॥
 यत्ता—आहरणाहं लण्वि जा पडिआवइ बाली ॥
 ता तहिं ताए णं दिट्ठ चेलिणि मयणमयाली ॥२॥

३

बहिणि-विओय-सोय-संतत्ती ।
 खंतिहि जसमईहि उवसंती ॥
 पाय-भूलि तवचरण लण्णिणु ।
 थक्क जेहु इंदियहं जिणेण्णिणु ॥

उनका किसीके साथ विवाह-सम्बन्ध नहीं हुआ । हे खलरूपी अन्धकारके सूर्य, सबसे छोटी कन्या (चन्दना) अभी भी अबोध है । अपने किकरों-के इन वचनोंसे तुम मदनके बाणसे आहत हो गये । तब तुम्हारे मन्त्रियोंने तुम्हारे पुत्रसे कहा—हाय, हाय, हे कुमार, तुम्हारे पिता कामासक्त होकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं । वे राजा चेटककी पुत्रीपर अत्यन्त आसक्त होकर ऐसे अनुरक्त दिखाई देते हैं जैसे सूर्य अत्यन्त रक्तवर्ण होकर सबके दृष्टिगोचर हो जाता है । किन्तु उनके प्रस्तावित स्वसुर अर्थात् राजा चेटक उन्हें इस कारण अपनी कन्या नहीं देना चाहते, क्योंकि वे आयुमें वृद्ध हो चुके हैं । यह अवसर है जब तुम अपनी बुद्धि और धैर्यका अच्छा परिचय दे सकते हो । गौतम मुनि राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्, मन्त्रियोंकी उक्त बातको सुनकर राजकुमारने तुम्हारा चित्रपट बनवाया । चित्रपट बन जानेपर एक भट उसे कुमारके निवासस्थानपर ले गया । फिर वह राजकुमार पण्डित वोद्र (बैल लादने वाले ?) वणिक्का वेश बना कर वैशाली नगरमें पहुँचा । राजकन्याओंने चित्रपटमें लिखित नव-वयस्क तथा सुन्दर वेषयुक्त पुरुषको देखकर उसके सम्बन्धमें पूछताछ की । तब वणिक्-वेषधारी राजकुमारने कहा—वया आप नहीं जानतीं कि ये मगधके नरेन्द्र श्रेणिक हैं । यह सुनकर उन दोनों कन्याओंके नेत्र मदोन्मत्त हो उठे और प्रेमरूपी केसरसे रंजित हो गये । दोनों बहिनोमें चेलिनी अधिक चतुर थी । उसने कामसे पीड़ित तथा रति से लुब्ध होकर बहिन ज्येष्ठासे छलपूर्वक कहा—आप अपने निवासपर जाकर आभूषणों-को ले आइए, तब हम दोनों यहाँसे चुपचाप छिपकर निकल चलेंगे, तथा भ्रमर समूहके समान नील और स्निग्ध तथा मृदु केशोंसे युक्त मगधेशके गलेमें लगकर उनका आलिंगन करेंगे । किन्तु जब ज्येष्ठा आभूषण लेकर लौटी तब उसने वहाँ मदनोत्सुक चेलिनीको नहीं देखा ॥२॥

३

ज्येष्ठाका वैराग्य, चेलिनी-श्रेणिक विवाह तथा चन्दनाका
मनोवेग विद्याधर द्वारा अपहरण व इरावती
के तीरपर उसका त्याग

अपनी बहिनके वियोगके शोकसे संतप्त होकर ज्येष्ठा यशोमति नामक आर्यिकाके समीप जाकर उपशान्त हुई और उन्हींसे तपश्चरणकी दीक्षा

- ५ चेलिणि पुणु तुह पुत्तें होइय ।
 पहुँ स-सणेहँ गिरु अवलोइय ॥
 परिणिय सुंदरि जय-जय-सहँ ।
 वरु आणिय दइवेण सुहँ ॥
 तहि महएवी-पट्टु णिवद्धउ ।
 १० सा रइ तुहुँ णावेइ मयरद्धउ ॥
 ताहि सुखंतिहि पासि णिहालिउ ।
 चंदणाइ सावय-वउ पालिउ ॥
 सहँ सम्मत्तें चारु गुणद्धइ ।
 दाहिण-सेडिइ गिरि-वेयद्धइ ॥
 १५ सोवण्णाहइ पुरि मणवेयउ ।
 विहरमाणु णहि वरिणि-समेयउ ॥
 आयउ उववणि णिच-वसंतहँ ।
 दिट्ठी चंदण चंदणवंतहँ ॥
 णियय-धरिणि णिय गेहे धवेण्णिणु ।
 २० पडिआवेण्णिणु कण्ण लएण्णिणु ॥
 सो जा गच्छइ पुणु णिय-भवणहु ।
 आलोयणिय दिट्ठ ता गयणहु ॥
 अवयरंति आहासइ वइयरु ।
 देविहँ तुहुँ जाणिउ मायायरु ॥
 २५ तुज्जु विज्ज कय-रोस-णिहाए ।
 ताडिय देवय वामें पाए ॥
 एवहिं किं कुमारि पहुँ चालिय ।
 अरुछइ कोव-जलण-पज्जालिय ॥
 णिच-वमेय हियवइ संकंतहि ।
 ३० तं गिसुणिवि सो भीयउ कंतहि ॥
 यत्ता—भूय-रमण-वण-मज्झि पवर-इरावइ-तीरइ ॥
 साहिय तेण खगेण विज्ज फणीसर केरइ ॥३॥

पत्तलहुय णामेण णिहित्ती ।
 ताह पुत्ति संपत्त धरिती ॥

लेकर इन्द्रियोंको जीतने हुए उन्हींके चरणोंमें रहने लगी । उधर चेलिनीको तुम्हारा पुत्र राजगृह ले आया और उसका तुमने अत्यन्त स्नेह-भावसे अवलोकन किया । तुमने जय-जय घोषके साथ उस सुन्दरीको परिणयन कर लिया और सौहार्दपूर्ण भाग्यसे उसे अपने घर ले आये । तुमने चेलनाको महादेवी पदपर प्रतिष्ठित किया । इस प्रकार वह रति और तुम कामदेवके समान सुखसे रहने लगे ।

उधर चेटकाकी सबसे लहुरी पुत्री चन्दनाने धर्मभावसे प्रेरित होकर सुक्षान्ति नामक आर्यिकाके समीप श्रावक व्रत ग्रहण कर लिया । सम्यक्त्व भावसे सुन्दर गुण-प्रचुर वेताड्यगिरिकी दक्षिण श्रेणीमें स्थित सुवर्णनाभ नामक पुरीमें मनोवेग नामक विद्याधर रहता था । एक दिन वह अपनी गृहिणीके साथ आकाशमें विहार करता हुआ उस उपवनमें आया जहाँ नित्य ही वसन्त ऋतु रहा करती थी और जहाँ चन्दनके वृक्षोंकी सुगन्ध रहती थी । वहाँ उसने चन्दना कुमारीको देखा । देखते ही उसने वापिस आकर अपनी गृहिणीको तो अपने घरमें जा छोड़ा और पुनः उसी उपवनमें आकर कन्याका अपहरण कर लिया । उसे लेकर जब वह अपने घरको पुनः जाने लगा तब उसने आकाशसे उतरती हुई आलोकिनी विद्यादेवीको देखा । देवीने उससे बात कही कि देवी (तेरी पत्नी मनोवेगा) ने तुम्हें मायाचारी जान लिया है, और रोषपूर्ण होकर तेरी विद्याको अपने बायें पैरसे ठुकरा दिया है । तुमने इस प्रकार इस कुमारीको क्यों अपहृत किया ? इसीलिए तेरी गृहिणी कोपाग्निसे प्रज्वलित हो रही है । यह सुनकर मनोवेग नित्य अपने हृदयमें विराजमान रहनेवाली अपनी कान्तासे भयभीत हो उठा । उस विद्याधरने विशाल इरावतीके तीर पर स्थित भूतरमण नामक वनके बीच फणीश्वर (नागेश्वर या गरुड) की विद्याको सिद्ध किया ॥३॥

४

चन्दनाका वनमें त्याग, भिल्लों द्वारा रक्षण तथा
कौशाम्बीके सेठ धनदत्तके घर आगमन ।

मनोवेगने पत्रलघु नामकी अपनी उसी विद्याके बलसे चन्दनाको उक्त वनमें फेंक दिया और वह उसीके प्रभावसे भूमितलपर उतर गयी ।

- ५ पंचक्खरहँ चित्ति निञ्जायइ ।
 धम्म-ग्घाणु णिम्मल्लु उप्पयइ ॥
 विथलिय णिस उग्गमिउ पयंगउ ।
 वणयरु एक्कु पत्तु सामंगउ ॥
 णामें कालु तासु जिण-वयणहँ ।
 साहियाहँ मुद्धहँ जग-सयणहँ ॥
 १० अण्णु वि तहु दिण्णहँ आहरणहँ ।
 पहवंतहँ णं दिणयर-किरणहँ ॥
 तें तुद्धहँ णिय सुंदरि तेत्तहिं ।
 भीम-सिहर-गिरि-णियडइ जेत्तहिं ॥
 भिल्लु भयंकरि-पल्लिहि राणउ ।
 णामें सीहु सीहु-रस-जाणउ ॥
 १५ तासु बाल कालेण समप्पिय ।
 तेण वि कामालेण विलुप्पिय ॥
 काओसग्गे थिय परमेसरि ।
 जा लगइ वणयरु वण-केसरि ॥
 ता सो रुक्खु जेव उम्मूलिउ ।
 २० सासण-देवयाहिं पडिक्कलिउ ॥
 रे चिल्लाय करु सुयहिं म ढोयहि ।
 अण्णउ काल-वयणि म णिवायहि ॥
 ता सो तसिउ थक्कु तुण्हिक्कउ ।
 पय-जुय-वडिउ विचार-विमुक्कउ ॥
 २५ कंद-मूल-फल-दाविय-सायइ ।
 पोसिय देवि णिसायहु मायइ ॥
 थिय कइवय दिणाहँ तहिं जइयहुं ।
 वच्छ-देसि कोसंविहि तइयहुं ॥
 वसहसेणु वणिवइ धणइत्तउ ।
 ३० मित्तवीरु तहु-किंकरु भत्तउ ॥
 मित्तु सो जि सीहुहु वण-णाहुहु ॥
 घरु आयउ सुक्खिय-जलवाहुहु ॥
 अण्णिय तासु तेण पत्थिव-सुय ।
 बाल-मुणाल-बलय-कोमल-भुय ॥

वह अपने चित्तमें पंचाक्षर मन्त्रका ध्यान करती और निर्मल धर्मध्यान उत्पन्न करने लगी ।

जब रात्रि व्यतीत हो गयी और सूर्यका उदय हुआ तब एक श्यामाङ्ग वनचर वहाँ आया । उसका नाम काल था । चन्द्रनाभे उसे जगत्के आश्रयभूत जिनवचनोंका उपदेश दिया तथा सूर्यकी किरणोंके समान कान्तियुक्त आभरण भी दिये । वह इस प्रकार सन्तुष्ट होकर उस सुन्दरीको वहाँ ले गया जहाँ भीमशिखर नामक पर्वतके निकट एक भयंकरी नामक पल्लीमें मद्य-रस-पान करनेवाला सिंह नामक भिल्ल राजा रहता था । काल-वनचरने बालिकाको उसे ही समर्पित कर दिया और उसने भी कामासक्त होकर उसे छिपाकर रख लिया । वह परमेश्वरी वहाँ कायोत्सर्ग भुद्रामें ध्यान करने लगी । उस अवस्थामें जब वह वनकैसरी, वनचर उसका आलिङ्गन करनेको उद्यत हुआ तब वह उन्मूलित वृक्षके समान स्तब्ध रह गया और शासन-देवताने उसे फटकारा—देख किरात, खबरदार ! तू उस पुत्रीको अपना हाथ नहीं लगाना । तू अपनेको कालके मुखमें मत डाल । इसपर वह भिल्लराज क्रोधित होकर मौन हुआ रुक गया और विकारको छोड़ उसके चरण-युगलमें आ पड़ा । तत्पश्चात् उस निषादकी माता, उसे स्वादिष्ट कन्द-मूल व फल देकर पोषण करने लगी ।

इस प्रकार जब वह वहाँ कुछ दिनों तक रह चुकी तब एक दिन वरस-देशकी कौशाम्बी नगरीका वृषभसेन नामक धनवान् वणिक् वहाँ आया । उसका मित्रवीर नामक एक भक्त किकर वनराज सिंहका मित्र था । अतः वह मुकुतके जलप्रवाह रूप भिल्लके घर आया । वनराजने उस कमल-नालके समान कोमल भुजाओंवाली राजकन्याको उसीको अर्पित कर दी

३५

दोइय बणि-कुल-गयण-ससंकहु ।

भिर्ये वसहसेण-णामंकहु ॥

वत्ता—एकहि वासरि जाव जोइवि सेट्ठि तिसाइउ ॥

बंघिवि कोतल ताइ जल-भिगारुआइउ ॥४॥

५

धिह-दुह-कट्टाइ रउइइ ।

ता दिट्ठी सेट्ठिणिइ सुइइइ ॥

सुंढिउ सिरु पावई पम्मेल्हहि ।

आयस-णियलु धित्तु णीसल्लहि ॥

५

कोइय-कूरु स-कंजिउ दिज्जइ ।

णिच्चमेव जा एव दमिज्जइ ॥

ता परमेट्ठि दिण्ण-संसारउ ।

आयउ भिक्खहि वीरु भडारउ ॥

पडिलाहिबि बिहीइ किउ भोयणु ।

१०

दिण्णउ तं तहु सउवीरोयणु ॥

पत्त-दाण-तरु तक्खणि फलियउ ।

गयणहु कुसुम-णियरु परिघुलियउ ॥

गज्जिय दुंदुहि बहु-साणिक्कई ।

पडियई भा-भारें पहरिक्कई ॥

१५

रयण-विचित्त-दिण्ण-विबिहंगय ।

देवेहिं मि देविहि बंदिथ पय ॥

नियस-घोस-कोलाहल-सहे ।

जय-जय-जय संजाय-णिणहे ॥

णमिय मिगावइए लहुयारी ।

२०

बहिणि सपुत्तइ गुण गरुयारी ॥

यधि-सुयाइ पाविट्ठइ जं किउ ।

तो बि ण साहइ बिलसिउ विण्णिउ ॥

सेट्ठिणि सेट्ठि बे वि कम-णमियई ।

अम्हई पावई पावें खवियई ॥

२५

परमेसरि तुह सरणु पड्डुई ।

एवहिं परितायहि पाविट्ठई ॥

और वह भृत्य उसे अपने कुलरूपी आकाशके चन्द्र वृषभसेन नामक वणिक्के पास ले आया । एक दिन उसने सेठको प्यासा देखकर अपने केशोंको बाँधा और वह जलका कलश उठाकर उसके पास आयी ॥४॥

५

सेठानी द्वारा ईर्ष्यावश चन्दनाका बन्धन, महावीरको आहारदान व तप-ग्रहण

इसी अवस्थामें उसे धृष्ट, दुष्ट, कष्टदायी व क्रोधी सुभद्रा नामक सेठानीने देख लिया । चन्दनाके पापवृत्तिसे मुक्त और निःशल्य होनेपर भी उस दुष्ट सेठानीने उसका सिर मुड़वा डाला और उसके पैरोंमें लोहेकी सांकल बाँध दी । वह उसे प्रतिदिन काँजीके साथ कोदोंका भात खानेको देती थी । इस प्रकार जब उसे दण्डित किया जा रहा था, तभी संसारके भ्रमणको छिन्न करनेवाले परमेश्वरी जिनभगवान् वहाँ भिक्षाके निमित्त आये । उनका पङ्गाहन करके चन्दनाने उन्हें वही काँजी और ओदनका आहार विधिपूर्वक दिया । यह पात्रदान रूपी वृक्ष तत्क्षण ही फलित हो उठा और आकाशसे पुष्पकलियोंकी वर्षा हुई । दुन्दुभि बजने लगी तथा बहुतसे माणिक्य चमचमाने हुए प्रचुरमात्रामें वहाँ गिरे । देवोंने आकर उस देवीको रत्नोंसे जड़े हुए नाना प्रकारके आभूषण प्रदान किये और उसको चरणों की वन्दना की । उन देवीकी घोषणा व कोलाहल-ध्वनिसे तथा जय जयके शब्दोंके निनादसे आकृष्ट होकर रानी मृगावती अपने पुत्र सहित वहाँ आयी और उसने अपनी छोटी बहनको उसके गुणोंसे बड़ी होनेके कारण नमन किया । उस पापिनी वणिक् पत्नीने उसके साथ जो बुरा व्यवहार किया था, वह चन्दनाने नहीं बतलाया । सेठ और सेठानी दोनोंने उसके चरणोंमें नमन किया और कहा कि हम पापी पापसे पीड़ित थे । अब हम तुम्हारे चरण में प्रविष्ट हुए हैं । हे

- ता चंदणप्र भण्ड को दुअणु ।
 को संसारि एत्थु किर सज्जणु ॥
 धम्मै सव्वु होइ भल्लारउ ।
 ३० पावै पुणु जण-विप्पिय-गारउ ॥
 दस-दिसु पत्त वत्त जय-सिरि-धव ।
 आद्वय परमाण्डे वंधव ॥
 बंदिउ वीर-सामि परमप्पउ ।
 एयाणेय-वियप्पसमणउ ॥
 ३५ घत्ता—जिण-भय-पंकय-मूलि बारह-बिहु विस्थिण्णउ ।
 चंदणाइ तउ घोरु तहिं तक्खणि पडिवण्णउ । ५॥

इय वीरजिणिदचरिय चंदणस्तवमहणं णाम्म
 पंचमो संधि ॥५॥

(महानुराग संधि १८ से समाप्त)

परमेश्वरि, अब हम पापिष्ठोंकी रक्षा कीजिए । तब चन्दनाने कहा—इस संसारमें यथार्थतः कौन दुर्जन है और कौन सज्जन है ? धर्मसे ही सबका भला होता है, और पाप ही जोखोशा बुरा करनेवाला बन जाता है । यह वार्ता दशों दिशाओंमें फैल गयी । तब राजस्थीके धनी चन्दनानेके बन्धु-बान्धव भी परमानन्द सहित वहाँ आये । उन्होंने परमात्मा वीर भगवान् की वन्दना की । उन जिन भगवान् के चरण-कमलोंमें बैठकर एक व अनेक भेद रूप बारह प्रकारका महान् घोर तप उसी क्षण चन्दनाने स्वीकार कर लिया ॥५॥

इति चन्दना-तपप्रहण विषयक पंचम सन्धि समाप्त

सन्धि ॥ ५ ॥

संधि ६

परसेणिय-सुय-चिलायपुत्त-परीसह

१

सञ्चंगु वि मिलियहिं उज्जंगुलियहिं
चालणि व्य किउ धीर-मणु ।
तइवि हु निरवज्जहो न वि निय-कज्जहो
चलिउ चिलायपुत्तु समणु ॥

५

मगहा-विसणु आसि गुणवत्तउ ।
गुणहिलु सत्थवाहि वणि होतउ ॥
तेण सियालणु पंथे समत्थे ।
गच्छंतेण समेउ स-सत्थे ॥

१०

मुणि गामंतरे तवधर-नामउ ।
भिक्षागउ निणवि जिय-कामउ ॥
सिद्धउ अन्नु नत्थि समभावउ ।
गुलु तिल-वट्ठि देवि भुंजाविउ ॥
तेण फलेण दीवे पढमिल्लणु ।
हइमवयम्मि खेत्ते सोहिल्लणु ॥

१५

कालु करेण्णु कोस-पमाणउ ।
हुउ पलिओवस-जीविउ माणउ ॥
पुणु नंदणवणे सुरु तत्तो चुउ ।
मगहा-मंडले रायगिहे हुउ ॥
पस्सेणियहो नरिंदहो नंदणु ।
रुवे जण-मण-णयणाणंदणु ॥

२०

जणिउ चिलायणु देविणु जेण जे ।
नामु चिलायपुत्तु किउ तेण जे ।

घत्ता—एकहिं दिणे राएँ बद्ध-कसाएँ
अउदायणु उज्जेणि-पुरि ।

२५

संगरि संदाणहि बंधवि आणहि
पेसिउ पज्जोयहो उवरि ॥१॥

सन्धि ६

चिलातपुत्र-परीषद्-सदन

१

चिलातपुत्रका जन्म

उज्जंगुलि (काकी) ने आकर सर्वांग चालिनीके समान छेद डाला, तो भी धीरे मनस्वी चिलातपुत्र श्रमण अपने निर्दोष तपस्या-कार्यसे विचलित नहीं हुए । प्राचीन कालमें मगध देशमें गुणवान्-गुनहिल (गुणधीर) नामक सार्थवाह वणिक् रहता था । एक दिन वह अपने सार्थ सहित वनमार्गमें गमन कर रहा था, तभी एक ग्राममें उसने भिक्षा-के लिए आये हुए तपधर नामक कामविजयी मुनिको देखा । वणिक्के पास उस समय कोई सिद्ध अन्न नहीं था, अतएव उसने उन समभावी मुनिको गुड़ और तिलपट्टी देकर आहार कराया । इस पात्रदानके फल-स्वरूप वह मरने पर प्रथम द्वीप अर्थात् जम्बूद्वीपके शोभायमान हेमवत् नामक क्षेत्रमें एक कोश-प्रमाण शरीरयुक्त व पत्योपमकाल तक जीवित रहनेवाला मानव उत्पन्न हुआ । फिर वह नन्दन वनमें देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर मगधमण्डलके राजगृह नगरमें राजा प्रश्नेणिकका चिलातदेवी द्वारा उत्पन्न तथा रूपसे लोगोंके मन और नयनोंको आनन्द-दायी चिलातपुत्र नामक राजकुमार हुआ । एक दिन राजा प्रश्नेणिकने क्रुद्ध होकर राजपुत्र उदायनको यह आदेश देकर उज्जयिनीपुरीको भेजा कि वहाँके राजा प्रद्योतको युद्धमें जीतकर और बन्धनोंसे बांधकर मेरे पास ले आओ ॥१॥

२

- ता तहिं गउर-उरगपुर-सामिउ ।
 पञ्जोण बि रणे आयामिउ ॥
 वंधेवि धरिउ सुणेण्णिणु धुत्ते ।
 विजयक्खेण नराहिव-पुत्ते ॥
 ५ तत्थ सत्थ-वाहिणउ हवेण्णिणु ।
 आणिउ गंपि छलेण हरेण्णिणु ॥
 रोसे तेण देसु नासंतउ ।
 सवलु होवि पञ्जोउ पहुत्तउ ॥
 आयन्नेण्णिणु पहु चिंताविउ ।
 १० पट्टणम्मि पडहउ देवाविउ ॥
 जो महु वइरि धरेण्णिणु दावइ ।
 सो जं मग्गइ तं फुडु पावइ ॥
 ता चिलायपुत्ते हेराविउ ।
 १५ सरे जल-कील करंतउ पाविउ ॥
 वंधेवि उज्जेणी-वड आणिउ ।
 तूसेण्णिणु मंदणु सम्माणिउ ॥
 दिज्जउ मग्गिउ मग्गहा-राएँ ।
 पुरे सच्छंद-विहार पसाएँ ॥
 २० यत्ता—बहुकाले राणउ सुट्ठु सयाणउ
 घरु पुरु परियणु परिहरेवि ।
 भव-सय मल हरणहो गउ तवयरणहो
 रज्जे चिलायपुत्तु धरेवि ॥२॥

३

- ५ रज्जु करंतें आवइ पाचिय ।
 पय चिलायपुत्तं संताविय ॥
 तहो अन्नाउ नियवि नयवंतहँ ।
 जाउ अचित्तु मंति-सामंतहँ ॥
 रइउ मंतु सव्वहँ मणे भाविउ ।
 सेणिउ कंचिपुरहो आणाविउ ॥

२

चिलातपुत्रको राज्य-प्राप्ति

इसी बीच प्रद्योतने गौर उरगपुरके स्वामीको रणमें बाँध लिया। उसके बन्धनकी बात सुनकर मगध नरेशके विजय नामक पुत्रने सार्थवाहका वेश धारण करके छलपूर्वक उसे छुड़ा लिया और राजगृह ले आया। इस बातपर रष्ट होकर प्रद्योतने अपने दल-बल सहित मगध देशपर आक्रमण कर दिया। यह बात सुनकर मगध नरेन्द्रको चिन्ता उत्पन्न हुई और उन्होंने राजधानीमें भेरी बजवायी कि जो कोई भेरे बैरीको पकड़कर भुझे दिखलायेगा वह जो कुछ माँगेगा वही दूँगा। तब चिलातपुत्रने उसपर बात लगायी और जब वह जलक्रीड़ा कर रहा था तभी उस उज्जयिनीपति प्रद्योतको पकड़ लिया और बाँधकर राजगृह ले आया। राजाने सन्तुष्ट होकर अपने पुत्रका सम्मान किया। मगधराजने प्रसन्नता पूर्वक चिलातपुत्रको मन माँगा दान तथा नगरमें स्वच्छन्द विहारका उपहार दिया।

इसके बहुत काल पश्चात् जब राजा श्रेणिक बहुत सयाने हो गये तब उन्होंने घर, पुर और परिजनोका त्याग कर सैकड़ों भवों (जन्मों) के पापका हरण करनेवाला तपस्वरण स्वीकार कर लिया और राज्यपर चिलातपुत्रको प्रतिष्ठित कर दिया ॥२॥

३

चिलातपुत्रका राज्यसे निष्कासन व वनवास तथा
श्रेणिकका राज्याभिषेक

राज्य करते-करते चिलातपुत्रपर एक आपत्ति आ गयी, क्योंकि उससे प्रजा सन्तप्त हो उठी थी। उसका अन्याय देखकर नीतिवान् मन्त्रियों और सामन्तोंका चित्त उससे हट गया था। उन्होंने मन्त्रणा की जो सभीके मनको भा गयी। उन्होंने कांचीपुरसे श्रेणिकको बुला लिया।

१०

मिलिउ परिगगहु सयलु वि एविणु ।
 नीसारिउ वाइव चप्पेविणु ॥
 मायामहहो पास जाएविणु ।
 काणणे विससु कोट्टु विरएविणु ॥
 रज्ज-भट्टु हरेपिनि अत्तिदिणु ।
 थिउ जीवइ मावइयहो वित्तिणु ॥
 भइमित्तु तहो मित्तु पियारउ ।
 नं रामहो लक्खणु दिहि-गारउ ॥
 रुइमित्त-भाउलयहो केरी ।
 धीय सुइइ सुहाइ जणेरी ॥
 सो परिणहँ न पावइ अवरहो ।
 दिज्जइ लग्गी साविय पवरहो ॥

१५

२०

वत्ता—इय वत्त सुणेपिणु तत्थावेपिणु
 मेलावेपिणु सुइइ सय ।
 ते मइडे हरेपिणु कन्न लएपिणु
 जणहो नियंतहो वे वि गय ॥३॥

४

५

१०

वत्त सुणेपिणु सेणिय-राणउ ।
 अणुलग्गउ सेणाए ससाणउ ॥
 राउत्तहिं जाव ण हय-वाहिय ।
 गंपिणु वण-पवेसि पडिगाहिय ॥
 सुइ वि सूरा पउर भयंकर ।
 रायहँ किं करंति किर तक्कर ॥
 तट्टा के वि निरुद्धा बद्धा ।
 के वि कियंतहो जंपणे छुद्धा ॥
 चप्पवि नियवि निरारिउ सेन्नहो ।
 जिह अम्महँ तिह होइ न अन्नहो ॥
 एम भणेवि कुमारि वियारिय ।
 सा चिलायपुत्ते संघारिय ॥

समस्त परिजन जाकर एकत्र हुए और उन्होंने दुर्बुद्धि चिलातपुत्रको नगर-से निकाल बाहर किया। उसने अपने मातामहके पास जाकर वनमें एक प्रबल कोट बनाया। वह राज्यभ्रष्ट होकर वहाँ अनीतिपूर्वक चौरवृत्तिसे जीवन-यापन करने लगा। उसका एक भद्रमित्र नामक प्रियमित्र था, जैसे रामको लक्ष्मण अत्यन्त प्रिय थे। उस के रुद्रमित्र नामक मामाकी एक सुखदायक सुभद्रा नामक पुत्री थी। चिलातपुत्र उसका परिणय नहीं कर पा रहा था, क्योंकि उसका वाग्दान किसी अन्य बलवान्को कर दिया गया था। यह बात सुनकर चिलातपुत्रने सैकड़ों सुभट एकत्र किये और वहाँ आकर बलपूर्वक कन्याका अपहरण कर लिया। लोगोंके देखते-देखते ही वे दोनों वहाँसे चले गये ॥३॥

४

चिलातपुत्र द्वारा कन्यापहरण, श्रेणिक द्वारा आक्रमण किये जानेपर उसका घात तथा वैभारगिरिपर मुनि-दर्शन

यह बात सुनकर राजा श्रेणिक सेना सहित उसका पीछा करने लगा। राजा व धुड़सवार जब वहाँ पहुँच भी न पाये तभी उसने एक वन-प्रदेशमें जाकर उस कन्यासे विवाह कर लिया। यद्यपि उसके पास बहुत-से भयंकर शूरवीर योद्धा थे, तब भी भला चोर राजाका क्या सामना कर सकते हैं? उनमें-से कितने ही अस्त हुए, निरुद्ध हुए और बाँध लिये गये तथा कितने ही यमराजकी पालकीमें डाल दिये गये। सेना द्वारा किये गये उस भारी संहारको देखकर चिलातपुत्रने विचार किया कि जब यह

१५ वूई वंतरि तहिं जि वणंतरे ।
 अप्पणु पाण-भण्ण दु-संचरे ॥
 चड्डिउ पलाइऊण गरुयारण ।
 पव्वयम्मि पायणे वडमारण ॥
 वत्ता—मुणिदन्तु भडारउ भव-भय-हारउ
 सहूँ संघेण नियच्छियउ ।
 भय-वेविर-गत्त पाव-विरत्त
 २० तेण भवेप्पिणु पुन्छियउ ॥४॥

५

५ कहि कहि साहु किं पि संखेवें ।
 सारुवण्णु कहिउ जो देवें ॥
 ता उवण्णु तासु सुहयारउ ।
 कहिउ रिसीसैं सव्वहँ सारउ ॥
 जं इच्छसि तं नेच्छसु
 जं पुण नेच्छसि तुमं पुरिस-सीह ।
 तं इच्छसु जइ इच्छसि
 संसार-महन्नवं तरिदुं ॥
 १० विसयाइय पर-भाव विसज्जहि ।
 निव्विसयाइय निय पडिबज्जहि ॥
 सुणवि एउ निव्वेणँ लइयउ ।
 संखेवेण जे सो पव्वइयउ ॥
 आयन्नेवि थोवाउ विसेसैं ।
 थिउ पाउग्ग-मरणे संतोसैं ॥
 १५ ता सेणिउ स-सेन्नु तत्थायउ ।
 भाइ निणवि साहु संजायउ ॥
 चंगउ कियउ पसंस करेप्पिणु ॥
 गउ अंचेवि पुज्जेवि पणवेप्पिणु ॥
 एत्थंतरे वंतरिण निहालिउ ।
 २० वइर वसाण ताण खव्भालिउ ॥
 झाणत्थहो सव्वलियण हवेप्पिणु ।
 कट्ठिय लोयण सिरि वइसेप्पिणु ॥

कन्या हमारी हो चुकी है तब उसे अन्य किसीकी नहीं होने देना चाहिए । ऐसा विचार कर उसने उस कुमारीकी हत्या कर दी । वह मरकर उसी वनमें व्यन्तर देवी हुई । और चिलातपुत्र अपने प्राणोंके भयसे भागकर दुर्गम और उच्च ब्रह्म पर्वत पर जा बड़ा । उस पुण्यभूमिमें उसे भव-भयहारक मुनिदत्त नामक मुनिके संघ सहित दर्शन हुए । चिलातपुत्रने भयसे काँपते हुए शरीर सहित पापसे विरक्त होकर मुनिको नमस्कार किया और उनसे पूछा ॥६॥

५

मुनिका उपदेश पाकर चिलातपुत्रकी प्रव्रज्या, व्यन्तरी द्वारा उपसर्ग तथा मरकर अहमिन्द्र पद-प्राप्ति

हे साधु, मुझे संक्षेपमें वह सारभूत उपदेश कहिए जो जिनदेवने कहा है । तब उन मुनीश्वरने उसे सबमें सारभूत और सुखकारी उपदेश कहा जो इस प्रकार है—हे पुंस्वर, तू जिसकी इच्छा करता है उसकी इच्छा मत कर, और जिसकी तू इच्छा नहीं करता उसकी इच्छा कर, यदि इस संसार रूपी महासमुद्रको पार करना चाहता है । जो इन्द्रियोंके विषय आदि परभाव हैं उनको छोड़ और जो विषयों से रहित आत्मभाव है, उनको ग्रहण कर । मुनिका यह उपदेश सुनकर चिलातपुत्रको वैराग्य उत्पन्न हो गया और संक्षेप यह कि उसने प्रव्रज्या धारण कर ली । मुनिसे यह सुनकर कि अब उसकी आयु थोड़ी ही शेष रह गयी है, उसने विशेष सन्तोषके साथ प्रायोग्य मरण नामक समाधि ले ली । तब राजा श्रेणिक वहाँ अपने सैन्य सहित आया । और उसने देखा कि उसका भाई साधु हो गया है तब 'यह बहुत अच्छा किया' ऐसी प्रशंसा करके तथा पूजा, अर्चा व प्रणाम करके वहाँसे गमन किया । यहाँ इसी बीच उस व्यन्तरीने उसे देखा और बैरके वश होकर उसने उसका उपसर्ग किया । उसने चील पक्षीका रूप धारण करके उसके ध्यानस्थ होते हुए सिरपर बैठकर

बहु-मुंड-कीडियहिं निरंतर ।

सगहु नि कित विधेवि डेहंकर ॥

२५

घत्ता—पयणिय-पाणंतउ दुक्खु महंतउ

तं सद्धिऊण समाहि-जुव ।

सो सोक्ख निरंतरे पंचाणुत्तरे

सिद्धि - विमाणहमिदु हुव ॥५॥

‘इय वीरजिणिदक्षरिम् चिलायपुत्त-परोसह-सहणो णाम

छट्ठो संधि ॥ ६॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि ५० से संकलित)

उसकी आँखें निकाल लीं । उसने बड़ी-बड़ी मुण्डों वाले कीटोंके द्वारा उसके शरीरको चलनीके समान बेध डाला । ऐसी प्राणान्तकारी महान् दुःखकी वेदनाको सहकर भी समाधिमें तल्लीन रहकर चिलात-पुत्र मुनि निरन्तर सुखदायी पंचअनुत्तर विमानोंमें से सिद्धिविमानमें अहमिन्द्र देव हुए ॥५॥

इति चिलातपुत्र-परीषद् विषयक छठी सन्धि समाप्त

॥ सन्धि ६ ॥

संधि ७

सेणिय-रज-लंभो

१

ध्रुवकं—पणवेप्पिणु जिणवरु सिद्धि-वहू-वरु
दूरोसारिय-दुल्लभरिउ ।

आयण्णह वत्त-सोदणु जण-दण-सोदणु
आहासमि सेणिय-चरिउ ॥ ध्रुवकं ॥

५ खंडयं—जंबू-दीवि दाहिणे भारह-खेत्ति सोहिणे ।

मगहा देसि सुंदरं अत्थि रायगिहं पुरं ॥

जहि दोसु मण-वि न गुणु जि सव्वु ।

तहि अत्थि राउ पहयारि-गव्वु ॥

उवसेणिउ नामे परम-कित्ति ।

१० तहो सुप्पह देवि सु-सील-वित्ति ॥

हुउ पुत्तु ताह सेणिउ कुमारु ।

गुण-गण-निवासु पच्चक्खु मारु ।

पुव्विल्लु सरेप्पिणु वहर-हेउ ।

पञ्चत-चरेण पयंड-वेउ ॥

१५ एक्कहिं दिणि राएँ दुदुट्ठु आमु ।

अहिधम्मं संपेसिउ हयासु ॥

पेक्खेप्पिणु परिओसिउ मणेण ।

शुउ वाइ सिवेण स-परियणेण ॥

तथारुहेवि दुज्जउ बल्लेण ।

२० गउ याहियालि कोऊहलेण ॥

ता नर-हरि हरिणा हरिवि तेण ।

निउ भीसावणु वणु तक्खणेण ॥

चइऊण तुरउ तरु-तले निविदुट्ठु ।

तत्थ वि किराय-राएण दिदुट्ठु ॥

सन्धि ७

श्रेणिक-राज्य-लाभ

१

जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगधदेश, राजगृहपुर, राजा उपश्रेणिक,
रानी सुप्रभा, पुत्र श्रेणिक । सीमान्त नरेश अभिधर्मके
प्रेषित अश्व द्वारा राजाका अपहरण व वनमें
किरातराजकी पुत्री तिलकावतीसे विवाह

सिद्धिरूपी वधूके वर तथा दुश्चरित्र का दूरसे अपहरण करनेवाले
जिनेन्द्रकी प्रणाम करके मैं लोगोंके मनमोहक सुहावनी कथारूप श्रेणिक-
चरितका वर्णन करता हूँ । उसे सुनो । जम्बूद्वीपके दक्षिण भागमें शोभाय-
मान भरतक्षेत्र है और उसके मगध देशमें सुन्दर राजगृह नामक नगर है ।
वहाँ तनिक भी कोई दोष नहीं, और सभी गुण वर्तमान हैं । वहाँ शत्रुके
गर्वका विनाश करनेवाले परमकीर्तिवान् राजा उपश्रेणिक राज्य करते
थे । उनकी अत्यन्त शीलवती रानी सुप्रभा देवी थी । उनसे श्रेणिक कुमार
नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो नाना गुणोंका निवासभूत और साक्षात् काम-
देवके समान सुन्दर था । एक दिन उनके सीमान्तवर्ती राजा अभिधर्मने
पूर्व वैरका स्मरण कर मगधराजको एक प्रचण्डवेग, दुष्ट अश्व भेजा । उस
अश्वको देखकर राजाके मनमें बड़ा सन्तोष हुआ तथा उसने अपने परि-
जनों सहित अश्वकी खूब प्रशंसा की । वह बलपूर्वक दुर्जेय राजा कुतूहल-
वश उस अश्वपर आरुढ़ होकर बाहर मैदानमें गया । तत्क्षण ही वह अश्व
राजाका अपहरण करके एक भीषण वनमें ले गया । तुरगको छोड़कर
राजा जब एक वृक्षके नीचे बैठे थे, तभी वहाँके किरातराजने उन्हें देखा ।

२५

जमदंडं दुष्ट-कयंत-वासु ।
 संगहिउ नमंसिचि निउ निवासु ॥
 सम्माणिऊण अवितत्थ-संधु ।
 काऊण तेण वाया-निबंधु ॥
 जो होमइ आयह देव पुत्तु ।
 दायवु रज्जु तहो तई निरुत्तु ॥

३०

घत्ता—इय भणिबि मणोहर पीण-पओहर तिलयावइ तम-हर-मुहिय ।
 पेसिउ सुह-वट्टणु अरि-दलवट्टणु परिणावेप्पिणु निय-दुहिय ॥१॥

२

खंडयं—ता तहिं तीण समं तहो रइ-सोक्खं माणतहो ।
 बहु-समएण स-रीरउ जायउ मयप-स्सरीरउ ॥

५

किउ ताणं नाउ चिलायपुत्तु ।
 कालेण कुमार पमाण-यत्तु ॥
 एककहि दिणि सक्क-समाणएण ।
 पुच्छिउ नेमिस्सिउ राणएण ॥
 मह पच्छु पुत्तहँ मज्झु एत्थु ।
 कहि होसइ को रज्जहो समत्थु ॥
 आहासइ परियाणिय-समत्थु ।

१०

जो निव-सिवासण-मत्थयत्थु ॥
 ताडंतु भेरि भीमारि तासु ।
 सुणहाण देतु चर-मइ-पयासु ॥
 भुंजेसइ पायसु सो निरुत्तु ।
 होसइ तुह रज्जहो जोग्गु पुत्तु ॥

१५

ता तेण परिकखा-हेउ सव्वु ।
 सोहणि दिणि करणे सुलग्गो सव्वु ॥
 हक्कारिवि पंच वि सुय-सयाई ।
 भणियाई तरिदो तुय-पयाई ॥
 जं जं तुम्हहँ पडिहाइ वत्थु ।

२०

तं तं निम्संकिय लेहु एत्थु ॥
 निसुणेवि एउ पइसिय-मुहेहिं ।
 सहसा पुहई-सर-तणुरुहेहिं ॥

वह यमदण्ड नामक किरात दुष्टोंके लिए यम-निवासके समान उस राजाको तमस्कार करके उसे अपने घर ले गया और राजाका खूब सम्मान किया । किरातराजकी सुन्दर यौवनवती पुत्रीको देखकर राजा उसपर मोहित हो गया । तब किरातराजने राजाके साथ यह शपथबन्ध किया कि जो उसकी पुत्रीका पुत्र होगा उसे ही राज्य दिया जाये । ऐसा पक्का निबन्धन करके उसने अपनी मनोहर पीनपयोधर चन्द्रमुखी पुत्री—तिलकावतीका विवाह राजाके साथ कर दिया तथा उसके साथ सुखीभूत शत्रुविजयी राजाको उनके नगरको प्रेषित कर दिया ॥१॥

२

किरात कन्यासे चिल्लातपुत्रका जन्म । राजा द्वारा राजकुमारोंको परीक्षा

अपनी राजधानी राजगृहमें पहुँचकर राजा उपश्रेणिक अपनी इस नयी पत्नीके साथ रतिसुखका अनुभव करते हुए रहने लगा । बहुत समयके पश्चात् उनके मदनके समान सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ । पिताने अपने इस पुत्रका नाम चिल्लातपुत्र रखा । यथा समय कुमार अपनी तरुणावस्थाको प्राप्त हुआ ।

एक दिन उस इन्द्रके समान राजाने एक नैमित्तिकसे पूछा कि यह बतलाओ कि मेरे इन अनेक पुत्रोंके बीच कौन मेरे पश्चात् राज्यका भार सँभालनेमें समर्थ हो सकेगा । समस्त बातोंको जाननेवाले उस नैमित्तिक ने कहा—हे राजन्, जो राजपुत्र, राजसिंहासनके ऊपर बैठकर भेरी बजाता हुआ तथा श्वानोंको भी कुछ खानेको देता हुआ पायस (खीर) का भोजन करेगा वही अपनी श्रेष्ठ बुद्धिको प्रकाशित करनेवाला, भयंकर शत्रुओंको वस्त करनेवाला, तुम्हारे राज्यको सँभालने योग्य पुत्र होगा, इसमें सन्देह नहीं । यह सुनकर राजाने एक शुभ दिन, शुभकरण और शुभ लग्नमें परीक्षाके हेतु अपने सभी पाँच सौ पुत्रोंको बुलवाया । वे आकर राजाको प्रणाम कर बैठ गये । तब नरेन्द्रने उनसे कहा कि तुम्हें जो-जो वस्तु पसन्द हो, उस-उसको निःशंक होकर ले लो । राजाको यह बात सुनकर उन राजकुमारोंने प्रसन्नमुख होते हुए किन्हींने आभूषण

वत्ता—केहिं वि आहरणई हरि-करि-रथणई गंधई तंबोलई वरई ।
लइयई सुविचित्तई वर-वाइत्तई केहिं मि कुसुमई सुंदरई ॥२॥

३

खंडय—सेणिओ सिंहासणे मणि-नाण-किरणुवभासणे ।
आरुहेति भेरिं वरि थक्को काऊण करि ॥

५

परिवाहिण सूयारहिं कुमार ।
बइसारिय सयल वि णं कुमार ॥
रायाएसेण सुवण्ण-थाल ।
दाऊण खीरि बइबिय-रसाल ॥
भुंजंतहँ ताहँ ललंतर्जीह ।
पयिमुक्का मंडल नाई सीह ॥

१०

आवंत निएप्पिणु भीम साण ।
सहसा भएण सयल वि पलाण ॥
गंभीरु धीरु परि एक्कु थक्कु ।
सेणिय-कुमारु भय-भाव-मुक्कु ॥
ताडंतु विणोणँ भेरि दिंतु ।
सुणहाण थोव-थोवँ हसंतु ॥

१५

जेमिउ वीसत्थउ मइ-विसालु ।
जायउ निच्छय-मणु भूमिपालु ॥
जो रज्जहो जोगु अणंत-विज्जु ।
सो सव्व-पयत्ते पालणिज्जु ॥
इय चित्तिवि दायज्जहँ भएण ।

२०

पुहईसरेण जाणिय-नएण ॥
मंडल-विट्ठालिउ एहु पाउ ।
जो देसइ आयहो को वि ठाउ ॥
सो हउँ वि सु-निच्छउ तासु सव्वु ।
अवियारु हरेसमि पाण-दव्वु ॥

२५

वत्ता—इय देप्पिणु घोसण खल-मण-योसण
नीसारिउ नयरहो तुरिउ ।
तिस-भुक्खायामिउ सिंधुर-गामिउ
नंदगामु सो पइसरिउ ॥३॥

लिये, किन्हींने घोड़े, हाथी व रत्न लिये, किन्हींने उत्तम गन्ध व ताम्बूल लिये, किन्हींने विचित्र-विचित्र उत्तम वादित्र लिये, और किन्हींने सुन्दर पुष्प ही ग्रहण किये ॥२॥

३

राजपुत्र श्रेणिक परोक्षामें सफल, किन्तु भ्रातृ-वैरकी आशंकासे उसका निर्वासन

किन्तु राजकुमार श्रेणिक मणि-समूहोंकी किरणोंसे दीप्तिमान् सिंहासन-पर अपने सुन्दर हाथमें भेरी लेकर जा बैठा । रसोइयोंने उन सब कुमारों को, जो कार्तिकेयके सदृश थे, क्रमशः बैठाया और राजाके आदेशानुसार उन्हें स्वर्णके थालोंमें स्वादिष्ट खीर परोस दी । ज्यों ही उन्होंने अपना भोजन प्रारम्भ किया त्यों ही सिंहके समान जीभ लपलपाते हुए खान छोड़ दिये गये । सभी राजकुमार उन भयंकर श्वानोंको आते देख सहसा भयसे भाग उठे । किन्तु एकमात्र गम्भीर और धीर श्रेणिक कुमार भयकी भावनासे मुक्त होते हुए अपने आसनपर बैठे रहे । वे विनोदपूर्वक भेरी बजाते जाते थे और हँसते हुए थोड़ा-थोड़ा, भोजन कुत्तोंको भी देते जाते थे । इस प्रकार उस विशाल बुद्धिमान् राजकुमारने विश्वस्त भावसे अपना भोजन समाप्त किया । यह देख भूपालने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि यही राजकुमार राज्य करने योग्य है । साथ ही उन्होंने यह भी विचार किया कि, जो राजकुमार अनन्त विद्याओंका धनी है, और राज्य करने योग्य है उसका समस्त प्रयत्नपूर्वक संरक्षण करना चाहिए । ऐसा चिन्तन कर उस नीतिज्ञ धराधीशने दायदों (राज्यके भागीदार भ्राताओं) के बीच वैर के भयसे श्रेणिक कुमारको इस घोषणाके साथ नगरसे बाहर निकाल दिया कि इसने कुत्तोंके जूठे भोजन करनेका पाप किया है, अतएव जो कोई इसे अपने यहाँ ठहरनेको स्थान देगा, उसके समस्त धन और प्राणोंका भी मैं निश्चयरूपसे हरण कर लूँगा । ऐसे खल पुरुषोंके मनको प्रसन्न करनेवाली घोषणा कराकर राजाने तुरन्त ही श्रेणिक कुमारको नगरसे निकाल दिया । तब वह गजगामी राजकुमार भूख और प्याससे अस्त होता हुआ नन्दग्राममें जाकर प्रविष्ट हुआ ॥३॥

४

- अच्छइ तहिं भोयासत्तु जाम ।
 एत्तहं वि तासु ताएण ताम ॥
 दाऊण चिलायसुयस्स रज्जु ।
 धीरेण अणुद्विउ अप्प-कज्जु ॥
 संजायउ राउ चिलायपुत्तु ।
 सो करइ कयावि न किं पि जुत्तु ॥
 ता सत्तिहिं वूउ लहेवि सुद्धि ।
 संपेसिउ कंचीपुर सुवुद्धि ॥
 गंगूण तेग सुणह-सुयासु ।
 उवएसिउ वइयरु णिव-सुयासु ॥
 रज्जम्मि थवेवि चिलायपुत्तु ।
 संजायउ ताउ सुणी ति-गुत्तु ।
 सयल वि पय रज्जु करंतण ॥
 संताविय तेग कयंतण ॥
 किं बहुणा गच्छहुँ एहि सिग्घु ।
 कुरु रज्जु णिवारहि लोय-विग्घु ॥

यत्ता—जण-वल्लह पोमिणि जिह गय-गोमिणि परिपीडिय दोसायरेण ।
 संभरइ पहायरु देउ दिवायरु-तिह पई पय परमायरेण ॥४॥

५

खंडयं—अभयमई वसुमित्तउ पुच्छेवि कंतो कंतउ ।
 रायाणं स-पुरोहितं आयउ सो णिलयं णियं ॥

- गंणिणु चप्पेवि चिलायपुत्तु ।
 णीसारवि वल्लिउ अणय-जुत्तु ॥
 सुह-विणे सुहि-सयणहिं वद्धु पट्ठु ।
 सुंदर-मइ अरि-गय-घड-घरट्ठु ॥
 तोसेवि सु-वयणहिं सव्व-लोय ।
 थिउ रज्ज दिव्व भुंजंतु भोय । ५॥
 इयं वीर-जिनिदचरिण् सेणिय-रज्ज-लंसो णाम
 सत्तमो संधि ॥७॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोमु संधि १२ से संकलित)

४

चिलातपुत्रका राज्याभिषेक व अन्यायके कारण मन्त्रियों द्वारा श्रेणिकका आनयन

यहाँ भोगोंमें आसक्त रहते हुए एक दिन राजा उपश्रेणिकने अपना राज्यभार चिलातपुत्रको सौंप दिया और धीरतापूर्वक आत्मकल्याणका कार्य अर्थात् दीक्षा-ग्रहण सम्पन्न किया। चिलातपुत्र राजा तो हो गया, किन्तु वह उचित कार्य कदापि नहीं करता था। तब मन्त्रियोंने श्रेणिक-कुमारका पता लगाया और यह जानकर कि वे अब कांचीपुरमें जा पहुँचे हैं, उन्होंने एक बुद्धिमान् दूतको कांचीपुर भेजा। उसने सुप्रभाके पुत्र श्रेणिक राजकुमारके पास जाकर उन्हें वृत्तान्त सुनाया कि तुम्हारे पिता तो चिलातपुत्रको राज्यपर बैठाकर त्रिगुप्तिधारी मुनि हो गये, और इधर राज्य करते हुए चिलातपुत्रने यमके समान समस्त प्रजाको सन्तापित कर दिया है। बहुत कहनेसे क्या लाभ, आप शीघ्र ही हमारे साथ चलिए, राज्य सँभालिए और प्रजाके कष्टोंका निवारण कीजिए। जिस प्रकार लोकप्रिय पद्मिनी सूर्यके अस्त होनेपर दोषाकर अर्थात् निशाधीश चन्द्रसे परिपीड़ित होती हुई प्रभाकर सूर्यदेवका स्मरण करती है, उसी प्रकार प्रजा परम आदर भावसे आपकी प्रतीक्षा कर रही है ॥४॥

५

चिलातपुत्रका निर्वासन और श्रेणिकका राज्याभिषेक

श्रेणिक कुमार अपनी नयी परिणीता अभयमती और वसुमित्रा नामकी प्रियपत्नियोंसे तथा राजा व पुरोहितसे छुटकर अपने पूर्व निवास राजगृहमें आया। आते ही उसने अनीतिवान् चिलातपुत्रको पराजित कर वहाँसे निकाल बाहर किया। फिर एक शुभ दिन समस्त सुहृद् और सुजनोंने उस सुन्दर बुद्धिवाली शत्रुरूपी गज समूहको नष्ट करनेवाले राजकुमारको राजपट्ट बाँध दिया। अपने मधुर वचनों द्वारा सब लोगोंको सन्तुष्ट करता हुआ राजा श्रेणिक राजसिंहासनपर प्रतिष्ठित हुआ और दिव्यभोगोंका उपभोग करने लगा ॥५॥

इति श्रेणिक-राज्य-लाभ विषयक सप्तम खण्ड समाप्त

॥ सन्धि ७ ॥

संधि ८

सेणिय-धम्म-लाहो तित्थंकर-गोत्त-बंधो य

१

एक्कहिं दिणे किंकर-परियरिउ ।
 पारद्धिहे नरचइ नीसरिउ ॥
 अड्विहि पइसारि समण-परु ।
 परमेसरु अवही-नाण-धरु ॥
 मुणि असहरु पेण्डिचि असहरु
 पडिमा-जोएं दुरिय-हरु ।
 कहिं दिट्ठउ एहु अणिट्ठउ
 अ-सउणु कज्ज-विणास-यरु ॥

अइ-रोम-वसेण मुणीसरहो ।
 पुहईसरेण परमेसरहो ॥
 बह-हेउ कयंत व जणिय-भया ।

मुणहाण विमुक्का पंच-सया ॥
 मुणि-माहाप्पेण विणीय किया ।
 दाऊण पयाहिण पुरउ थिया ॥

ते निण्वि नरिंदे नि-णसरु ।
 करे करिवि सरासणु मुक्क सरा ॥
 मुणि-नाहहो होवि पुप्फ-पयरु ।

चलणोवरि वडिउ बाण-नियरु ॥
 पुणु सणु वित्तु मुउ झत्ति गले ।
 तवयरण-करण-णिट्ठविय-मले ॥

रिसि-वह-परिणामे तहिं समए ।
 नरयम्मि नरेसरु सत्तमए ॥
 बद्धाउ हवेण्णिणु उवसमिउ ।
 तं चोज्जु निण्वि मुणिहे नमिउ ॥

सन्धि ८

श्रेणिक-धर्म-लाभ व तीर्थंकर गोत्र-बन्ध

१

राजा श्रेणिककी आखेट-यात्रा मुनि-दर्शन व भाव-परिवर्तन

एक दिन राजा श्रेणिक अपने किकरों सहित आखेटके लिए निकला । वनमें पहुँचते ही उसने आत्म और परको समदृष्टि से देखने वाले अवधि-ज्ञानधारी यशस्वी परम मुनीन्द्र यशोधरको कर्मोंको नष्ट करनेवाले प्रतिमा योगमें स्थित देखा । उन्हें देखकर राजाने सोचा—अरे ! कार्य-विनाश करनेवाला यह अनिष्ट—अपशकुन मुझे कहाँसे दिख गया ? इस प्रकार अत्यन्त क्रोधके वशीभूत होकर राजाने उन परमेश्वर मुनीन्द्रका वध करनेके लिए उनपर यमराजके समान भयंकर पाँच सौ श्वान छोड़े । किन्तु मुनिके माहात्म्यसे वे विनययुक्त हो गये और उनकी प्रदक्षिणा करके उनके सम्मुख बैठ गये । यह देख कर राजाने अपने हाथमें धनुष लेकर तीव्र वाण छोड़े । किन्तु वह वाणोंका समूह भी पुष्पपुंज बनकर मुनिराज-के चरणोंमें जा पड़ा । तब राजाने एक मृत सर्प उठाकर तुरन्त उनके गलेमें डाल दिया जो कि अपने तपस्वरण द्वारा पापमलको दूर कर चुके थे । मुनिका वध करने की भावनाके कारण उसी समय राजाने सप्तम नरकमें उत्पन्न होनेका आयु-बन्ध किया । किन्तु उसी समय मुनिका उक्त आश्चर्य देखकर उनका मन उपशम भावसे व्याप्त हो गया और उन्होंने

२५ घत्ता—भयवर्ते सय-रिल-मिर्ते
 जाणेपिणु उवसंत-मणु ।
 वर-भासण पुण्ण-पयासण
 उरुचारिवि आसी-वयणु ॥१॥

२

दुक्किय-कम्मिधण-जलण-सिह ।
 किय धम्म-स्सवण अणेय-विह ॥
 निसुणेवि अणोवसु मुणि-वयणु ।
 निवु निंदिवि अप्पणु पुणु जि पुणु ॥
 ५ जायउ जिण-सासणि लीण-मणु ।
 पडिवन्नउ खाइउ सदहणु ॥
 नह-यलि सुरेहिं अहिणंदियउ ।
 ता राउ जाउ आणंदियउ ॥
 वंदेपिणु सिरि-असहर-सवणु ।
 १० आयउ पुहई-वइ निय-भवणु ॥
 दूरुज्झिय मिच्छा-समय-मणु ।
 सुहुं करइ रउजु पालिय-सुयणु ॥
 चेळ्ळण-महएविण परिचरिउ ।
 रामु व सीयाण अलंकरिउ ॥
 १५ एककहिं दियहम्मि सहा-भवणे ।
 जामच्छइ पडु नर-नियर-घणे ॥

घत्ता—आवेपिणु कर मउलेपिणु
 ता वणवालें विन्नविउ ।
 परमेसरु नाण-दिणेसरु
 २० देव-देउ सुर-नर-नविउ ॥२॥

३

सामिय तइलोय-लोय-सरणु ।
 अमराहिय-रइय-समोसरणु ॥
 जिय-दुज्जय-काम-कसाय-रणु ।
 दूरीकय जाइ-जरा-मरणु ॥

मुनिको नमन किया। वे भगवान् मुनि तो शत्रु और मित्रके प्रति समदृष्टि रखते थे। उन्होंने राजाको उपशास्तमन हुए जानकर पुण्यप्रकाशी उत्तम भाषामें आशीर्वादका उच्चारण किया ॥१॥

२

श्रेणिक राजा जैन-शासनके भक्त बनकर राजधानीमें लौटे

राजा श्रेणिकने यशोधर मुनिसे दुष्कृत कर्मरूपी ईधनको जलाने वाले अग्निके समान अनेक प्रकारका धर्म श्रवण किया। मुनिके उन अनुपम वचनोंको सुनकर राजाने बारम्बार अपने आपकी निन्दा की। वे अब जिन-शासनमें लीन-मन हो गये और उन्होंने आधिक सम्यक् दर्शनका लाभ प्राप्त किया। आकाशमें देवोंने उनका अभिनन्दन किया। इससे राजाको और भी अधिक आनन्द हुआ। फिर उन श्रमणमुनि यशोधरकी वन्दना करके राजा अपने भवनमें लौट आये। वे अब अपने मनसे मिथ्या मतोंको दूर छोड़कर सज्जनोंका पालन करते हुए, सुखपूर्वक राज्य करने लगे। चेलना महादेवीके साथ वे सीताके साथ रामके सदृश अलंकृत दृष्टिगोचर होते थे। एक दिन जब वे नर-समूहसे भरे हुए अपने राभा-भवनमें बैठे थे, तभी वनपालने आकर और हाथ जोड़कर बिनती की कि हे महाराज, देवों और मनुष्यों द्वारा नमित, ज्ञान-दिवाकर, देवोंके देव, परमेश्वर महावीरका आगमन हुआ है ॥२॥

३

महावीरके विपुलाचलपर आनेकी सूचना और श्रेणिकका उनकी वन्दना हेतु गमन

वनपालने कहा—हे स्वामी, त्रिलोकके लोगोंके शरणभूत, इन्द्र द्वारा जिसके समोदरणाकी रचना की जाती है, जिन्होंने दुर्जय काम और कषायके रणको जीत लिया है, जन्म-जरा और मृत्युको दूर कर दिया है

- ५ दुग्गाह-दुह-पंक-निदाह-दिणु ।
 विउल-हरि पराइउ वीर-जिणु ॥
 आयण्णेवि एउ धरा-धरणु ।
 तहो देवि सब्ब-अंगाहरणु ॥
 सहसत्ति कयासण-परिहरणु ।
 १० पय सत्त सु-विणयालंकरणु ॥
 परिओसिउ तहिसि कय-गमणु ।
 जय देव भणेवि पसन्त-मणु ॥
 पणवेण्णिणु भू-यलि लुलिय-तणु ।
 भेरी-रव-परिपूरिय-भुवणु ॥
 १५ सम्मतं संगय-सब्ब-जणु ।
 गउ वंदण-हत्तिणं करि व खणु ॥
 गच्छंतु संतु संपय-भवणु ।
 संपत्तउ सेल-समीव-वणु ॥

घत्ता—वर-वंसउ लद्ध-पसंसउ

- २० स-करि स-हरि स-वमरु स-सिरि ।
 धर-धारउ रयणहिं सारउ
 निय-समु राणं विट्ठु गिरि ॥३॥

४

- पणवेण्णिणु सम-परिणइ सणाहु ।
 संथुउ पय-भत्ति-भरेण साहु ॥
 तेण वि सुह-दुह-गह-नामण-हेउ ।
 उवाएसिउ धम्माहम्म-भेउ ॥
 ५ निसुणेण्णिणु सासय-सुह-निहाणु ।
 पडिवन्नेउ खाइउ सहहाणु ॥
 जो विहिउ साहु-वह-करणि भाउ ।
 तं सत्तम-निरं निबद्धु आउ ॥
 कट्टिवि तउ निरु निम्मल-मणेण ।
 १० पुणु बद्धु पढमि वंसण-बलेण ॥
 गुरु-संवेगेण मणोहिरामु ।
 एत्थज्जिउ पई तित्थयर-नामु ॥

तथा जो दुर्गतिके दुःखरूपी कीचड़को सुखानेके लिए ग्रीष्मकालीन दिनके समान हैं, ऐसे वीर जिनेन्द्र विपुलाचल गिरिपर आकर विराजमान हुए हैं। यह बात सुनकर राजा श्रेणिकमें अपने समस्त देहके आभूषण वनपालको दे दिये और तत्काल अपने सिंहासनको छोड़कर सद्बिनयसे अपनेको अलंकृत करते हुए वे सात पद आगे बढ़े। उन्होंने प्रसन्न होकर उसी दिन भगवान्की वन्दनाके लिए जानेका निश्चय कर लिया। उन्होंने 'जय देव' कहकर प्रसन्न मनसे भूमितलपर अष्टांग प्रणाम किया, और वन्दन-यात्राकी सूचना-रूप भेरी बजवा कर उसकी ध्वनिसे समस्त भुवनको परिपूरित कर दिया। सब लोगोंके एकत्र हो जानेपर, राजा श्रद्धापूर्वक वन्दनाभक्तिसे प्रेरित हो उत्सव सहित चल पड़ा। चलते-चलते वह राज्यलक्ष्मीका निधान राजा श्रेणिक पर्वतकी भूमिके समीपवर्ती वनमें पहुँचा। वहाँसे राजाने उस पर्वतको देखा जो उसके ही समान श्रेष्ठवंश (उत्तम कुल अथवा अच्छे बाँस वृक्षों) से युक्त था, प्रशंसा-प्राप्त था, हाथी, घोड़ों, चमर और शोभासे युक्त था, धराधारक तथा रत्नोंका सार था ॥३॥

४

सहावीरका उपदेश सुनकर राजा श्रेणिककी क्षायिक- सम्यक्त्वकी उत्पत्ति

राजाने समता भावसे युक्त होकर भगवान्को प्रणाम किया और उनके चरणोंकी भक्तिके भावसे प्रेरित हो उनकी स्तुति की। भगवान्ने भी राजाको शुभगतिमें जानेके हेतु धर्म तथा दुर्गति-गमनके हेतुभूत अधर्ममें भेद करनेका उपदेश दिया। वह उपदेश सुनकर राजाने शाश्वत सुखके निधान क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त किया। उन्होंने जो पहले साधुका बध करनेके भावसे सातवें नरककी आयुका बन्ध किया था, उसको काटकर अत्यन्त निर्मल भावसे अपने सम्यक् दर्शनके बल द्वारा उसे प्रथम नरकके आयुबन्धमें बदल दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने विशेष संवेग भावसे मनोहर तीर्थकर नाम-कर्मको अर्जित किया। गौतम गण-

- १५ भुवण-वइ-पणय-भायारविदे ।
 निवुइ-परे सम्मइ-जिण-वरिदे ॥
 तिल्लि जि संबळ्ळर अट्ट भास ।
 दस अवर वियाणहि पंच दिवस ॥
 एत्तिण अळ्ळंतिण तुरिण काले ।
 पंचत्तु हवेसइ तुह वयाले ॥
 सीमंत-नरण दुक्खहो खणीहि ।
 २० जाणवउ पहुँ पढमावणीहि ॥
 नारइउ निरंतर-दुक्ख-वरिसु ।
 होसहि चउरासी वरिस-सहसु ॥
 नांसारिदि तओ हय-दुक्ख-जालि ।
 ओसण्णिणीहे तइयम्मि कालि ॥
 २५ घत्ता—सिरिचंदुजल-किन्ति जग-गुरु सब्ब-सुहंकरु ।
 नामे पोसु महाइ होसहि तुहुँ तित्थंकरु ॥४॥

इय वीरजिणिदक्षरिण सेणिय-अम्मलाह-तित्थयर-गोत्त-अंधो णाम
 अट्टमो संधि ॥८॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि १३-१४ से संकलित)

धरने राजा श्रेणिकसे कहा कि हे राजन्, जब भुवनपतियों द्वारा जिनके चरणारविन्दको नमन किया जाता है वे सन्मति जिनेन्द्र निर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तब उसके तीन वर्ष, आठ मास और पन्द्रह दिवस इतना समयमात्र चतुर्थकालका शेष रह जायेगा, तभी वयोवृद्ध होते हुए तुम्हारी मृत्यु होगी और तुम दुःखी खानि प्रथम पृथ्वीके क्षीयमान नामक नरकमें जाकर उत्पन्न होगे। वहाँ तुम निरन्तर दुःखकी वृष्टि सहते हुए चौरासी सहस्र-वर्षों तक नारकीयके रूपमें रहोगे। वहाँसे अवसर्पिणीके तृतीयकालमें अपने सब दुःख-जालको दूर कर निकलोगे और चन्द्रके समान उज्ज्वल कीर्तिसे युक्त सर्वसुखकारी जगद्गुरु महापद्म नामक तीर्थकर होगे ॥४॥

इति श्रेणिक-धर्मलाभ व तीर्थकर-गोत्रबन्ध विषयक

अष्टम सन्धि समाप्त ॥ सन्धि ८ ॥

संधि ९

सेणिय-धम्म-परिकखा

१

- अवरु वि उवगूहण-अक्खाणउ ।
 कहमि समुज्झिय-दोसुट्ठाणउ ॥
 चउ-विह-सुर-निकाय-मज्झत्थे ।
 सुय-त्ताणोहिन्माण-सामत्थे ॥
 मिच्छा-धम्म-करिंद-मईदे ।
 अणुरंजोणेण कहणं सुरिंद ॥
 धम्म-स्सवण करत्ते संते ।
 फेडिय-पुच्छय-जण-मण-भत्ते ॥
 भूयलि राया सेणिय-सन्निउ ।
 दिठ-सम्मत्तु भणेप्पिणु वन्निउ ॥
 तं निसुणेवि अ-सदहसाणउ ।
 एप्पिणु नहि चोदय-स-विसाणउ ॥
 निग्रवि नराहिउ एंतु ससेणउ ।
 मग्ग-सरोवरि कड्ढिय-मीणउ ॥
 चासरवादिहाणु विक्खायउ ।
 सुर-वरु जाल-हत्थु रिसि जायउ ॥
 ता तहिं मग्गहेसरु संपत्तउ ।
 जइ आलोएवि जालु चिवंतउ ॥
 गुरु-हारज्जहे मीणप्पंतउ ।
 पणवेप्पिणु विणणण पउत्तउ ॥
 मई दासें होतेणाहम्मउ ।
 जुज्जइ तुम्हई एउ न कम्मउ ॥

वत्ता—जइ कळु भसेहिं तो तुम्हई पासत्थ पहु ॥
 अच्छह होएवि हउं संपाडमि मच्छ-वहु ॥१॥

सन्धि ९

श्रेणिक-धर्म-परीक्षा

१

श्रेणिक के सम्यक्त्वकी परीक्षा हेतु देवका धीवररूप धारण

कवि कहते हैं कि अब मैं यहाँ उपगूहन गुणके दृष्टान्त स्वरूप राजा श्रेणिक विषयक आख्यान कहता हूँ, जो सम्यक्त्वमें उत्पन्न होते हुए दोषों का निवारण कराता है। एक बार श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका सामर्थ्य रखनेवाले तथा मिथ्याधर्मरूपी गजेन्द्रके लिए मुगेन्द्रके समान सुरेन्द्रने चतुर्विध देव-निकायोंके मध्य बैठे हुए सभासदोंके मनोरंजनार्थ धर्मकथा कही, और प्रश्न-कर्ताओंकी भ्रान्तियोंको दूर किया। इस सम्बन्धमें उन्होंने पृथ्वीतलपर वर्तमान राजा श्रेणिकको दृढ़ सम्यक्त्वधारी कहकर उसकी प्रशंसा की। उसे सुनकर एक देवको उसके सच होनेका विश्वास नहीं हुआ। अतएव इसकी परीक्षा करने हेतु अपने विमानको आकाशमें चलाता हुआ वह देव वहाँ आया। उसने देखा कि राजा श्रेणिक अपनी सेना सहित जहाँ गमन कर रहा है। अतएव वह देव चामरव नामक विख्यात ऋषिका रूप धारण कर तथा अपने हाथमें जाल लेकर राजाके मार्गवर्ती एक सरोवरमें मछलियाँ पकड़ने लगा। जब मगधेश्वर वहाँ पहुँचे तब उन्होंने देखा कि एक ऋषि जाल फेंककर मछलियोंको पकड़ रहे हैं और उन्हें एक भारवाही अजिकाको देते जा रहे हैं। यह देख राजाने उन्हें प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहा कि—हे मुनिराज, मुझ दासके होते हुए, आपको स्वयं यह अधर्म-कार्य करना उचित नहीं है। यदि आपको मत्स्योसे काम है तो आप एक तरफ हो जाइए और मैं आपका यह मत्स्यवधका कार्य सम्पादित कर देता हूँ ॥१॥

२

- विधाणिय निम्मल-राउ मणेण ।
 पउत्तु पवंचु मुणिदे तेण ॥
 धराहिव एत्तिय-मेत्तहिं चेव ।
 पओयणु मीणहिं अन्नहिं नेव ॥
 तओ विरइहे कराउ लण्वि ।
 करे अणिमेस सभिच्चहो देवि ॥
 गओ मगहावइ रोहि नवेवि ।
 विसज्जिउ संजउ संजइ वे वि ॥
 निण्विणु तारिमु ताण विधम्मु ।
 दुगुंलइ लोउ वियवर-धम्मु ॥
 मुणेवि वियइद्धिण अन्न-दिणम्मि ।
 पिइंसु संदरिसांवेउ रम्मि ॥
 स-ल्लेह-दलाउ निर्यक-धराहु ।
 करेप्पिणु मुइउ जीवणु ताहु ॥
 विदिन्नउ सव्वहँ राय-सुयाहँ ।
 [पुरीस-विलित्तउ कारिवि ताहँ] ॥
 नवेप्पिणु निव्विदिगिंल्ल-मणेहिं ।
 करेवि कयंजलि सव्व-जणेहिं ॥
 चडाविउ ताउ लण्वि स-सीसे ।
 स-सेहरे चंपय-वास-विमीसे ॥

घत्ता—तं निष्ठेवि णिवेण भणिय सव्व-सामंत-वरे ।
 मुहियउ कियाउ किं तुम्हहिं विरयाउ सिरै ॥२॥

३

- जिय-सत्तु-चक्केण सुय-सामि-चक्केण ।
 विणएण संलविउ सामंत-चक्केण ॥
 एहम्ह जीवस्स चेयणए तणु जेम ।
 संपुज्जणिज्जादि-वंदणिय फुडु तेम ॥
 तं वयणु निसुणेवि कुल-कुमुय-चंदेण ।
 बिहसेवि तं भणिय सेणिय-नरिंदेण ॥

२

देवमुनिके घोवर-कर्मसे लोगोंमें दिगम्बरधर्मके प्रति घृणा तथा श्रेणिक द्वारा उसका निवारण

राजाको उस बातसे देवने अपने मनमें जान लिया कि राजाका सम्यक्त्वभाव सर्वथा विशुद्ध है। तथापि उन्होंने बहाना बनाकर कहा—हे राजेन्द्र, हमें इतने ही मत्स्योंसे प्रयोजन है, हमें और नहीं चाहिए। तब राजाने उस विरक्ता आर्थिकाके हाथसे मत्स्योंको ले लिया और अपने सेवकको सौंप दिया। फिर उन्हें नमस्कार करके मगध नरेश अपने घर चले गये तथा उस संयमी और संयमिनी दोनोंको विदा कर दिया। उस मुनि और अजिकाके उस अधर्म-कार्यको देखकर लोग दिगम्बर धर्मसे घृणा करने लगे। यह बात जानकर उस बुद्धिमान् राजाने एक दिन, एक निदर्शन (उदाहरण) उपस्थित करके दिखाया। उन्होंने जीवन वृत्ति-सम्बन्धी लेखपत्रोंको अपनी ताम्र-मुद्रासे अंकित करके तथा उन्हें पल्लसे विलिप्त करके सब राजपुत्रोंको वितरण कर दिया। उन्होंने उन दान-पत्रोंको पाकर मनमें किसी प्रकारके घृणाभाव धारण किये बिना हाथ जोड़कर राजाको नमन किया, और दानपत्रोंको अपने मुकुटयुक्त तथा चम्पक पुष्पोंकी बाससे सुगन्धित सिरोंपर चढ़ा लिया। यह देखकर राजाने उन सब श्रेष्ठ सामन्तोंसे कहा कि तुमने मेरी उन मलिन मुद्राओं को अपने सिरपर कैसे रख लिया ? ॥२॥

३

मलिन मुद्राओंके उदाहरणसे सामन्तोंकी शंका-निवारण व देव द्वारा राजाको वरदान

राजाके उक्त प्रकार पृच्छनेपर शत्रु-चक्रको जीतनेवाले तथा अपने स्वामीके भक्त उन सभी सामन्तोंने विनय पूर्वक उत्तर दिया—हे देव, जिस प्रकार हमारा यह शरीर मलिन होनेपर भी चेतना गुणके कारण श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार आपके द्वारा दिये हुए ये मुद्रांकित पत्र मलिन होते हुए भी हमारी जीविकाके साधन हैं, अतएव वे सब प्रकार पूजनीय और वन्दनीय हैं। उनके इस वचनको सुनकर अपने कुलरूपी कुमुदको चन्द्रमाके समान प्रसन्न करनेवाले श्रेणिक नरेन्द्रने मुसकराते हुए

- जइ निहिल-जिय-नाह-जिण-भुह-धारस्स ।
 गुरु-विणव-गुणैव मन्तव्हि-गेहस्स ॥
 मई मुयवि विदिगिंछ नवयारु किउ तासु ।
 १० ता तुम्ह किं कारण करहु उवहासु ॥
 ता तेहिं तं मन्नियं कय-पणामेहिं ।
 मन्नाविओ सामिओ विहिय-सामेहिं ॥
 तुहुं एक्कु पर धणु भो राय-राणस ।
 जसु अचलु मणु धम्म कय-पाव-विहेस ॥
 १५ निगवज्जु जय-पुज्ज पर एक्कु जिण-धम्म ।
 दोसैं अ-सक्कस्स किं होइ नउ गम्मु ॥
 तं सुणिवि आवेवि देवेण नर-नियर ।
 मज्झे नृवो भणिउ हो भावि-तित्थयर ॥
 वुत्तो सि तुहुं जारिसो देव-राणण ।
 २० अहिण्ण फुडु तारिसो धम्म-राणण ॥
 इय भणिवि पुज्जेवि वित्तंतु अक्खेवि ।
 गउ अमरु सुरलोउ तहो हारु वरु देवि ॥
 तं नियवि वित्तंतु मिच्छति पविरत्तु ।
 संजाउ जणु सव्वु जिण-समए अणुरत्तु ॥
 २५ घत्ता—अवरेण वि एव सासय-मोक्खुक्कंठिण्ण ॥
 कायव्वु सथा वि उवगूहणु समय-ट्ठिण्ण ॥३॥

इय वीरजिणिदचरिण्ण सेणिय-धम्म-परिक्खा-णाम
 णवमो संधि ॥९॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि ३ से संकलित)

उत्तसे कहा—यदि ऐसा है तो मैंने यदि, समस्त दुष्कर्मोंको जीतनेवाले जिनैन्द्र भगवान्की मुद्रा धारण करनेवाले, धीवर मुनिको भी गुरुविनय-पूर्वक, घृणा छोड़कर, नमस्कार किया तो तुम लोग किस कारण मेरा उप-हास करते हो ? राजाके इस दृष्टान्तसे उन सभी सामन्तोंने धर्मके मर्मकी बात समझ ली । उन्होंने राजाको प्रणाम किया और समताभाव सहित अपने स्वामीको मना लिया । उन्होंने कहा—हे राजराजेश्वर, हे पाप-विद्वेषी, आप ही एक धन्य हैं, जिनका मन धर्ममें इस प्रकार अचल है । यह जिनधर्म ही निर्दोष और सर्वोपरि जगत्-पूज्य है । जो कोई दोषोंमें अनासक्त है उसके लिए वह गम्य क्यों नहीं होगा ? यह सब देख-सुनकर वह देव वहाँ आया, और समस्त जनसमूहके मध्य राजासे बोला—हे भावी तीर्थकर, तुम्हारा जिस प्रकार वर्णन देवराजने किया था, उससे भी कहीं स्पष्टतः, कहीं अधिक तुम्हारा धर्मनिराग है । ऐसा कहकर, राजा की पूजाकर तथा अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाकर वह देव राजाको एक सुन्दर द्वार देकर देवलोकको चला गया । इस वृत्तान्तको देखकर सब लोग मिथ्यात्वसे विरक्त तथा जैनधर्ममें अनुरक्त हो गये । अन्य जो कोई भी धर्मावलम्बी शाश्वत सुखरूप मोक्षके लिए उत्कण्ठित हो उसे भी सदा इसी प्रकार उपगूहन अंगका पालन करना चाहिए ॥३॥

इति श्रेणिक-धर्म-परीक्षा विषयक नवम सन्धि समाप्त

॥ सन्धि ९ ॥

संधि १०

सेणिय-सुय-वारिसेण-जोय-साहणं

१

सिरिसेविष्ट चेळण-देविष्ट

कालें जंतें मल-विलड ।

संजणियड णामें भणियड

वारिसेणु सुड गुण-निलड ॥

५

रायगेहि पद्द-साहिब-रायहो ।

वारिसेणु सुड सेणिय-रायहो ॥

दंसण-नाण-चरित्त-समिद्धड ।

पालिय-पडवोवासु पसिद्धड ॥

एयंवरु निसि पडिमा-जोएँ ।

१०

अच्छड पिउवणे पाव-विओएँ ॥

तस्मिं चैथ नयरस्मि सत्तासड ।

अत्थि चोरु विज्जुचर-नामड ॥

अंभण-मोहणाइ-बहु-विज्जड ।

अंजण-सिद्धु कयंतु व विज्जड ॥

१५

साहस-पड बहु-वसणाकंतड ।

गणियासुंदरि-गणिया-कंतड ॥

एकहिं दियहिं जाम तहें मंदिरु ।

जाइ निसहिं सो नयणाणंदिरु ॥

ताम भज्ज पेच्छड बिच्छाई ।

२०

विगत्य-चंद चंदिम नें राई ॥

पुच्छिय मन्नावेवि थराणणि ।

रुद्ध समोवरि काहें अ-कारणि ॥

भासइ गणियासुंदरि दुल्लह ।

नड तुज्जुवरि कोहु भहु वल्लह ॥

सन्धि १०

श्रेणिक-पुत्र वारिषेणकी योग-साधना

१

वारिषेणकी धार्मिक वृत्ति । विद्युज्जर चोरकी प्रेयसी गणिकासुन्दरीकी
चेलना रानीका हार पानेका उन्माद

कुछ समय जानेपर लक्ष्मी द्वारा सेवित चेलनादेवीने वारिषेण नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पाप-विनाशक तथा गुणोंके निधान हुए । राजगृहमें नीतिसे समस्त राजाओंको नीतिके मार्गसे अपने वशमें करने-वाले राजा श्रेणिकका यह वारिषेण नामक पुत्र दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य से सम्पन्न पर्वोपवासका पालन करनेवाला प्रसिद्ध हो गया । एक बार वह एक वस्त्र धारण किये हुए श्मशानमें रात्रिके समय पाप-विनाशक प्रतिमा-योगसे स्थित था । उसी नगरमें लोगोंको आस देनेवाला विद्युज्जर नामक चोर रहता था । वह स्तम्भन, मोहन आदि बहुत सी विद्याओंको जानता था, और अंजनसिद्ध (अंजन द्वारा अदृश्य होनेकी कलाका ज्ञाता) था, जैसे मानो साक्षात् यमराज हो । वह बड़ा साहसी तथा अनेक व्यसनोंके वशीभूत था । इसका प्रेम नगरकी प्रसिद्ध वेश्या गणिकासुन्दरीसे था । एक दिन जब वह अपनी उस प्रेयसीके नेत्रोंको सुखद निवासपर रात्रिके समय गया, तब उसने अपनी उस प्रेयसीको उदास-मन देखा, जैसे मानो चन्द्रमाकी चाँदनीसे रहित रात्रि हो । चोरने उसे मनाकर पूछा, हे सुन्दरमुखी, तू बिना कारण मेरे ऊपर स्रष्ट क्यों हो गयी है ? इसपर गणिकासुन्दरीने कहा, हे मेरे दुर्लभ वल्लभ, मेरा तुम्हारे

२५

किंतुजाण-धणम्मि महा-पहु ।
 चिल्लण-देविहिं कंठि सुहावहु ॥
 हारु निएवि मज्झ उम्माहउ ।
 जाउव्विट्ठु भोय-धण-लाहउ ॥
 थिय पहेवि पिय तेणुदेएँ ।

३०

ता धीरिय धण कय-जण-खेएँ ॥

घत्ता—उट्ठुट्ठहि देवि करि सिंगारु चित्त हणहि ।
 किं एक्के तेण अबहु वि आणमि जं भणहि ॥१॥

२

रंजिऊण भामिणीहिं
 अद्धरत्ति रायगेहु
 निग्गओ लएवि हारु
 नं कयंत बद्ध-कोह
 ५ हार-तेय-मग्गि लग्ग
 जे मसण हक्कमाण
 काउसग्गि अच्छमाणु
 तत्थ पाय-पक्खि-सेणु
 घल्लिऊण चंदहासु
 १० नं किलेसु सिद्धु कोवि
 तं निएवि हारु लेवि
 तेहिं भासियं सुणेवि ।
 पेसिया भडा भणेवि
 दुट्ठण किं सुएण
 १५ किंकरा सुणेवि बाणि
 झत्ति एत्त तं पएसु

चित्तु हंस-गामिणीहिं ।
 गंपि वट्ट लच्छि-नेहु ।
 बुद्धिऊण पाय-चारु ।
 धाइया नरिंद-जोह ।
 वास मग्गया समग्ग ।
 बाण-जालु मेल्लमाण ।
 अपि अणु झायमाणु ।
 पेच्छिऊण वारिसेणु ।
 पाय-मूलि हारु तासु ।
 सो थिओ अ-लक्खु होवि ।
 गंपि सामिणो नवेवि ।
 राइणा सिरं धुणेवि ।
 एहु तासु कं लुणेवि ।
 कु-स्सुएण किं सुएण ।
 पत्थिवस्स खग्ग-पाणि ।
 जत्थ सो विसुद्ध-लंसु ।

घत्ता—चउदिसु वेदेवि झंकोलिउ सो तेहिं किह ।

रयणायर-वेल-जल-कल्लोलेहिं सेलु जिह ॥२॥

ऊपर कोई क्रोध नहीं है। किन्तु उद्यानवनमें मैंने चेलनादेवीके गलेमें महाकान्तिधान और सुहावना हार देखा है, जिससे मुझे उसे पानेका ही उन्माद हो उठा है और अन्य भोग व धनके लाभकी कोई इच्छा नहीं रही है। हे प्रिय, उसी उद्वेगसे सब कुछ छोड़कर बैठी हूँ। अपनी प्रेयसीकी यह बात सुनकर लोगोंको दुःख देनेवाले उस चोरने अपनी उस प्रियाको धैर्य बँधाया। उसने कहा—हे देवी, उठो-उठो, अपना शृंगार करो और चिन्ताको छोड़ो। उस एक हारकी तो बात ही क्या है, और भी जो वस्तु तुम कहो उसे लाकर दे सकता हूँ ॥१॥

२

विद्युच्चर चोर द्वारा रानीके हारका अपहरण तथा राजपुरुषों द्वारा पीछा किये जानेपर ध्यानस्थ वारिषेणके पास हार फेंककर पलायन। राजा द्वारा वारिषेणको मार डालनेका आदेश

अपनी उस हंसगामिनी भामिनीके चित्तको इस प्रकार प्रसन्न करके विद्युच्चर चोर अर्द्धरात्रिके समय धनके लोभसे राजमहलमें जा घुसा और रानीका हार लेकर वहाँसे निकल भागा। उसके पैरोंकी आहट सुनकर राजाके योद्धा सेवक क्रोधपूर्वक यमराजके समान उसके पीछे दौड़ पड़े। वे चोरके हाथमें जो हार था, उसके तेजके मार्गसे ही उसके पीछे लगे थे। वे हाँकें लगा रहे थे और बाणजाल छोड़ रहे थे। जब वह चोर श्मशानमें पहुँचा, तब उसने वहाँ कायोत्सर्ग मुद्रामें स्थित अपनेमें अपनी आत्माका ध्यान करते हुए वारिषेणको देखा। वह पापी चोर श्येन पक्षीके समान वारिषेणके चरणोंमें, अपने उस चन्द्रहास हारको फेंककर, किसी सिद्ध हुए क्लेशके समान अदृश्य होकर ठहर गया। राजसेवकोंने हारको देखा और उसे लेकर वे राजाके पास गये। उन्होंने राजाको सब वृत्तान्त सुना दिया। उनकी बात सुनकर राजा ने अपना सिर हिलाया और अपने भट्टोंको यह कहकर भेजा, कि तुम जाकर वारिषेणका सिर काट डालो। दुष्ट पुत्रसे क्या लाभ? कुत्सित शास्त्रके मुननेसे क्या हित होता है? राजाकी वाणी सुनकर वे किकर हाथमें खड्ग लेकर तत्काल उस स्थानपर पहुँचे जहाँ शुद्ध भावनाओंसे युक्त वारिषेण ध्यानमग्न था। भट्टोंने उसे चारों ओरसे घेरकर ऐसा ढक्कड़ोरा जैसे समुद्र तटपर जलकी कल्लोलोंसे पर्वत ॥२॥

३

जाई जाई पहरणई सरोसहिं ।

मुकई रायाएसँ दासहिं ॥

ताई ताई होइबि सययत्तई ।

धम्म-फलेण धरायलु पत्तई ॥

५

पुणु असि-लट्ठि पमेल्लिय कंठहो ।

विञ्जु व मेहहिं गिरि-उवकंठहो ॥

सा बि माल संजाय सुहिल्लिय ।

नं तव-बहुप्र सयंवरि वल्लिय ॥

तहिं अवसरि नहि दंदुहि वज्जिय ।

१०

एवि सुरेहिं तासु पय पुज्जिय ॥

तं सुणंवि किय-पडर-विसाएँ ।

गंपि पुत्तु मन्नाविउ राएँ ॥

अच्छिउ तो वि नेव कुल-मंडणु ।

जाउ महा-रिसि कोह-विहंडणु ॥

१५

एक्कहिं वासरि पालिय-दिक्खहे ।

गासु पलासखेडु गउ भिक्खहे ॥

तत्थ फुफ्फ-डालेण नियच्छिउ ।

धाल-सहाएँ एतु पडिच्छिउ ॥

भुंजाविबि बोलायहुँ मुणिवरु ।

२०

निग्गउ पिय पुच्छेप्पिणु दियवरु ॥

रम्म-पएस-सयाई कहंतउ ।

गउ दूरंतहो पय पणवंतउ ॥

तो वि नियत्तहे भणइ न संजउ ।

गय वेणिण वि जण जहिं रिसि-आसउ ॥

२५

धत्ता—केण वि तहिं वुत्तु वक्करेण गुण-मणि-खणिहे ।

तवचरणहो आउ सहयरु वारिसेण-मुणिहे ॥३॥

४

तं सुणेबि लज्जापे पव्वइयउ ।

अच्छिउ रइ-संभरणे लहयउ ॥

बारह वरिसई महि विहरंतउ ।

समवसरणु स-मित्तु संपत्तउ ॥

३

देवों द्वारा वारिषेणकी रक्षा । राजाके मनानेपर भी मुनि-
दीक्षा एवं पलासखेड़ ग्राममें आहार-ग्रहण

राजाके आदेशानुसार उसके दासोंने रोयपूर्वक जीन्ने, खर-रुख छोड़े वे सभी वारिषेणके धर्मफलसे कमलपुष्प होकर धरातल पर गिरे । तब राज-पुरुषों ने उसके कण्ठ पर खड्गसे प्रहार किया, जैसे मेषपर्वतकी उपकण्ठ भूमिपर बिजलीका प्रहार हुआ हो । किन्तु वह खड्ग भी सुखदायी पुष्पमाला बनकर उसके कण्ठपर ऐसा गिरा जैसे मानो तपस्वी वधूने उनके गलेमें स्वयंवर-माला अर्पित की हो । उस अवसरपर आकाशमें दुन्दुभी बजी और देवोंने आकर उनके चरणोंकी पूजा की । इस अतिशयका वृत्तान्त सुनकर राजाको बहुत खेद हुआ और उसने स्वयं जाकर अपने पुत्रको मनाया । किन्तु इसपर भी वे कुलभूषण वारिषेण घरमें न रहे । वे क्रोधके विनाशक महाऋषि बन गये ।

अपनी दीक्षाके व्रतोंका पालन करते हुए, एक दिन वारिषेण मुनि भिक्षाके लिए पलासखेड़ नामक ग्राममें गये । वहाँ उनका बालकपनका साथी पुष्पडाल नामक ब्राह्मण रहता था । उसने जब वारिषेणको गाँवमें आते देखा तो उन्हें आमन्त्रित किया और आहार कराया । वह मुनिवर-के मुखसे कुछ बुलवाना चाहता था, अतएव अपनी भायसि पूछकर मुनिके साथ ग्रामसे चला गया । वह सैकड़ों रम्य प्रदेशोंका वर्णन करता जाता था । बहुत दूर तक चले जानेपर उसने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया, किन्तु इसपर भी उन संयमी मुनिने उसे लौट जानेको नहीं कहा, और वे दोनों जन उस स्थानपर पहुँच गये जहाँ ऋषि-आश्रम था । वहाँ किसी एकने व्यंगात्मक वाणीमें कहा, देखो, इस गुणरूपी मणियोंके खान वारिषेण मुनिका एक सहचर तपश्चरणकी दीक्षा लेने यहाँ आया है ॥३॥

४

पुष्पडाल ब्राह्मणकी दीक्षा, मोहोत्पत्ति
और उसका निवारण

पूर्वोक्त बात सुनकर वह ब्राह्मण लज्जित हुआ और उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली । तथापि उसे अपनी गृहस्थीके भोगविलासका स्मरण बना रहता था । उसने अपने मित्रके साथ बारह वर्ष तक विहार किया और

- ५ तत्थ नवेप्पिणु वीर-जिणिदहो ।
 वे वि बइह मज्झि मुणि-विंदहो ॥
 धम्माहिम्मु सुहासुह-संगमु ।
 आशरणेविणु-तत्थ कउ निप्पामु ॥
 जंतहँ ताहँ लया-हर-भंडवि ।
 १० गायउ केण वि सुर-यण-तंडवि ॥
 “मइल कुचेली दुम्मणा नाहँ पव्वसिएण ।
 किंम जीवेसइ धणिय धर उच्चंती विरहेण ॥”
 सुणवि एउ द्विय-मुणि मणि सल्लिउ ।
 पियहँ पासु निय-गामहो चल्लिउ ॥
 १५ चलमणु परियाणेप्पिणु धुत्ते ।
 निउ निय-नयरहो भोलिवि मित्ते ॥
 पुत्तु स-मित्तु एंतु पेक्खेप्पिणु ।
 सहसा अब्भुट्ठाणु करेप्पिणु ॥
 नविवि परिवत्ता-हेउ रवणहँ ।
 २० चेत्थगाए आसणहँ विहण्णहँ ॥
 नीरायासणम्मि बइसेप्पिणु ।
 निय-अतेउर कोक्कावेप्पिणु ॥
 लइ लइ एयउ मित्त स-रज्जउ ।
 भणित वारिसेणेण मणोज्जउ ॥
 २५ किं भणु एक्कए ताए निहीणए ।
 वंभणीए दोगक्खे खीणए ॥
 तं निसुणेवि मुट्ठ सो लज्जिउ ।
 दिढ-मणु दु-प्परिणाम-विचज्जिउ ॥
 तहो दिवसहो लग्गिवि संजायउ ।
 ३० गुरु-आलोयण-तिल्ले प्हायउ ॥

पप्ता—अवरेण वि एव चल-चित्तहो दुक्खिय-हरणु ।
 कायवु अवस्स पवर-पवत्तिहिं ठिदिकरणु ॥४॥
 इय वीरजिणिदचरिणु सेणिय-सुय-वारिसेण-जोय-साहणं
 णाम दहसो संधि ॥१०॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि ३ से संकलित)

तत्पश्चात् वे भगवान् महावीरके समवशरणमें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने वीर जिनेन्द्रको नमन किया और दोनों जन मुनिवृन्दके बीच जा बैठे । उन्होंने वहाँ धर्मके द्वारा शुभकर्म और अधर्मके द्वारा अशुभ कर्मके आगमनका उपदेश सुना और तत्पश्चात् वे वहाँसे बाहर निकल आये । जब वे जा रहे थे, तब एक स्थानपर लतागृह-मण्डपमें देवगणोंके ताण्डव नृत्यके साथ किसीके द्वारा गाया हुआ एक गीत सुनाई पड़ा जो इस प्रकार था — अपने पतिके प्रवासमें जानेपर उसकी मैली-कुचैली उदासमन पत्नी विरहसे जलती हुई कैसे जीवित रह सकती है ? यह गीत सुनकर उस द्विज-मुनिके मनमें शूल उत्पन्न हुआ और वह अपनी प्रियाके पास पहुँचनेके लिए अपने ग्रामकी ओर चल पड़ा । उसको विचित्रता घटत हुआ जानकर उसका चतुर मित्र भुलावा देकर उसे अपने नगरकी ओर ले गया । अपने पुत्रको मित्र सहित आते देख रानी चेलना ने अकस्मात् उठकर उनका स्वागत किया, नमन किया और परीक्षा-हेतु, उन्हें रमणीय आसन बैठनेको दिये । किन्तु वारिषेण त्यागियोंके योग्य आसनपर ही बैठे । फिर उन्होंने अपने अन्तःपुरकी स्त्रियोंको बुलवाया और कहा— हे मित्र, इनमें जो तुम्हें मनोज्ञ दिखाई दें, उन्हें राज्य-सहित ग्रहण कर लो । भला बतलाओ, इनके आगे उस एकमात्र दीन-हीन तथा दुर्गतिसे क्षीण ब्राह्मणीसे क्या लाभ ? वारिषेणकी यह बात सुनकर वह ब्राह्मण बहुत लज्जित हुआ । उसने अपने मनकी दुर्भावनाओंको छोड़ दिया और वह धर्ममें दृढ़मन हो गया । उस दिनसे लेकर वह सच्चा संयमी बन गया और उसने अपनी पाप-भावनाकी आलोचनारूपी तीर्थमें स्नान कर लिया ।

इसी प्रकार दूसरोंके द्वारा भी जिसका मन धर्मसे चलायमान हो, उसका अवश्य ही उत्तम उक्तियों और उदाहरणोंसे पाप विनाशक स्थितिकरण करना चाहिए ।

इति श्रेणिकपुत्र वारिषेणकी योगसाधना विषयक

दशवीं सन्धि समाप्त ॥सन्धि १०॥

संधि ११

सेणिय-सुय-गयकुमार-दिक्खा

१

पेच्छह जिणिद-धम्मदो पहाउ ।
 तिरियह वि तुम लहन्नारे जाउ ॥
 अट्टारह-जल-निहि-जीवियंति ।
 पुरे रायगेह मगहा-जणंते ॥
 धणसिरियह सेणिय-निव-धणाहे ।
 अबइन्नु उयर नव-जोव्वणाहे ॥
 सिविणंतरे देविण दिट्ठु नाउ ।
 पंचमण मासे दोहलउ जाउ ॥
 पुरि परियणेण सहूँ रहय-सोहे ।
 आरुहवि दुरण चल-महुयरोहे ॥
 वरिसंते विमले जले दुहिणम्मि ।
 मह-उच्छवेण गंणिणु वणम्मि ॥
 कीलेवण अत्थि पियाणुराउ ।
 चिंताविउ तं गिसुणेवि राख ॥
 सो अभयकुमारें चारु-चित्तु ।
 पूरविउ सरेप्पिणु खयरु सित्तु ॥
 सोहण-दिणे जण-मण-जणिय-हरिसु ।
 उप्पन्नउ धन्नउ पुज्ज-पुरिसु ॥
 सिविणण गउ देविण दिट्ठु जेण ।
 किउ गयकुमारु तहो नामु तेण ॥

धत्ता—वड्ढिउ जाउ जुवाणउ सयल-कला-कुसलु ।
 मयणु व रुव्वे जिणेसर-पाय-पोम-भसलु ॥१॥

सन्धि ११

श्रेणिक-पुत्र गजकुमारकी दीक्षा

१

श्रेणिक-पत्नी धनश्रीका गर्भधारण, दोहला

तथा गजकुमारका जन्म

जैनधर्मके इस प्रभावको देखिए कि एक तिर्यच भी सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ। वहाँ अपनी अठारह सागरोपम आयुके पश्चात् वह मगध देशके राजगृह नगरमें श्रेणिक राजाकी नवयौवना पत्नी धनश्रीके उदरमें अवतीर्ण हुआ। रानीने अपने स्वप्न में एक नाग (हस्ती) देखा और तदनुसार ही गर्भके पाँचवें मासमें उसे एक दोहला उत्पन्न हुआ। उसकी इच्छा हुई कि पुरीके परिजनों सहित शोभायमान व भ्रमरसमूहोंसे युक्त हाथी-पर आरूढ़ होकर जब आकाश मेघाच्छादित हो और शुद्ध जलवृष्टि हो रही हो, तब महान् उत्सवके साथ वनमें जाकर क्रीडा की जाये। अपनी प्रियपत्नीकी यह इच्छा जानकर प्रियानुरागी राजा श्रेणिक चिन्तित हो उठे। किन्तु इस दोहलेकी पूर्ति अभयकुमारने अपने सद्भावपूर्ण विद्याधर मित्रके स्मरणसे की। तत्पश्चात् एक शुभ दिन वह धन्य पुण्यशाली पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसने सब लोगोंकी मनःस्थितिमें हर्ष उत्पन्न कर दिया। देवीने अपने स्वप्नमें एक गजको देखा था, अतएव उनके उस पुत्रका नाम गजकुमार रखा गया। बढ़ते-बढ़ते गजपुत्र धौवनको प्राप्त हो गये। वे समस्त कलाओंमें कुशल, मदनके समान सुरूप तथा जिनेश्वरके चरण-कमलोंके भ्रमर समान सेवक हुए ॥१॥

१

- एकहिं वासरि वीरु जिणेसरु ।
 आगउ गउ तं नवहुं नरेसरु ॥
 आयन्नेवि धम्मु वित्थारें ।
 लइय दिक्ख तहिं तेण कुमारें ॥
 ५ संचरंतु आगणे तित्थयरहो ।
 गउ कलिंग-विसयहो दंतिउरहो ॥
 पच्छिम-दिसिहो दियंवर-सारउ ।
 गयकुमारु गिरि-सिहरे भडारउ ॥
 थिउ आयावणे जोय-नरोहें ।
 १० पणविउ गंपिणु भव्व-नरोहें ॥
 तन्नयराहिवेण णर-सीहें ।
 विसम-वहरि-दाणव-नरसीहें ॥
 तिठ्ठावउ विसहंतु नियच्छिउ ।
 बुद्धवासु निय-मंति पपुच्छिउ ॥
 १५ संघहिं काहें एउ एमच्छइ ।
 ता पच्चुत्तरु पिसुणु पयच्छइ ॥
 घत्ता—एहु अणाहु समीरे सुद्ध कयत्थियउ ।
 तेणत्थच्छइ सामि तिठ्ठाववे थियउ ॥२॥

३

- पुच्छिउ पुणु वि णरिंदें आयहो ।
 फिट्ठइ कैम पहंजणु कायहो ॥
 भणिउ अमञ्जे एत्तिउ किज्जइ ।
 एयहो सिल तावेप्पिणु दिज्जइ ॥
 ५ ता पुहईसैं सो जे पउत्तउ ।
 कारावहि पडियारु निरुत्तउ ॥
 तेण वि पाविय-रायाएसैं ।
 सिल तावावेवि मुक्क विसेसैं ॥
 एत्तहं चरिय करेवि नियत्तउ ।
 १० तत्थारुद्धउ चारु-चरित्तउ ॥

गजकुमारकी दीक्षा, दन्तीपुरकी यात्रा तथा वहाँ पर्वतपर आतापन योग

एक दिन वहाँ वीर जिनेन्द्रका आगमन हुआ। उनको नमन करनेके लिए राजा श्रेणिक उनके पास गये, उस अवसरपर विस्तारपूर्वक धर्मोपदेशका श्रवण करके गजकुमारने वहीं दीक्षा ले ली। वे फिर तीर्थंकरकी आज्ञानुसार विचरण करते हुए कलिंग देशके दन्तीपुर नामक नगरमें पहुँचे। नगरकी पश्चिम दिशामें पर्वतके शिखरपर वे श्रेष्ठ और पूज्य दिगम्बर मुनि गजकुमार योग-निरोध करके आतापन योगमें स्थित हो गये। भव्यजनोंने जाकर उन्हें प्रणाम किया। उस नगरके राजा नरसिंह, जो अपने बैरीरूपी दानवोंके लिए नरसिंह थे, ने गजकुमार मुनिको तीव्र आताप सहते हुए देखा और अपने मन्त्री बुद्धदाससे पूछा कि इस मुनि-संघमें यह एक मुनि इस प्रकार क्यों आताप सह रहा है? इसपर उस दुष्ट मन्त्रीने उत्तर दिया—यह बेचारा अनाथ वातरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो गया है और इसलिए वह इस तीव्र सूर्यकी गर्मीमें स्थित है ॥२॥

शिला-स्थापनसे उपसर्ग, गजकुमारका मोक्ष और राजा तथा मन्त्रीका जैनधर्म-ग्रहण

मन्त्रीकी यह बात सुनकर राजाने उससे पूछा कि मुनिके शरीरका यह वातरोग किस प्रकार मिटाया जा सकता है? अमात्यने कहा—महाराज, ऐसा करना चाहिए कि इनके बैठनेकी शिलाको तप्तयमान कर दिया जाये। तब इसपर राजाने मन्त्रीसे कहा कि तुरन्त मुनिके रोगका यह प्रतिकार करा दो। मन्त्रीने भी राजाका आदेश पाकर उस शिलाको खूब अग्नि द्वारा तापित कराके छोड़ दिया। इधर जब गजकुमार मुनि नगरमें आहारनिमित्त चर्चा करके लौटे तब वे शुद्ध चारित्रवान् उसी तपी

सो उवसग्गु सहेप्पिणु धीरउ ।
 गउ मोक्खहो जायउ अ-सरीरउ ॥
 देवागमणु निण्वि उवसंतउ ।
 जायउ बुद्धदासु जिण-भत्तउ ॥
 नरसीहु वि नरपालहो पुत्तहो ।
 रज्जु समप्पेवि गुण-गण-जुत्तहो ॥
 राय-सहासे सहुँ पव्वइयउ ।
 हुयउ पसिदुधु तन्नमि अइसइयउ ॥

१५

वत्ता—सिरिचंदुल्लल-कायउ देव-निकाय-थुउ ।
 जायउ गेवज्जामरु कार्ल कलुस-चुउ ॥३॥

२०

हय वीरजिणिदचरिण् सेणियसुय-गयकुमार-दिक्खा-वण्णणो
 णाम एयदइमो संधि ॥११॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु ४९ से संकलित)

हुई शिलापर आसीन हो गये । उस उपसर्गको धैर्यके साथ सहन करके वे मोक्षगामी और अशरीरी सिद्ध हो गये । उस समय उनके निर्वाण-उत्सवके लिए जो देवोंका आगमन हुआ, उसे देखकर बुद्धदास मन्त्रीके मनमें भी उपशम भाव उत्पन्न हो गया और वह जिन भगवान्का भक्त हो गया । राजा नरसिंह भी अपने गुणशाली पुत्र नरपालको राज्य समर्पित करके अन्य एक सहस्र राजाओंके साथ प्रव्रजित हो गये, और वे अपनी तपस्या द्वारा अत्यन्त प्रसिद्ध हुए । वे चन्द्रके समान उज्ज्वल-काय होते हुए, देवसमूहों द्वारा प्रशंसित होते हुए, यथासमय पापोंसे मुक्त होकर, ग्रैवेयक स्वर्गमें देव हुए ॥३॥

इति श्रेणिकसुत गजकुमारकी दीक्षा विषयक व्याख्यानं
सन्धि समाप्त ॥ सन्धि ११ ॥

संधि १२

तित्थंकर-देसणा

?

- कय-पंजलि-यरु पणसंत-सिरु
भत्ति-हरिस-वियसिय-वयणु ।
संसार-दुक्ख-गिळ्वंइयउ
जोयवि मिलियउ भव्व-यणु ॥
- ५ ता गिग्गंत-धीर-दिव्व-ज्झुणि-
तोसिय-फणि-णरामरो ।
जीवाजीव-णाम-कय-भेयइँ
तच्चइँ कहइ जिणवरो ॥
- १० स-भवाभव जीव दुमेय होति ।
ते स-भव स-कम्मे परिणमंति ॥
चउरासी-जोणिहि परिभमंति ।
अण्णण्ण-देह-राणं रमंति ॥
वियल्लिंदिय सयल्लिंदिय अणेंय ।
एक्किंदिय भासिय पंच-भेय ॥
- १५ आहार-सरीरिंदिय-मणाहँ ।
आणा-भासा-परमाणुयाहँ ॥
जं कारणु गिळ्वत्तण-समत्थु ।
तं पज्जत्ति-त्ति भणंति एत्थु ॥
तं छविहु परमेसे पवत्तु ।
अहमेण ठाइ अंतोमुहुत्तु ॥
- २० जिह्णारणसु तिह्ण सुवरेसु ।
दस-वरिस-सहासइँ वसइ तेसु ॥
परमे ति-तीस सायर-समाइँ ।
मणुएसु तिणिण पलिओवमाइँ ॥

सन्धि १२

तीर्थंकरका धर्मोपदेश

१

भगवोंकी प्रार्थनापर जिनेश्वरका उपदेश—जीवोंके भेद-प्रभेद

जब जिनेश्वर भगवान् ने भव्यजनोंको हाथ जोड़, सिरसे प्रणाम करते हुए, भक्तिपूर्वक हृष से प्रफुल्ल-मुख तथा संसारके दुःखोंसे उद्धाम होकर वहाँ एकत्र होने देखा, तब उन्होंने अपने मुखसे निकलती हुई धीर और दिव्य ध्वनिसे नागों, मनुष्यों और देवोंको सन्तुष्ट करते हुए तत्त्वोंके स्वरूपका वर्णन किया। उन्होंने कहा कि संसारके समस्त तत्त्व मुख्यतः दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं। एक जीव और दूसरा अजीव। जीव पुनः दो प्रकारके हैं—सम्भव अर्थात् संसारमें भ्रमण करनेवाले, और दूसरे अम्भव अर्थात् मुक्त जीव जो निर्वाणको प्राप्त हो गये हैं और जिनको अब पुनर्जन्म-मरणकी बाधा नहीं रही। जो वे संसारी जीव हैं, वे अपने-अपने कर्मानुसार परिणामन कर रहे हैं। वे जीवोंकी चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं, और अन्य-अन्य शरीर धारण करके उन्हींके अनुरागमें रमण करते हैं। इन्द्रियोंकी अपेक्षा जीव तीन प्रकारके हैं—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय। इनमें एकेन्द्रियके पुनः पाँच भेद कहे गये हैं जिनका आगे वर्णन किया जायेगा। इन सभी प्रकारके जीवोंके आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनप्राण, भाषा और मनरूप परमाणुओंकी विशिष्ट रचना करनेका जो सामर्थ्य है उसे पर्याप्ति कहा जाता है। यह पर्याप्ति आहार आदि उक्त भेदोंके अनुसार छह प्रकारकी कही गयी है। जीवकी एक भवमें कमसे कम आयु-स्थिति अन्तर्मुहूर्त अर्थात् एक मुहूर्तकालके भीतर है। किन्तु नारकीय जीवों तथा देवोंकी जघन्य आयु दस सहस्र वर्षोंकी तथा उत्कृष्ट आयु तृतीया सागरोपम कालकी कही गयी है। मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु तीन

- २५ पइंदिणसु चत्तारि होति ।
 वियल्लिदिणसु पंच जि कहंति ॥
 ता जाम असण्णिउ पंच-करणु ।
 सण्णिउ पज्जत्ती-ल्लक-धरणु ॥
 पयहि जे पज्जप्पंति णेय ।
 ३० ते जंति अपज्जत्ता अणेय ॥
 पज्जप्पंतहु लग्गइ खणालु ।
 जगि सब्बह भिण्णमुहुत्तु कालु ॥
 यत्ता—ओरालिउ तिरियहुँ माणवहुँ
 सुर-णारयहुँ विउत्तियउ ।
 ३५ आहार-अणु कासु रि सुणिदि
 कम्म तेउ सयलहँ वि थिउ ॥१॥

२

- तिरिय ह्वंति दुविह तस थावर
 थावर पंच-भेयया ।
 पुहवी आउ तेउ थाऊ वि य
 बहु-विह हरिय-कायया ॥
 ५ कसिणारुण हरिय सु-पीयलिय
 पंडुर अवर वि धूसरिय ।
 एही महि-कायहुँ सउय महि
 पंच-वण मई वज्जरिय ॥

पल्योपमकालकी, एकेन्द्रिय जीवोंकी चार पल्योपम तथा विकलेन्द्रिय जीवोंकी पाँच पल्योपम कही गयी है। पूर्वोक्त आहारादि छह पर्याप्तियोंमें असंजी जीवोंके प्रथम पाँच अर्थात् आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनप्राण और भाषा ये पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। उनके मन नहीं होता। किन्तु संजी जीवोंके मन भी होता है और इस प्रकार उनके सभी छह पर्याप्तियाँ होती हैं। जीवके नये जन्म धारण करते समय जबतक उनके ये पर्याप्तियाँ पूरी नहीं होती, अर्थात् वे आहारादि ग्रहण करके पूर्ण शरीर व इन्द्रियाँ धारण करते तथा स्वासोच्छ्वास करने व शब्दोच्चारण करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं कर लेते, तबतक वे अपर्याप्त कहलाते हैं। अनेक जीव ऐसे भी होते हैं जो अपनी अपर्याप्त अवस्थामें ही जन्म-मरण करते रहते हैं। ऐसे जीव लब्ध्यपर्याप्त कहलाते हैं। पर्याप्त जीवोंकी अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करनेमें कमसे कम एक क्षण तथा अधिकसे अधिक भिन्न-मुहूर्त अर्थात् एक मुहूर्तके लगभग समय लगता है। संसारी जीवोंके शरीर पाँच प्रकारके होते हैं—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, कर्मण और तैजस। इनमें से तिर्यच और मनुष्योंके स्थूल शरीर औदारिक कहलाते हैं। देवों और नारकी जीवोंके शरीर ऐसे स्थूल नहीं होते कि वे इच्छानुसार बदल न सकें। उनके ये शरीर वैक्रियिक कहलाते हैं। आहार शरीर केवल कुछ विशेष ऋद्धिधारी मुनियोंके ही होता है जिसके द्वारा वे अन्य क्षेत्रमें जाकर विशेष जानियोंसे अपनी शंकाओंका निवारण करते हैं। कर्मण और तैजस शरीर सभी संसारी जीवोंके सदैव ही बने रहते हैं। कर्मण शरीरमें उनके कर्म-संस्कार उपस्थित रहते हैं और तैजस शरीर द्वारा उनके अन्य शरीरोंसे मेल बना रहता है ॥१॥

२

एकेन्द्रियादि जीवोंके प्रकार

तिर्यच जीव दो प्रकारके होते हैं—जल और स्थावर। इनमें से स्थावर जीवोंके पाँच भेद हैं—पृथ्वी-कायिक, जल-कायिक, अग्नि-कायिक, वायु-कायिक तथा ताना प्रकारके हरित वनस्पति-कायिक। पृथ्वी-कायिक जीव वे होते हैं, जिनका शरीर काला, लाल, हरित, पीला, श्वेत अथवा धूसरवर्ण ही होता है, और इस कारण इन पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीवोंके ये ही पाँच वर्ण कहे गये हैं। ये मृदुल, पृथ्वीकायिक जीव होते हैं।

- कंचण तउय तंब मणि रूप्य
 १० खर-पुहई पयासिया ।
 वारुणि-खीर-खार-घय-महु-सम
 जल-जाई वि भासिया ॥
 दूरहु दरिसाविय-धूम-मलिणु ।
 अरुगी तडि रति मणि जेइ जणु ॥
 १५ उकल्लि मंडलि गुंजा-णिणाउ ।
 दिस-विदिसा-भेणं भिणु वाउ ॥
 गुच्छेसु गुम्म-बल्ली-तणेसु ।
 पवंसु रुक्ख-साहा-घणेसु ॥
 सु-पसिद्धु वणासइ-काउ एसु ।
 २० उणज्जइ जह धोसइ जईसु ॥
 पज्जत्तेयर सुहुमेयरा वि ।
 दुम साहारण पत्तेय के वि ॥
 साहारणाई साहारणाई ।
 आणापाणई आहारणाई ॥
 २५ पत्तेयहुं पत्तेयई गयाई ।
 छिंदण-भिंदण-णिहणं गयाई ॥
 तुंदाहि-कुक्खि-किमि खुच्चम संख ।
 बी-इंदिय मई भासिय असंख ॥
 ती-इंदिय गोमि-पिपीलियाई ।
 ३० चउरिंदिय मच्छिय-महुयराई ॥
 यत्ता—परिवाडिण किं पि णाण-भवणु
 एयहं जुत्तिइ सावडइ ।
 रसु गंधु णयणु फासहु उवरि ।
 एक्केकउ इंदिउ चडइ ॥२॥

३

पज्जत्तीउ पंच कम-संठिय
 छह सत्तट्ट प्राणया ।
 तेसिं होति एम पभणति
 महा-मुणि विमल-णाणया ॥

सुवर्ण, ताँबा, त्रिपुष् अर्थात् शीशा, मणि और चाँदी, ये खर पृथ्वी-कायिक कहे गये हैं। जलकायिक जीवोंका शरीर वारुणि अर्थात् मद्य, क्षीर, क्षार, घृत, मधु और जल आदि रूप कहा गया है। अग्निकायिक वे होते हैं जो दूरसे ही अपना स्वरूप धूम्रसे मलिन हुआ दिखलाते हैं, अथवा जो वज्र, विद्युत्, रवि, मणि व ज्वालारूप ज्योतिर्मय होते हैं। दिशाओं और विदिशाओंमें जो उत्कलि (झंझावात), मण्डली (चक्रवात) अथवा गुंजा-निनाद स्वरूप वायु बहती है वह वायुकाय है। वनस्पतिकायिक जीव सुप्रसिद्ध ही हैं जो गुच्छोंमें, गुल्मोंमें, बल्लियोंमें और तृणोंमें, पर्वोंमें तथा वृक्षोंकी सघन शाखाओंमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा यतीश्वरने कहा है।

वृक्षरूप वनस्पतिकाय जीव पर्याप्त भी होते हैं, और अपर्याप्त भी; सूक्ष्म भी होते हैं और बादर अर्थात् स्थूल भी, और साधारण भी होते हैं एवं प्रत्येक भी। साधारण जीव वे होते हैं, जिनका श्वासोच्छ्वास और आहार साधारण अर्थात् एक साथ ही होता है। प्रत्येक वनस्पति जीव वे होते हैं जो एक-एक वृक्षमें एक-एक रूपसे रहते हैं तथा जो छेदन और भेदन क्रियाओंसे मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं।

द्वीन्द्रियजीव तुन्दाधि अर्थात् पेटके कीटाणु कुक्षिकृमि व क्षुब्ध (पानी में डूबे हुए) शंख आदि असंख्य भेदरूप कहे गये हैं। गोमी और पिपीलिका अर्थात् चींटियाँ आदि त्रीन्द्रिय एवं माखी और भ्रमर आदि चोइन्द्रिय जीव हैं। इन जीवोंमें क्रमशः एकेन्द्रियसे लेकर चार इन्द्रियों तककी जानेन्द्रियाँ होती हैं, अर्थात् एकेन्द्रिय जीवके स्पर्शमात्रकी एक ही इन्द्रिय होती है। द्वीन्द्रियोंमें स्पर्श और रस ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। त्रीन्द्रियोंके स्पर्श, रस और गन्ध ये तीन इन्द्रियाँ तथा चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्पर्श, रस, गन्ध और नेत्र ये चारों इन्द्रियाँ होती हैं ॥२॥

३

जीवोंके संज्ञी-असंज्ञी भेद व दश प्राण

उक्त प्रकारके एकसे लेकर चार इन्द्रियों तकके जीवोंमें क्रमशः तीन, चार और पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। अर्थात् एकेन्द्रियोंमें आहार, शरीर तथा स्पर्शेन्द्रिय; द्वीन्द्रियोंमें आहार, शरीर व प्रथम दो इन्द्रियाँ और आनप्राण ये चार पर्याप्तियाँ; त्रीन्द्रियोंमें आहार, शरीर, प्रथम तीन इन्द्रियाँ और आनप्राण ये चार पर्याप्तियाँ; तथा चतुरिन्द्रिय जीवोंमें आहार, शरीर, चार

५

पंचिन्द्रिय सणि असणि दोणि ।
मण-वज्जिय जे ते ध्रुवु असणि ।
सिक्खालावाहँ ण लेति पाव ।
अण्णाण-गूढ-दह-मूढ-भाव ॥

१०

असु णव जि समत्तिउ पंच ताहँ ।
वज्जरइ जिणिंदु असणिवाहँ ॥
छहिं पज्जन्निहि पज्जत्तएहिं ।
संकासण-लोयण सोत्तएहिं ॥
मण-वयण-काय-रस-धाणएहिं ।

१५

आणाप्राणाउ अ प्राणएहिं ॥
दहहिं मि जियंति सणिणय तिरिक्ख ।
अक्खमि णाणा-विह दु-णिणरिक्ख ॥
जलयर झसाइ पंच-प्पयार ।
कक्खव मयरोहर सुंसुयार ॥

२०

गहयर संसुग्ग फुड-वियड-पक्ख ।
अण्णेक चम्म-धण-लोस-पक्ख ॥
थलयर चडपय चउविह अमेय ।
एक-खुर दु-खुर करि-मुणह-पाय ॥
उरसप्प महोरय अजगरोइ ।

२५

किं ताहँ गइंदु वि कवलु होइ ॥
भुय-सप्प वि चक्खाणिय सभेय ।
सरहुंदुर-गोवा-णामधेय ॥

वत्ता—जलयर जलसु खग तरु-गिरिसु
थलयर गाम-पुरेसु वणे ।

दीवोयहि-मंडल-मज्झि तहिं

३०

पढसु दीवु भासंति जणे ॥३॥

संसारिय जीव चउ-विह चउ-गह-भिण्ण जिह ।
इन्द्रिय-भेएण पंच-प्पयार पउत्त तिह ॥

इन्द्रियाँ, आनप्राण और भाषा ये पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। इनके दश प्राणोंमेंसे क्रमशः छह, सात और आठ प्राण होते हैं। अर्थात् एकेन्द्रिय जीवोंके एक स्पर्श इन्द्रिय, एक कायबल, आनप्राण और आयु सहित रसना और वाक् मिलकर द्वीन्द्रियोंके छह प्राण हुए। इनमें घ्राण मिलनेसे त्रीन्द्रियके सात, तथा उनमें चक्षु मिलनेसे चतुरिन्द्रियके आठ प्राण हुए। ऐसा निर्मल-ज्ञानी महामुनि कहते हैं।

पंचेन्द्रिय जीवोंके दो भेद हैं, संज्ञी और असंज्ञी। जिनके मन नहीं होता वे निश्चय से असंज्ञी कहलाते हैं। वे अपने पापके फलस्वरूप शिक्षा व आलाप आदि ग्रहण नहीं कर सकते। वे निरन्तर अज्ञानमें गहरे डूबे रहते हैं। अज्ञानी जीवोंके जिनेन्द्र भगवान्ने दश प्राणोंमेंसे मनको छोड़कर शेष नौ प्राण तथा छह पर्याप्तियोंमेंसे मनपर्याप्तिको छोड़कर शेष पाँच पर्याप्तियाँ कही हैं। संज्ञी तिर्यच जीव छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होते हैं। वे स्पर्श, रस, घ्राण, नेत्र और ध्वज ये पाँचों इन्द्रियोंको धारण करते हैं तथा पाँच इन्द्रियों, मन, वचन और काय इन तीन बलों तथा आनप्राण और आयु इन दो सहित दशों प्राणोंसे युक्त होते हुए जीवित रहते हैं। अब मैं इनके नाना प्रकारोंका वर्णन करता हूँ जो सामान्यतया देखनेमें नहीं आते। जलचर इस आदि पाँच प्रकारके होते हैं जिनमें कच्छप, मकर और मकरापहर्ता शृशुमार भी हैं। तभचर अनेक प्रकारके होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जिनके पंखे बड़े-बड़े और स्पष्टतया विलग होते हैं, तथा कुछके पंखे चर्मसे लगे हुए, सघन रोमों सहित होते हैं। थलचर चौपाए चार प्रकारके होते हैं। एक-खुर, दो-खुर, हस्तिपद और खानपद। इनके असंख्य भेद हैं। उरुसर्पी, महोरग, अजगर आदि इतने विशाल भी होते हैं कि वे हाथीको भी निगल सकते हैं। भुजसर्पी भी सरड (छिपकली), उन्दुर (मूषक), गोधा (गोह) आदि नामधारी अनेक भेद कहे गये हैं। जलचर जीव जलमें रहते हैं, खग वृक्षों और पर्वतोंपर तथा थलचर ग्राम, पुर और वनमें रहते हैं। द्वीपों और समुद्रोंके वलयाकार मण्डल असंख्य हैं जिनका मध्यवर्ती प्रथमद्वीप जम्बूद्वीप कहा गया है ॥३॥

४

गति, इन्द्रिय आदि चतुर्दश जीव-मार्गणाएँ व गुणस्थान

(१) संसारी जीव मनुष्य, तिर्यच, तारक और देव, इन चार गतियोंके अनुसार चार प्रकारके होते हैं। (२) स्पर्शादि पाँच इन्द्रियोंके भेदसे वे पाँच प्रकारके कहे गये हैं। (३) कायकी अपेक्षासे जीवोंके छह

कापं छविह चवल-थिरेण वि ।
तिविह तिविह-जोपं वेण्ण वि ॥

५

जलणिहि-विह वि कसारं जाया ।
अट्ट-भेय णाणं विण्णाया ॥

संजम-दंसणेण ति-चउ-विह ।
लेसा-परिमाणेण वि छ-विह ॥

१०

भवत्तेण विविह सम्मत्ते ।
सणि असणी दो सणित्ते ॥

आहारं आहारिय जे अं ।
चउसु वि गइसु परिट्ठिय ते ते ॥

केवलि समुहय विग्गाह-गइ गय ।
अरुह अजोइ सिद्ध परमण्य ॥

१५

ते ण लेति आहारु बियारिय ।
सेस जीव जाणहि आहारिय ॥

सग्गण-ठाणहं चोदह-भेयहं ।
णिमुणहि गुणठाणाहं मि पयहं ॥

२०

मिच्छादिट्ठि पहिल्लउ गीयउ ।
सासणु बीयउ सीसु वि तीयउ ॥

अविरय-सम्माइट्ठि चउत्थउ ।
पंचसु विरयाविरउ पसत्थउ ॥

भेद हैं—बाह्य और सूक्ष्म—एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय आदि चार त्रस । (४) योगकी अपेक्षा वे तीन प्रकारके हैं—काययोगी, वचनयोगी और मनयोगी । (५) वेदकी अपेक्षा भी उनके तीन भेद हैं, पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक । (६) कषायकी अपेक्षा वे क्रोधी, मानी, मायावी, और मोही ऐसे चार प्रकारके हैं । (७) ज्ञानकी अपेक्षा उनके आठ भेद हैं—मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी ये पाँच तथा कुर्मति, कुश्रुत, और कुअवधि ये तीन कुज्ञानी । (८) संयमकी दृष्टिसे जीवोंके तीन भेद हैं—संयमी, संयमासंयमी और असंयमी; अथवा सामायिक छेदोपस्थापना, सूक्ष्म-साम्पराय और यथाख्यात इन चार संयमोंकी दृष्टिसे वे चार प्रकारके हैं । (९) दर्शनकी दृष्टिसे क्षायिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक ये तीन भेद हैं; अथवा चक्षु, अचक्षु, अवधि, और केवल ये चार दर्शन-रूप हैं । (१०) लेश्या भावके अनुसार उनके कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल, ये छह भेद हैं । (११) भव्यत्वकी दृष्टिसे जीवोंके दो भेद हैं, नग्न और अण्डव्य । (१२) सम्यक्त्वकी अपेक्षा भी उनके दो प्रकार हैं, उपशम-सम्यक्त्व और क्षायिक-सम्यक्त्व । (१३) संज्ञाकी अपेक्षा वे दो प्रकारके हैं, संज्ञी, और असंज्ञी । (१४) आहारकी अपेक्षा जीव दो प्रकारके होते हैं । संसारकी चारों गतियोंमें जो जीव हैं, वे सब आहारक हैं, किन्तु जो जीव केवल-समुद्रघात कर रहे हैं, विग्रह गतिमें हैं तथा जो अरहन्त, अयोगी व सिद्ध परमात्मा हो चुके हैं, वे आहार नहीं लेते अतएव वे अनाहारक हैं । शेष सभी जीवोंको आहारक जानना चाहिए । ये चौदह मार्गण-स्थान हैं, क्योंकि इनके द्वारा नाना दृष्टियोंसे जीवोंके भेदोंको खोजा—समझा जाता है ।

अब चौदह गुणस्थानों (आध्यात्मिक उन्नतिकी भूमिकाओं) को सुनिए । पहला गुणस्थान मिथ्यादृष्टियोंका है, जिसमें सम्यग्ज्ञानका सर्वथा अभाव होता है । सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर वहाँसे मिथ्यात्वकी ओर गिरते हुए जीवोंका स्थान सासादन कहलाता है और वह दूसरा गुणस्थान है । तीसरा गुणस्थान सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके मिश्रणरूप होनेके कारण मिश्र गुणस्थान कहलाता है । चतुर्थ गुणस्थान ऐसे जीवोंका कहा गया है जिन्हें सम्यग्दृष्टि तो प्राप्त हो चुकी है, किन्तु विषयोंसे विरक्तिरूप संयम उत्पन्न नहीं हुआ है; अतएव यह गुणस्थान अविरत सम्यग्दृष्टि कहलाता है । पाँचवाँ गुणस्थान उन जीवोंका है, जो सम्यग्दृष्टि भी हैं और पूर्णरूपसे संयमी न होते हुए भी अणुव्रती अर्थात् श्रावक हैं; इसीलिए यह गुणस्थान

२५

छट्टउ पुणु पमत्त-संजम-धरु ।
सत्तमु अ-प्पमत्तु गुण-सुंदरु ॥

अट्टमु होइ अउवु अउवउ ।
अणियत्तिल्लउ गवमु अ-नउवउ ।

दहमउ सुहुम-राउ जाणिजइ ।
पयारहमुवर्सतु भणिजइ ॥

३०

बारहमउ पर-खीणकसायउ ।
तेरहमउ स-जोइ-जिणु जायउ ॥

उडिअय-तिविह-सरीर-भरंतरु ।
उवरिल्लउ अजोइ परु अकखरु ॥

यत्ता—णारय चत्तारि चत्तारि जि पुणु सुर-पवर ।
तिरियंच वि पंच णीसेसम्मि चडंति णर ॥४॥

५

कम्म-विहम्ममाण स-सरीरा ।
सासय-करणज्जय विवरेरा ॥
दंसण-गाण-सहाव-पहट्टा ।
होति जीव उक्किट्ट-णिकिट्टा ॥

विरताविरत नामसे भी जाना जाता है। छठा गुणस्थान उन संयमी मुनियोंका है, जिनमें महाव्रतोंका पालन होते हुए भी कुछ प्रमाद शेष रहता है; अतएव यह प्रमत्त-संयम गुणस्थान कहलाता है। सातवाँ गुणस्थान, सुन्दर गुणशाली अप्रमत्त-संयमी मुनियोंका है। अष्टम गुणस्थानमें मुनियोंके उत्तरोत्तर, अपूर्व भावशुद्धि होती जाती है; अतएव यह गुणस्थान अपूर्वकरण कहलाता है। नवम गुणस्थान अनिवृत्तिकरण है जहाँ मान कषायका अभाव होनेसे मुक्तिके नीचे गिरनेकी सम्भावना नहीं रहती। दशवाँ गुणस्थान सूक्ष्म-साम्पराय या सूक्ष्म-राग कहलाता है, क्योंकि यहाँ पहुँचनेपर मुनियोंकी कषायें अत्यन्त मन्द और सूक्ष्म हो जाती हैं। ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्त-कषाय कहा गया है, क्योंकि यहाँ साधकके सभी कषायोंका उपशमन हो जाता है। बारहवाँ गुणस्थान क्षीण-कषाय है क्योंकि यहाँ कषायोंका उपशमन मात्र नहीं, किन्तु आत्मप्रदेशोंमें उनका पूर्णतया क्षय हो जाता है। तेरहवाँ गुणस्थान सयोगि-जिन अथवा सयोगि-केवली कहलाता है, क्योंकि इस स्थानपर आत्माको केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है, किन्तु शरीरका विनाश नहीं होता और इसलिए ये सयोगिकेवली धर्मका उपदेश भी करते और तीर्थकर भी होते हैं। अन्तिम चौदहवाँ गुणस्थान उन अयोगि-केवली जीवोंका होता है जिन्होंने मन, वचन और काय इन तीन योगोंका परित्याग कर दिया है तथा औदारिक, तैजस और कर्मण इन तीनों शरीरोंके भारसे मुक्त होकर अक्षय पद प्राप्त कर लिया है, अर्थात् परमात्मा हो गये हैं।

जीवोंके आध्यात्मिक उत्कर्ष तथा क्रम-विकासकी दृष्टिसे जो ये चौदह गुणस्थान कहे गये हैं इनमेंसे नारकीय जीवोंके प्रथम चार ही गुणस्थान हो सकते हैं, और बड़े-बड़े देव भी वे ही चार गुणस्थान प्राप्त कर सकते हैं। तिर्यन्त्र जीवोंके पाँच गुणस्थान भी हो सकते हैं, किन्तु प्रथमसे लेकर चौदहवें तक समस्त गुणस्थानोंमें तो केवल मनुष्य ही चढ़ सकते हैं ॥४॥

५

कर्मबन्ध व कर्मभेद-प्रभेद

संसारो जीव शरीरधारी होते हैं, और वे निरन्तर अपने कर्मोंसे पीड़ित रहते हैं। इनसे विपरीत जो मुक्तिप्राप्त जीव हैं, वे दाश्वत भावसे युक्त हैं और अपने दर्शन-ज्ञानरूपी स्वाभाविक सुख में तल्लीन रहते हैं। इस

५

ताहँ चेह जा होइ समासम ।
 सा तदलिय-गहण-भावकखम ॥
 जेम तेल्ह सिहि-सिह-परिणामहु ।
 तेम कम्म-पांगलु वि णिसामहु ॥
 जीवें लइयउ जाइ जियत्तहु ।

१०

तिव-कमाय-रसेहिं पमत्तहु ॥
 जिह सिहि-भावहु वचइ इंधणु ।
 तिह कम्मेण जि कम्महु बंधणु ॥
 असुहैं असुहु सुहैं सुहु संधइ ।
 सिद्ध-भट्टारउ किं पि ण बंधइ ॥

१५

अभव जीव जिणणाहें इच्छिय ।
 एक्कु ण ते वि अणंत गियच्छिय ॥
 मइ-सु-ओहि-भणपज्जव केवल ।
 पाणावरण-विमुक्क सु-णिक्कल ॥

२०

णिदाणिदा पयलापयला ।
 थीणगिद्धि णिदा पुणु पयला ॥
 चक्खु-अचक्खु-दंसणावरणउ ।
 अवहीं केवल-दंसणवरणउ ॥
 तेहिं विणासिउ णव-संखायउ ।
 वेयणीय-दुगु सायासायउ ॥

२५

दंसण-मोहणीउ सम्मत्तु वि ।
 मिच्छत्तु वि सम्मा-मिच्छत्तु वि ॥
 दुविहु चरित्त-मोहु विक्खायउ ।
 णो-कसाउ णामेण कसायउ ॥

३०

तं कसाय-जायउ सोलह-विहु ।
 इयरु भणेसमि पच्छइ णव-विहु ॥
 पढम-कसाय-चउक्कु सु-भीसणु ।
 सत्तम-णरय-गामि दिहि-दूसणु ॥

वत्ता—अइ-कोहु समाणु माया लोहु वि दुत्थयरु ।

उवसमहुँ ण जाइ जइ वि पबोहइ तिथयरु ॥५॥

प्रकार जीव निष्कृष्ट और उत्कृष्ट होते हैं। जीवोंकी जैसी चेष्टा अर्थात् मन, वचन और काय की क्रिया सम व असम अर्थात् शुभ और अशुभ होती है, उसी प्रकार उनमें शुभ और अशुभ कर्मोंके ग्रहण करनेके नाना भेद होते हैं। जिस प्रकार दीपकमें जलता हुआ तेल अग्निकी शिखारूप परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रकार कर्मरूपी पुद्गल परमाणु भी जीवों द्वारा ग्रहण किये जाते और तीव्र कषायरूपी रसोंके बलसे उस जीवमें प्रमत्तभाव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार कर्मके द्वारा ही कर्मका बन्धन उसी प्रकार हुआ करता है, जैसे अग्निमें पड़ा हुआ ईंधन अग्नि-भावको प्राप्त हो जाता है। अशुभभावसे अशुभकर्मका तथा शुभभावसे शुभकर्मका सन्धान होता है। परन्तु सिद्ध भगवान् किसी प्रकारका भी कर्मबन्ध नहीं करते। जिनेन्द्र मतके अनुसार अभव्य जीव एक नहीं हैं, वे अनन्त हैं। कर्म भी अनन्त रूप होते हैं, किन्तु विशेष रूपसे उन्हें आठ प्रकारका बतलाया गया है। पहला ज्ञानावरण कर्म है, जिसके पाँच भेद हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ये अपने-अपने नामानुसार पाँच प्रकारके ज्ञानोंका आवरण करते हैं, अर्थात् उन्हें ढक देते हैं। इन ज्ञानावरणोंसे सर्वथा विमुक्त तो अशरीरी सिद्ध भगवान् ही होते हैं। दर्शनावरणके नव भेद हैं—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला तथा चक्षु-दर्शनावरण, अन्त्रक्षु-दर्शनावरण, अवधि-दर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। इनसे स्पष्टतया उक्त निद्रा आदि शारीरिक दोष उत्पन्न होते हैं तथा चक्षु आदि दर्शनोंका आवरण होता है। तीसरा कर्म वेदनीय दो प्रकारका है—सातावेदनीय और असातावेदनीय। ये वेदनीय कर्मके दो प्रकार क्रमशः सुख व दुःखका अनुभवन कराते हैं। चौथा मोहनीय कर्म है और उसके मुख्यतया दो भेद हैं—दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय। दर्शन-मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यक्समिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये तीन उपभेद हैं। चारित्र-मोहके प्रथमतः कषाय और नोकषाय ये दो भेद हैं। कषायके पहले चार मुख्य भेद और फिर उन चारोंके क्रमशः चार-चार भेद; इस प्रकार सोलह भेद हैं। और नोकषायके नौ भेद हैं जिन्हें आगे बतलाया जायेगा। चार मुख्य कषाय बड़े भोषण होते हैं। वे जीवके भावोंमें दूषण उत्पन्न करके उसे सप्तम तरक तक ले जाते हैं। ये कषाय हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। अपने कठोर रूपमें ये इतने दुष्कर होते हैं कि उनके रहते जीव उपशम भावको प्राप्त नहीं होता, भले ही

६

अवरु अ-पच्चक्खाणु गुरुक्कउ ।
 पच्चक्खाणु चच्चक्कु विमुक्कउ ॥
 संजलणु वि जलंतु उल्लाविउ
 थी-पुं-संद राउ उल्लाविउ ॥

५

भय-रइ-अरइ-दुगुंछउ जित्तउ ।
 हासु वि सहूँ सोएण णिहित्तउ ॥
 सुर णर णरय तिरिय चउ आउ वि ।
 बायालीस-विहेयउ णाउ वि ॥

१०

गइ-णामउ वि जाइ-णामु वि भणु ।
 तणु-णामउ पुणु तणुहि णिवंधणु ॥
 तणु-संघाउ तणुहि संठाणउ ।
 तणु-अंगोळंगु णि णामाणउ ॥
 तणु-संघडणु कण-गंधिल्लउ ।
 रस-णामउ अवरु वि फासिल्लउ ॥

१५

आणुपुवि अगुरुलहु लक्खिउ ।
 उवघाउ वि परघाउ वि अक्खिउ ॥
 ऊसासु वि आदावुज्जोयउ ।
 अण्णु विहायगइ वि तस-कायउ ॥

२०

थावरु थूलु-सुहुसु पज्जत्तउ ।
 अण्णु वि मण्णिउ अ-प्पज्जत्तउ ॥
 पत्तेयंग-णाउ साहारणु ।
 थिरु अथिरु वि सुह-णाउ स-कारणु ॥
 असुहु सुभगु दुब्भगु सु-सरिल्लउ ।
 दुस्सरु आदेज्जउ जगि भल्लउ ॥

२५

णाउ अणादेज्जउ जसकित्ति वि ।
 तिरथयरस्तु णिमिणु मलकित्ति वि ॥

स्वयं तीर्थंकर ही उसका सम्बोधन करें। यह कषायोंका अनन्तानुबन्धी स्वरूप है ॥५॥

६

कषायोंका स्वरूप तथा मोहनीय कर्मकी व अन्य कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियाँ

कषायोंका दूसरा प्रकार अप्रत्याख्यान कहलाता है, जिसके होते हुए सम्यक्दर्शनकी प्राप्तिमें तो बाधा नहीं पड़ती, किन्तु व्रतोंके ग्रहण करनेकी वृत्ति उत्पन्न नहीं होती। कषायोंका तीसरा प्रकार प्रत्याख्यान है, जिसके सद्भावमें सम्यक्दर्शन तथा अणुव्रतोंका ग्रहण तो हो सकता है, किन्तु महाव्रतोंका पालन नहीं हो सकता। चौथा कषायभेद है संज्वलन, जिसके होते हुए जीव महाव्रती मुनि तो हो जाता है, तथापि वह सूक्ष्म रूपमें कषायोंको लिये हुए रहता है, जिसका स्वरूप दसवें सूक्ष्म-साम्पराय नामक गुणस्थानमें किया गया है। चारों कषायोंके तीव्रतासे उतरते हुए उनके मन्दतम रूपको दिखानेवाले ये चार प्रकार प्रत्येक कषायके होते हैं, और इस प्रकार उक्त चार कषायोंके सोलह भेद हो जाते हैं। ये सब कषाय सिद्ध भगवान्ने त्याग दिये हैं। अब आगे उन नौ लोकषायोंको कहते हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ये हैं—स्त्रीवेद, पुंवेद तथा नपुंसकवेद रूप तीनों राग, भय, रति, अरति, जुगुप्सा, हास्य और शोक। इन्हें भी जिनभगवान्ने उड़ा दिया है, जीत लिया है व अपने अन्तरंगसे बाहर फेंक दिया है। इस प्रकार मोहनीय कर्मके समग्ररूपसे ये $(4 \times 4 + 9 = 25)$ पच्चीस भेद हुए।

जीव कभी देवकी आयु बाँधता है, कभी तरक की, कभी मनुष्यकी और कभी तिर्यंच योनि की; इस प्रकार आयुर्कर्मके चार भेद हैं।

नामकर्मके ब्यालीस भेद हैं, जिनके नाम हैं १. गति, २. जाति, ३. शरीर, ४. निबन्धन, ५. शरीर-संघात, ६. शरीर-संस्थान, ७. शरीर-अंगोपांग, ८. शरीर-संहनन, ९. वर्ण, १०. गन्ध, ११. रस, १२. स्पर्श, १३. आनुपूर्वी, १४. अगुल्लघु, १५. उपघात, १६. परघात, १७. उच्छ्वास, १८. आताप, १९. उद्योत, २०. विहायोगति, २१. त्रसकाय, २२. स्थावरकाय, २३. बादरकाय, २४. सूक्ष्मकाय, २५. पर्याप्ति, २६. अपर्याप्ति, २७. प्रत्येक-शरीर, २८. साधारण-शरीर, २९. स्थिर, ३०. अस्थिर, ३१. शुभ, ३२. अशुभ, ३३. सुभग, ३४. दुर्भग, ३५. सुस्वर, ३६. दुस्वर,

घत्ता—चउ-गह-जम्मेण गह-णामउ अहह-विहु ।

इंदियई गणेवि जाह-णामु भणु पंच-विहु ॥६॥

७

हणिवि पंच णामई पंच-विहई ।

एक्कु ति-भेयउ दो दो दु-विहई ॥

दो छह पुणु दो चउ अह-विहई ।

उच्चारुयई जाई एक-विहई ॥

५

समलामलई दोणिण जगि गोत्तई ।

ताई मि जेहिं दूरि परिचत्तई ॥

दाण-भोय-उवभोय-णिवारउ ।

वीरिय-लाहु हेउ-संघारउ ॥

अंतराउ पंचविहु धुणेप्पिणु ।

अडयालीसउ सउ विहुणेप्पिणु ॥

१०

३७. आदेय, ३८. अनादेय, ३९. यशस्कीर्ति, ४०. अयशस्कीर्ति, ४१. निर्वाण, और ४२. तीर्थंकरत्व । ये ब्यालीस प्रकारके नामकर्म हैं, जिनके द्वारा शरीरके, उनके नामानुसार, विविध प्रकारके गुण-धर्म उत्पन्न होते हैं । इनमेंसे अनेकके कुछ उपभेद भी हैं, जैसे—गतिनाम कर्म, नरक, तिर्यक्, मनुष्य और देव, इन गतियोंके अनुसार चार प्रकारका है । एकेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियों तकके भेदानुसार जातिनाम कर्मके पाँच भेद हैं ॥६॥

७

नाम, आयु, गोत्र व अन्तराय कर्मोंके भेद

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणके भेदसे शरीर नामकर्म पाँच प्रकारका है । इन पाँचों शरीरोंके अलग-अलग बन्धन होते हैं, जो शरीर-बन्धन नामकर्मसे उत्पन्न होते हैं । उन्हींके अनुसार उन शरीरोंके पाँच संघात होते हैं । शरीर-संस्थानके छह प्रकार हैं—सम-चतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्ज, वामन और टुण्ड । शरीरांगोपांगके औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन भेद हैं । शरीर-संहननके छह भेद हैं—वज्र-वृषभ-नाराच, नाराच-नाराच, नाराच, अर्ध-नाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिका । वर्ण पाँच हैं, कृष्ण, नील, रक्त, हरित और शुक्ल । सुगन्ध और दुर्गन्धके भेदसे गन्ध नामकर्म दो प्रकारका है । रस पाँच हैं—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर । स्पर्शनामकर्मके आठ भेद हैं—कठोर, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रुक्ष, शीत और उष्ण । नरक आदि चारों गतियोंके अनुसार आनुपूर्वी नामकर्म चार प्रकारका है । विहायोगतिके दो भेद हैं—प्रशस्त और अप्रशस्त । इन सब उपभेदोंको मिलाकर नामकर्मके तिरानवे भेद हो जाते हैं, जिनके अनुसार समस्त संसारी जीवोंके शरीरमें दिखाई देनेवाले नाना भेदोंका निर्माण होता है ।

गोत्रकर्म दो प्रकारका होता है । समल अर्थात् पाप-प्रवृत्ति कराने-वाला और अमल अर्थात् शुद्ध प्रवृत्ति करानेवाला । इन दोनोंको भी सिद्धात्माएँ दूर कर देती हैं । अन्तराय कर्मके पाँच भेद हैं—दानान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय और लाभान्तराय, जो उन-उन गुणोंकी प्राप्तिमें बाधक होते हैं । उक्त आठों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंको मिलानेसे वे सब एक सौ अड़तालीस हो जाती हैं । इन सबका

- १५ पयडिहिं माणवंगु मेल्लेप्पिणु ।
 सुद्धसहाव सुद्धंभु लहेप्पिणु ॥
 जे गय जीव परम-णिठ्ठाणहु ।
 दुक्ख-विमुक्कहु सासय-ठाणहु ॥
 चरम-सरीर-माण णिक्खूणा ।
 ववगय-रोय-सोय अविलीणा ॥
 णिम्मल णिरुवम णिरहंकारा ।
 जीव-दव-घण णाण-सरीरा ॥
 उद्ध-गमण-सहावें गंप्पिणु ।
 २० उद्ध-लोउ सयलु वि लंघेप्पिणु ॥
 अट्ठम-पुहई-यट्ठि णिविद्धा ।
 अभव जीव जिणदेवें दिट्ठा ॥

घत्ता—ते साइ अणाइ दुविह् अणंत जि विविह्-दुह् ।
 ते पुणु ण मरंति णउ पडंति संसारमुह् ॥७॥

८

- | | | |
|---|--|---|
| ५ | णउ बाल णउ बुद्ध
णीसाव णित्ताय
णाणंग णिम्मोह
णिक्कोह् णिल्लोह्
णिठ्वेय णिज्जोय
णिद्धम्म णिक्कम्म
णीराम णिक्काम
णिठ्वेस णिल्लेस
१० णीरस महाभाय
अठवत्त चिम्मोत्त
ण छुहाइ धेप्पंति
ण रुयाइ झिज्जंति
णाहारु भुज्जंति
ण मलेण लिप्पंति | णउ मुख सुवियड् ।
णिग्गाव णिप्पाव ।
णिण्णेह् णिहेह् ।
णिम्माण णिम्मोह् ।
णीराय णिठ्ठोय ।
णिच्छम्म णिज्जम्म ।
णिद्धाह् णिद्धाम ।
णिग्गांध णिप्फास ।
णीसइ णीरुव ।
णिद्धित णिठ्वित्त ।
ण तिसाइ छिप्पंति ।
ण रईइ सिज्जंति ।
ओसहु ण जुज्जंति ।
ण जलेण धुप्पंति । |
|---|--|---|

विनाश करके जीव शुद्ध होता और निर्वाण प्राप्त करता है। इन कर्म-प्रकृतियों सहित अपने मानवशरीरको छोड़ तथा आत्माके स्वयं शुद्ध स्वभावको प्राप्त कर जो जीव दुःख-रहित, शाश्वत-स्थान-स्वरूप परम निर्वाणको प्राप्त करते हैं वे अपने अन्तिम मानव शरीरके प्रमाणसे कुछ छोड़ होते हैं, उनके रोग-शोक नहीं होता तथा वे कभी मृत्युको प्राप्त नहीं होते। वे सदैव निर्मल, निरूपम, निरहंकार, जीव-द्रव्यसे सघन और ज्ञान-शरीरी होते हैं, वे मध्यलोकसे स्वभावतः ऊर्ध्वगमन करते हैं और समस्त ऊर्ध्वलोकका उत्लंघन कर सर्वोपरि अष्टम पृथ्वीके पृष्ठपर निविष्ट हो जाते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता ऐसा इन मुक्त जीवोंका स्वरूप जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है। ये मुक्त जीव अपनी इस मुक्तावस्था की दृष्टिसे सादि और अनन्त हैं तथा उनके जीवद्रव्यकी दृष्टिसे अनादि और अनन्त हैं, क्योंकि वे अब पुनः मरण नहीं करते और न विविध दुःखोंसे पूर्ण संसारके मुखमें पड़ते ॥७॥

८

सिद्ध जीवोंका स्वरूप

वे सिद्ध जीव न बालक होते न वृद्ध, न मूर्ख और न चतुर। वे न किसीको शाप देते न ताप, न गर्व रखते और न पाप करते। वे ज्ञान-शरीरी होते हैं, किन्तु उनके मेधा अर्थात् मस्तिष्क व इन्द्रिय-जन्य बोध नहीं होता। न उनके स्नेह है और न देह ही है। वे क्रोधरहित, लोभरहित, मानरहित और मोहरहित होते हैं। उनके न स्त्री, पुरुष आदि लिंग-भेद है और न मन, वचन, कायरूप योगोंका भेद है। न उनके राग हैं, न भोग, न रमण है, न काम। वे इन्द्रिय-मुखसे व जन्म-मरणसे रहित हैं। वे निर्वाधि हैं, और निर्धाम हैं। न उनके द्वेष है, न लेश्या है। वे महानुभाव गन्ध, स्पर्श, रस, शब्द और रूप इन इन्द्रिय-विषयोंसे रहित हैं। वे अव्यक्त हैं, चिन्मात्र हैं, निश्चिन्त और निवृत्त हैं। वे न तो क्षुधाके वशीभूत होते, और न तृषासे आतुर होते; न रोगोंसे क्षीण होते, और न रतिसे पीड़ित होते। न वे आहार—भोजन करते और न औषधिका उपयोग करते। न वे मलसे लिप्त होते और न

- १५ णिहं ण गच्छंति अणयण वि पेच्छंति ।
 अमणा वि जाणंति सयरायरं हत्ति ।
 सिद्धाण जं सोक्खु तं कहइ चम्मक्खु ।
 किं माणवो को वि सुरु खयरु देवो वि ।

घत्ता—पंचिदिय-सुक्खु परमणइ हूयउ विमले ।

- २० जं सिद्धहँ सोक्खु तं ण वि कासु वि भुवण-यले ॥८॥

९

- एहा दुविह जीव महँ अक्खिय ।
 कहमि अजीव वि जेम णिरिक्खिय ॥
 धम्म अघम्म दो वि रुवुज्झिय ।
 आयासँ काले सहँ बुज्झिय ॥
 ५ गह-ठाणोगह-वत्तण-लक्खण ।
 के वि मुणंति सु-णाण वियक्खण ॥
 संतु अणाइ समउ वट्ठंतउ ।
 तीयउ कालु अगामि अणंतउ ॥
 तासु ठाणु भणइ णर-लोयउ ।
 १० धम्माधम्महँ सव-तिलोयउ ॥
 विहिं मि लोय-णाह-माण वियप्पउ ।
 आयासु वि अणंतु सुसिरप्पउ ॥
 तं जि अलोउ जोइ-पणत्तउ ।
 पोगालु होइ पंच-गुण-वंतउ ॥
 १५ सहँ गंधे रुवे फासँ ।
 जुत्तउ भिण्ण-वण्ण-विण्णासँ ॥
 खंधु देसु अद्ध-पएसु वि ।
 परमाणुउ अविहाइ असेसु वि ॥

घत्ता—तं सुहसु वि थूलु थूलु-सुहसु पुणु थूलु भणु ।

- २० थूलाण वि थूलु चउ-पयारु महु मुणइ मणु ॥९॥

उन्हें जलसे धोनेकी आवश्यकता होती। वे नींद नहीं लेते। नेत्र न होते हुए भी वे सब कुछ देखते हैं। उनके मन नहीं होता तो भी वे निरन्तर सचराचर जगत्को जानते हैं। सिद्धोंका जो सुख है, उसे यह चर्मचक्षु, कोई मानव, सुरदेव, या विद्याधर कैसे वर्णन कर सकता है? पंचेन्द्रियोंसे मुक्त जो सुख शुद्ध परमात्म पदको प्राप्त सिद्धोंके होता है, वह इस भुवन-तलपर किसी अन्य जीवको नहीं मिलता ॥८॥

९

अजीव तत्त्वोंका स्वरूप

इस प्रकार संसारी और सिद्ध इन दोनों प्रकारके जीवोंका व्याख्यान किया गया। अब मैं उस अजीव तत्त्वके विषयमें जो कुछ जाना गया है, उसका वर्णन करूँगा। धर्म और अधर्म ये दोनों तत्त्व तथा आकाश और काल, इस प्रकार ये चारों अजीव तत्त्व रूपरहित अर्णत् अमूर्तिक जाने गये हैं। इनका स्वरूप विशेष ज्ञानियों और विद्वानोंने इस प्रकार जाना है। धर्मद्रव्यका स्वभाव अन्य जीवादि द्रव्योंके गमन कार्यमें सहायक होता है, और अधर्म द्रव्यका स्वभाव है गमन करते हुए द्रव्योंको ठहरनेमें सहायक होना। आकाशका कार्य शेष सभी द्रव्योंको अवकाश प्रदान करना है, और कालका लक्षण वर्तना अर्थात् भूत, भविष्यत् व वर्तमान समयोंका विभाजन करना है। इस प्रकार काल अनादि और अनन्त समय रूप है। उसका जो युग, वर्ष, मास आदि रूप व्यावहारिक स्वरूप है, उसका प्रचलन तरलोक मात्रमें है, जबकि धर्म और अधर्मकी व्याप्ति समस्त त्रिलोक मात्रमें है। आकाश अनन्त है और शब्द-गुणात्मक है। उसका दो भागोंमें विभाजन पाया जाता है—एक लोकाकाश, दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाशमें सभी द्रव्योंका वास तथा गमनागमन है, जो सभीके अनुभवमें आता है। किन्तु उसके परे जो अन्य द्रव्योंसे रहित अलोकाकाश है, उसका वर्णन केवल योगियों द्वारा किया गया है।

पुद्गल द्रव्य पांच गुणोंसे युक्त है—शब्द, गन्ध, रूप, स्पर्श और रस। रूपकी अपेक्षा पुद्गल द्रव्य कृष्णादि नाना वर्णोंसे युक्त है। प्रमाणकी अपेक्षा वह स्कन्ध, देश, प्रदेश, अर्धप्रदेश, अर्धार्ध प्रदेश आदि रूपसे विभाज्य होता हुआ परमाणु तक पहुँचता है, जहाँ उसका पुनः विभाजन नहीं हो सकता। इस प्रकार यह पुद्गल सूक्ष्म भी है, स्थूल भी, स्थूल-सूक्ष्म भी, व स्थूल-स्थूल। इस प्रकार पुद्गल द्रव्य चतुर्भेदरूप जाना जाता है ॥९॥

१०

गंधु वणु रसु फासु स-सदु ।
 सुहुमु थूलु वज्जरइ स-सदु ॥
 थूलु-सुहुमु जोणहा-छायाइउ ।
 थूलु सलिलु वीरेण णिवेइउ ॥
 थूलु-थूलु पुणु धरणी-मंडलु ।
 सग्ग-विमाण-पडलु मणि-णिम्मलु ॥
 सुहुमइ कम्मइयइ स-ग्गामइ ।
 मण-भासा-वग्गण-परिणामइ ॥
 वण्णाइयहिं रसेहिं अणेयहिं ।
 परिणमंति संजोय-विओयहिं ॥
 पूरण-गलण-सहाय-णिउत्तइ ।
 पोग्गलाइ विविहाइ पउत्तइ ॥
 भासिज्जंतउ परम-जिणिंदे ।
 णिसुणिवि भम्मु सुधम्मणंदे ॥
 वसहसेणु सुहभावें लइयउ ।
 पुरिमताल-पुरवइ पावइयउ ॥

इथ वीर-जिणिंद-चरिण् जिण-वेसणा णाम
 दोदहमो संधि ॥ १२ ॥

इय वीर-जिणिंद-चरिउ संपुण्णउ ।

(पुष्पदन्त-कृत महापुराणु सन्धि १०-१२ से संकलित)

१०

पुद्गल द्रव्यके गुण । उपदेश सुनकर अनेक नरेशोंकी प्रव्रज्या

पुद्गल द्रव्य गन्ध, वर्ण, रस, स्पर्श और शब्द ये पञ्चगुणात्मक हैं । उसके सूक्ष्म, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म और स्थूलस्थूल ये चार प्रकार पाये जाते हैं । प्रकाश और छाया ये पुद्गल द्रव्य स्थूलसूक्ष्मके उदाहरण हैं । स्थूलका उदाहरण जल है, स्थूलस्थूलका यह धरणीमण्डल, एवं मणियोंके समान स्वर्ग-विमानपटल । सूक्ष्मपुद्गल अपने-अपने नामोंवाले नाना कर्मोंके रूपमें पाया जाता है, तथा मन और भाषा रूप वर्णनाएँ भी उसीके परिणमन हैं । ऐसा भगवान्ने दयापूर्वक कहा है । यह पुद्गल द्रव्य अनेक वर्णों, अनेक रसों आदि रूप परिणमन करता है और उसका संयोग अर्थात् जोड़ और वियोग अर्थात् विभाजन भी होता है ।

इस प्रकार जो नानाविध पुद्गलोंका वर्णन किया गया, वह पुद्गल शब्दकी इस निर्युक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति व शब्द-साधनाके अनुरूप है । जिस द्रव्यका स्वभाव पूरण और गलन रूप हो वह पुद्गल है ।

जब आदिदेव भगवान् ऋषभदेव तीर्थकरने धर्मका यह व्याख्यान किया, तब सद्धर्मसे आनन्दित होकर तथा शुभ भावनाओंसे प्रेरित हो पुरिमताल नगरके स्वामी वृषभसेन प्रव्रजित हो गये । सोमप्रभ व श्रेयांस नरेश्वरने भी अपने मानरूपी स्वरका विनाश कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली । इस प्रकार अपने विषादको छोड़ चौरासी राजा ऋषभ तीर्थकरके गणधर हो गये ॥१०॥

इति तीर्थकर धर्मोपदेश विषयक बारहवीं सन्धि समाप्त

॥ सन्धि १२ ॥

इति वीर-जिनेन्द्र-चरित समाप्त